Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28 अंक : 440, दिसंबर, 88

The Times of India
One Hundred and Fifty Years

उपहार अंक : एक

प्रकाशक :
रमेशचंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी
विमला रानी
ज्ञान सिंह

प्रोडक्शन :
हरेंद्रसिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

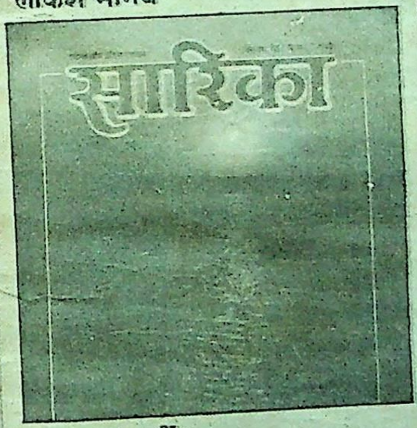

आवरण पारदर्शी :
फाल. एस. गिरोटा

आवरण एवं अंक सज्जा :
हरिप्रकाश त्यागी

कथा रचनाएं

12. आवाज के हाथ :
हंसराज रहबर

18. जाहिल :
चंद्रकिरण सोनरेक्सा

24. एहसास :
मुद्राराक्षस

34. धुंधलका :
गोविंद मिश्र

40. सूनी :
ममता कालिया

46. एवजी में :
से. रा. यात्री

52. इंतजार :
सुभाष पंत

56. मालगाड़ी का सफर :
रमेश गुप्त

60. पापा :
सुशील श्रीवास्तव

धारावाही आयोजन

62. प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : तीन
धोके की टट्टी

66. दास्ताने अलफ लैला उर्फ
किस्सा हजार रातें....

69. रुपहली रातें :
दास्तोयेव्स्की

विशिष्ट आयोजन

8. टाइम्स के डेढ़ सौ वर्ष

11. सामयिक संदर्भ नोबेल पुरस्कार

साक्षात्कार

75. डा. नामवरसिंह से बातचीत
की अंतिम कड़ी

स्थायी स्तंभ

10. सारिका कथा पहेली

38. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी

45. नयी पौद

51. कथादर्शन :
सुधीश पचौरी

71. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव

72. कृतियां :
राजकुमार सैनी

79. हलचल

80. आपकी बात

लघु कथा रचनाएं

21. निली :
इदरीस शाह

30. ननद भौजाई :
राजकमल चौधरी

42. किताब, कंघी और गंजे :
तालस्तोय

48. सागर कन्याएं :
खलील जिब्रान

54. पहाड़ी औरत :
नरेंद्र प्रताप सिंह

58. तकिया :
सुनील हर्बोला

कापीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय, विज्ञापन,
प्रसार एवं व्यवस्था :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911
□
टाइम्स हाउस
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष :3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टाक रोड
जयपुर

133 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1/2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामबक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88 महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व में ऐसे समाचार पत्रों की संख्या बहुत कम है जो १५० वर्षों तक बने रहे हों. 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ऐसे ही उल्लेखनीय समाचार पत्रों में एक है. भारत का तो यह ऐसा एक मात्र समाचार पत्र है. पिछले दिनों डेढ़ सौ वर्ष पूरे होने के इस महत्वपूर्ण अवसर पर टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह की ओर से समारोहों की एक वृहत श्रृंखला प्रारंभ हुई. २८ अक्तूबर को इस आयोजन श्रृंखला का औपचारिक उद्घाटन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने किया. उन्होंने कहा— 'टाइम्स ऑफ इंडिया ने पिछले चालीस सालों में पत्रकारिता के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किये हैं... अखबारों को स्वस्थ और रचनात्मक आलोचना ही करनी चाहिए. अखबार द्वारा विरोधी या प्रतिद्वंद्वी की भूमिका में उतर आने से होता यह है कि जिसकी आलोचना की जा रही होती है, वह कान बंद करके अपने मन की करने में लगा रहता है.'. इस

युवा वर्ग के नैतिक और चारित्रिक उत्थान के साथ-साथ मनोरंजन के यादगार अवसर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के डेढ़ सौ वर्ष

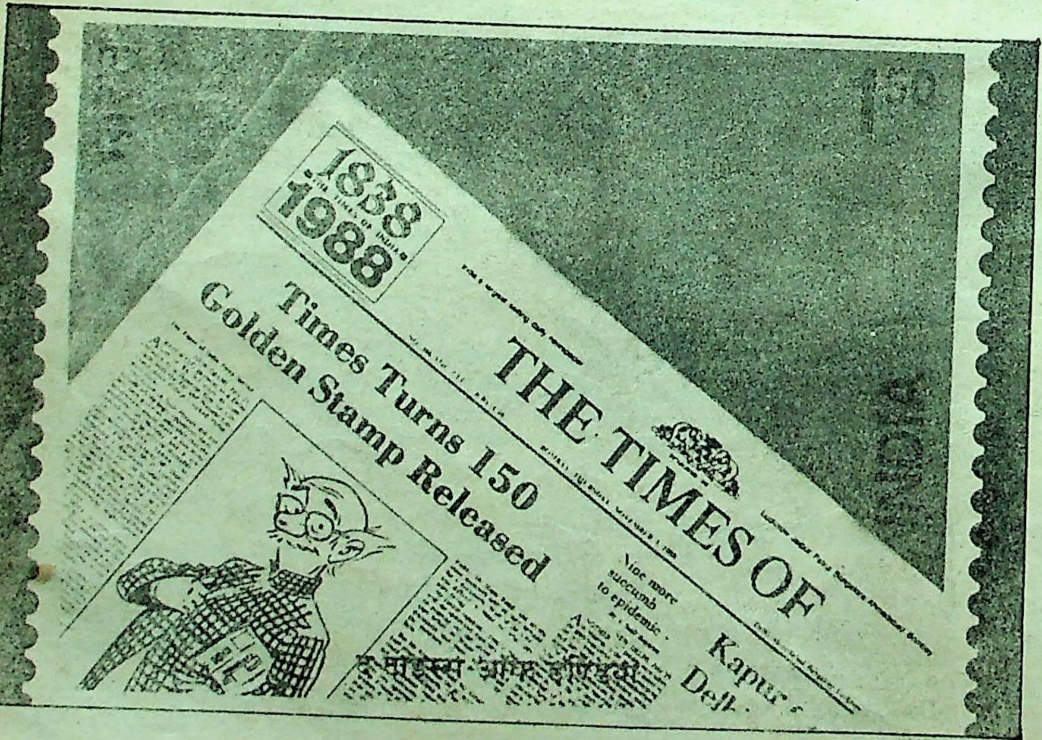

The Times of India
One Hundred and Fifty Year
SESQUICENTENNIAL

ऊपर बायें : रॉक शो.

ऊपर : प्रभात राग, शिवकुमार शर्मा.

बायें : टाइम्स ऑफ इंडिया के डेढ़ सौ वर्ष के उपलक्ष्य में जारी डाक टिकट

दायें ऊपर : आर. के. लक्ष्मण की पुस्तक का विमोचन करते हुए प्रधानमंत्री राजीव गांधी. साथ में हैं श्री अशोक जैन और आर. के. लक्ष्मण.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर पर उन्होंने टाइम्स ऑफ इंडिया के दो प्रकाशनों का विमोचन भी किया.

प्रधानमंत्री के इस उद्घाटन भाषण के पूर्व टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक जैन ने प्रधानमंत्री व अन्य अतिथियों का स्वागत किया. श्रोताओं ने प्रकाशन समूह के अध्यक्ष की इस घोषणा का करतल ध्वनि से स्वागत किया कि पाठकों की शिकायतों पर विचार करने के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया एक लोकपाल को नियुक्त करेगा. भारत में ऐसा पहली बार ही होगा. उन्होंने अखबारी कागज पर सरकारी नियंत्रण से पैदा होने वाली कठिनाई की चर्चा भी की. वर्तमान संपादक गिरिलाल जैन की प्रशंसा में उनकी टिप्पणी थी कि इन्होंने समसामयिक विषयों पर धारदार और संतुलित टिप्पणियां लिखकर टाइम्स की परंपरा को आगे बढ़ाया है. 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के वर्तमान संपादक गिरिलाल जैन संपादकीय स्वाधीनता और अखबार की नीति पर केंद्रित रहे.

दरअसल, यह आयोजन-श्रृंखला युवकों के नैतिक और चारित्रिक उत्थान के साथ-साथ मनोरंजन की दृष्टि से एक ऐसा विविधरंगी आयोजन भी है जो अपने प्रारंभिक चरण से ही देश भर में चर्चा का केंद्र बना हुआ है. क्रमिक तौर पर देखें तो इसकी शुरुआत ३० सितंबर को ही राजधानी स्थित जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम से हो गयी थी. यह एक ऐसा अवसर था जब भारत में पहली बार विश्व-स्तरीय रॉक-सितारे—ब्रूस स्प्रिंगस्टीन, स्टिंग, पीटर गैब्रियल, ट्रेसी चैपमैन और यूसून दूर अपनी स्वर लहरी का जादू फैलाने आये थे. लंबे समय तक दम साधे, समय-समय पर इन गायकों की धुन पर थिरकते युवा अपने जीवन का अविस्मरणीय अनुभव बटोरते रहे. मानवाधिकारों के लिए विश्व भर में लड़ी जा रही लड़ाई का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनते यह कलाकार स्वाभाविक तौर पर श्रोताओं के चहेते बन बैठे. यह यादगार आयोजन टाइम्स ऑफ इंडिया ने एमनेस्टी इंटरनेशनल के सहयोग से आयोजित किया जो सौभाग्य से इसका प्रवेश-पत्र पा सके थे.

इस विशिष्ट अवसर पर डाक विभाग ने भी अपनी हिस्सेदारी निभाते हुए डेढ़ रुपये का एक सुनहरी डाक टिकट जारी किया. ३ नवंबर को बंबई में आयोजित एक समारोह में संचार राज्य मंत्री गिरधर गोमांगो ने यह विशेष डाक टिकट जारी करते हुए देश के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा किये गये महत्वपूर्ण योगदान की सराहना की. यह दिन इस वजह से और भी यादगार बन गया कि ठीक इसी दिन टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के जैन परिवार के वरिष्ठतम सदस्य श्रेयांस प्रसाद जैन ने अपने जीवन के ८० वर्ष पूरे किये. संचार राज्य मंत्री ने उन्हें इस अवसर पर डाक टिकटों का एक एलबम भी भेंट किया. इस अवसर पर प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक जैन ने टाइम्स ऑफ इंडिया और भारत की नियति को एक-दूसरे से जुड़ा बताया.

आयोजनों की इस श्रृंखला में ११ नवंबर से 'प्रभात राग महोत्सव' का आरंभ होना राजधानी के संगीत प्रेमियों के लिए एक सुखद अनुभव रहा. प्रभाकर कोरकर, किशोरी अमोनकर, शिवकुमार शर्मा, सी.आर.व्यास, हरिप्रसाद चौरसिया, भीमसेन जोशी, गंगूबाई हंगल, मल्लिकार्जुन मंसूर जैसे शीर्षस्थ कलाकारों की कला का आनंद उपलब्ध कराने वाला ऐसा अवसर कभी-कभी ही मिलता है.

बहरहाल यह एक ऐतिहासिक अवसर है जब टाइम्स ऑफ इंडिया के डेढ़ सौ वर्षों के बहाने संपूर्ण भारतीय पत्रकारिता के इतिहास को परखा जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली

सितंबर 1988

कथापहेली का सर्वशुद्ध हल

1. अन्नपूर्णा.
2. बेचारे लोग.
3. रस्किन बांड और गेटे.
4. 'अरेबियन नाइट्स'
5. □ 'त्यों-त्यों प्रकट होत उर अंतर कांच कलस जल झांई.'
   □ 'बेचारे लोग'.
   □ 'खूबसूरत मगर मजबूर.'
   □ 'दास्ताने अलफ लैला उर्फ किस्सा हजार रातें.'
6. ख्वाजा अहमद अब्बास.
7. पिछले डेढ़-दो दशकों में विशेष सक्रिय लेखकों को यथोचित महत्व प्राप्त हो सकेगा.
8. वहां न कला के लिए संदेश को तिलांजलि दी जा सकती है और न संदेश के लिए कलात्मकता की.
9. मेरी
10. धीरेंद्र अस्थाना द्वारा लिखित 'मुखौटे'.

इस बार 6000 प्रतियोगियों में केवल छः प्रतियोगी ही सर्वशुद्ध हल भेज सके हैं इन प्रतियोगियों में पुरस्कार राशि बराबर-बराबर वितरित कर दी जायेगी.

इस बार के पुरस्कार विजेता

1. राजेंद्र मिश्र, 22/73, महावीर नगर, लंगड़े की चौकी रोड, आगरा.
2. रवींद्र कुमार निगम, 2/86, मेडिकल कॉलेज हॉस्टल, जबलपुर, (मध्यप्रदेश)-482003.
3. रमाकांत अग्रवाल, 176, इंदिरा कालोनी, बनी पार्क, जयपुर (राज.)
4. सुनील कुमार व्यास, 9-बी, जयश्री अपार्टमेंट, दीवान मेन, नवयुग नगर, बसई रोड (पश्चिमी) बंबई-809202.
5. महेश कुमार भाटी, मोहकमपुर, लिसाड़ी, मेरठ-250002
6. डा सुमित्रा गुप्ता, 73/6, गांधी नगर, जींद, हरियाणा.

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

सारिका कथा पहेली में भाग लेने के लिए आप भी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न सारिका : नवंबर 1988 पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 दिसंबर 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा फरवरी, 1989 के अंक में की जाएगी.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पत्रिका पाठकों तक देर से पहुंचती है वे पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. अक्तूबर : 1988 की कथा-पहेली का निर्णय जनवरी : 1989 के अंक में प्रकाशित होगा. पूर्व घोषणा के मुताबिक यह निर्णय पहले दिसंबर : 1988 के अंक में प्रकाशित होना था.

सारिका कथा पहेली : दिसंबर, 1988

रिक्त स्थान भरिये

1. जर्मन नात्शीवाद के पीछे सबसे खतरनाक पक्ष था. ....
2. लक्ष्मीप्रसाद जी के प्रति परिवार के सदस्यों के एकाएक बदले व्यवहार का कारण था. ....
   ....
3. 'ए स्पेशल डे' का उल्लेख .... के संदर्भ में आया है.
4. "एक शख्स के इतने हिस्से कर दिये जाते हैं?—बेटी, बहू, पत्नी, मां, नारी... पैदा होते ही उसे समझाना शुरू कर दिया जाता है कि उम्र के हर टुकड़े के दूसरों की सुविधाओं के अनुकूल आत्मसात कर जीने में ही उसका जीना है—एक निर्धारित स्वीकार..."
   यह कथांश .... की .... कहानी का है.
5. अपराधी द्वारा आत्म हत्या का संदर्भ .... रचना में आया है.
6. अभिनय के चक्कर में जान से हाथ धो बैठने का वाकया .... से संबंधित है.
7. अधोलिखित पुस्तकों के लेखकों के नाम कोष्ठक में लिखें—
   'सिंहावलोकन' (   ), 'सत्य के प्रयोग' (   ), 'समय एक शब्द भर नहीं है' (   ), 'रसीदी टिकट' (   ), 'अबुल कलाम आजाद' (   ).
8. 'गोल्ड रश' की प्रेरणा चार्ली चैप्लिन को कैसी मिली? ....
   ....
   ....
9. .... के प्रकट उल्लास के पीछे विशाद था और अपने महान वैभव के बीच वे अपनी झुग्गी-झोंपड़ी के दिनों को याद करके आह भरते थे.
10. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ लघु रचना .... है.

नाम ....

पता ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच दशक का जिम्मेदार लेखन : महफूज

ज्यां पाल सार्त्र, सैमुअल बैकेट, सॉल बैलो, ग्राबिएल गार्सिया मार्केज, जॉन स्टेन बेक, अल्बेयर कामू, अर्नेस्ट हैमिंग्वे, पर्ल एस. बक, जॉन गाल्सवर्दी, अनातोले फ्रांस और भारत में जन्मे ब्रिटिश साहित्यकार रुडयार्ड किपलिंग जैसे लोगों को नोबेल पुरस्कार मिलते समय यह स्थिति नहीं थी कि साहित्य के पाठक इनका नाम सुनकर चौंक उठें और पूछें कि यह रचनाकार अब तक अपनी दुनिया के घेरे से बाहर चर्चा में क्यों नहीं आ सका...? हमने आज तक इसकी कोई भी रचना क्यों नहीं पढ़ी... या इसका साहित्य हमारी भाषा में अब तक क्यों न आ सका था? मुझे लगता है कि हाल ही में **नगीब महफूज** को लेकर यदि इस तरह के सवाल बार-बार उठाए जा रहे हैं या लोग अचरज भरी नजर से महफूज के देश मिस्र की ओर देख रहे हैं तो यह एक अच्छी स्थिति ही है. ऐसे पुरस्कारों का काम ही यह होना चाहिए कि समय की चकाचौंध और प्रचार के शोर-गुल के बीच से ऐसे साहित्यकर्मी की खोज कर सके जो कहीं इन सबसे अप्रभावित अपने सृजन कर्म में लगा है. निश्चित रूप से **नगीब महफूज** इसी श्रेणी के रचनाकार हैं. मिस्र के प्राचीन वैभव के बारे में हम यदि इतिहास के माध्यम से जानकारी रखते हैं तो वर्तमान मिस्र के बारे में विश्व-प्रेस के माध्यम से ही हमारी जानकारी की भूख मिट पाती है... बावजूद इसके, यदि हमें वहां के इतिहास और वर्तमान संदर्भ में जीवन की धड़कन और जमीन की गंध पानी है तो **नगीब महफूज** को पढ़ाना जरूरी होगा.

नोबेल पुरस्कार तो एक जरिया भर है... जिससे **नगीब-साहित्य** के लिए विश्वभर की भाषाओं में अनुवाद के द्वार खुलेंगे... पर यह सच है कि अपने 32 उपन्यासों, 13 कहानी संग्रहों और 30 स्क्रीन प्ले के कारण यह रचनाकार अपने देश का एकमात्र प्रतिनिधि है. उसकी इस प्रतिष्ठा के पीछे भी एक लंबी कहानी छिपी है जिसकी शुरुआत होती है सन् 1911 से. काहिरा में 77 वर्ष पूर्व जन्मे महफूज की शुरुआती जिंदगी मध्यवर्गीय उपनगर में कटी. तकरीबन 23 साल की उम्र में काहिरा विश्वविद्यालय से दर्शन विषय में स्नातक हो जाने के साथ-साथ महफूज विश्व-साहित्य के भी अच्छे अध्येता हो गए थे. दास्तोयेव्स्की, ताल्स्तोय, कामू, एमिल जोला, बालजाक और फ्लाबेयर सरीखे रचनाकार उन्हें बहुत भाये थे. इन सभी को महफूज ने फ्रांसीसी माध्यम से पढ़ा. इस वक्त तक मुहम्मद हुस्सैन हैंकल की कृति 'जैनाब' को छोड़कर अरबी में विशेष सम्मानित लेखन नहीं आ सका था. 'उपन्यास' विधा तो एक तरह से इस देश के साहित्यकारों के लिए अपरिचित ही थी.

महफूज इसी परिवेश में रहते हुए पश्चिम की कथा-विधा 'उपन्यास' से परिचित हो रहे थे. करीब पांच साल के भीतर (1939) इनकी पहली पुस्तक प्रकाशित होकर आयी— 'ए गेम ऑफ फेट्स'. यह लगभग उपन्यास की शक्ल की एक गद्यरचना थी जिसमें लेखक के साहित्य-संबंधी आदर्श उद्देश्यों की पहचान तो खूब हो रही थी पर विधागत शिल्प चेतना का सर्वथा अभाव था. इसके बाद महफूज की कलम ने प्रयोग प्रारंभ कर दिए. ऐतिहासिक उपन्यासों के रास्ते होते हुए वे अपने लेखन का एक दशक पूरा करते-करते उस निर्णयात्मक मोड़ तक आ पहुंचे जहां से उनके लेखन की एक खास पहचान ही बननी शुरू हो गयी. शहरी जिंदगी की यथार्थपरक नजर से पड़ताल करती उनकी कृति 'ए न्यू काहिरा' क्या छपी कि फिर तो एक सिलसिला ही बन गया. महफूज ने सामाजिक विसंगतियों को पूरी गंभीरता के साथ समझते हुए तीन और उपन्यास लिख डाले. यह दरअसल, उनके उपन्यासकार के लिए वह 'होमवर्क' था जिसके बाद उनकी पहचान देश के प्रतिनिधि रचनाकार के तौर पर होने लगी. इधर महफूज की उपन्यासत्रयी पूरी हुई और उधर मिस्र में क्रांति हो गयी. यह सन् 1952 का समय था.

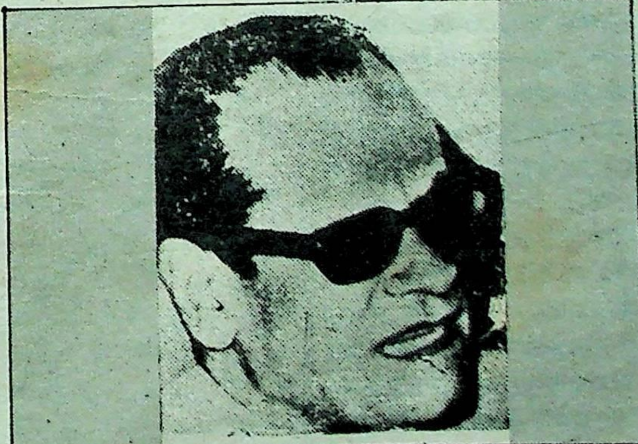

राजनीतिक व धार्मिक मसलों पर नयी नजर से देखने की यह ऐसी शुरुआत थी, जो अब तक मिस्र के लिए कल्पनातीत थी. महफूज अब साहित्य जगत के सिरमौर हो गए थे. फिर पांच-सात साल तक महफूज की कलम खामोश हो गयी और नजर अपना काम करती रही. प्रतीक कथा के रूप में 'द चिल्ड्रन ऑफ गैबेलावी' राष्ट्रीय दैनिक में छपी.

बहरहाल, यह मौका ऐसा है जब हमें **नगीब महफूज** के साथ-साथ उनके पहले अनुवादक स्टेवर्ट को भी बधाई देनी चाहिए जिसके जरिए महफूज को उनके मुल्क के बाहर भी जाना गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख कृतियां : 'दिशाहीन', 'बिना रीढ़ का आदमी', 'आंके बांके', (उपन्यास), 'मेरे सात जन्म' (आत्मकथा), 'वर्षगांठ' (कहानी-संग्रह).
संपर्क : एस-16, नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

□ हंसराज रहबर

आवाज के हाथ

तुम्हारा विश्वास झूठ है. झूठ में विश्वास अपराध है. मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो.''

एक भारी और मजबूत आवाज सुनायी पड़ी. वे सभी चौंके और एक दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे. आवाज साफ थी. एक-एक शब्द दिल में उतरता चला गया था. सभी ने इधर-उधर देखा, दूर-दूर तक नजर दौड़ायी, पर कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ा. आवाज किधर से आयी? आकाश से उतरी या धरती से उगी? सभी हैरान थे और प्रश्नचिन्ह बन एक दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे.

वे लोग थाने के पीछे तिकोने पार्क में बैठे धूप सेक रहे थे और अखबार बांच रहे थे. एक भरे शरीर का अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति पढ़ रहा था और दूसरे सुन रहे थे. अखबार पढ़ना और सुनना उनका रोज का मामूल था. पिछले चार-पांच साल में माहौल कुछ ऐसा बन गया था कि लोग-बाग खबरें रेडियो पर कान लगाकर सुनते थे. रात को आखिरी खबरें सुन लेते तभी नींद आती. सुबह उठते तो सबसे पहले अखबार पढ़ते. नाश्ता करना अथवा कोई दूसरा काम भले ही भूल जायें, पर अखबार पढ़ना नहीं भूलते. बिना अखबार पढ़े उन्हें चैन नहीं पड़ता. अधिकांश लोग जो अनपढ़ थे, अखबार और राजनीति में जिनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी, वे भी अब दिलचस्पी ले रहे थे. जिज्ञासा बढ़ रही थी. जैसे गर्मियों के महीने उपकारी जन प्यासों के लिए प्याऊ लगाते हैं, बढ़ती हुई जिज्ञासा को देखकर इस अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति ने पार्क में बैठकर सार्वजनिक रूप से अखबार पढ़ने-सुनाने का यह सिलसिला शुरू किया था. जो लोग अखबार पढ़ नहीं सकते, अखबार खरीद नहीं सकते, वे सब इस तिकोने पार्क में इकट्ठे होते थे. अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति पहले खबरें बांचता और फिर संपादकीय पढ़ता. सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो सुनते रहते और बीच-बीच में चौंक-चौंककर एक दूसरे का मुंह ताकते. आपस में बोलते, बतियाते. जो कुछ हो रहा था, उस पर आश्चर्य व्यक्त करते. बात जब चल निकलती तो चलती रहती. वे देर तक बोलते-बतियाते रहते और सोचते रहते, सोचते रहते, और बतियाते रहते. ये वे दिन थे, जब अनहोनी होनी बन गयी थी. अनहोनी ने होनी बनकर जो उत्पात मचा रखा था, वह बहुत ही भयंकर था. भेड़ियों, चीतों और आदमखोरों को भी शरमा देने वाला था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

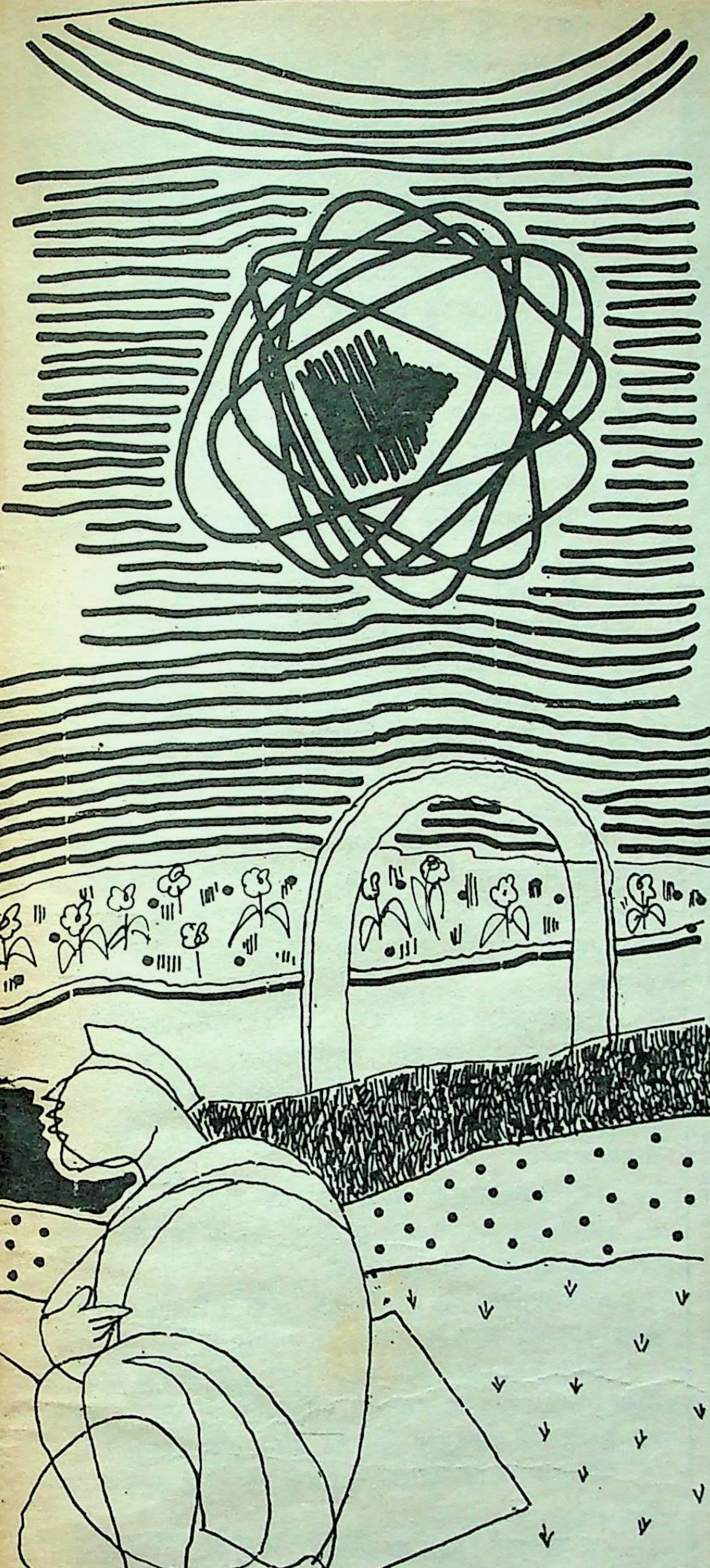

"जैसे आज अनहोनी होनी बन गयी है, क्या इतिहास में पहले भी कभी बनी होगी?" श्रोताओं में से एक स्वर उठा.

"क्यों नहीं? अनहोनी को होनी बनाने वाले जैसे आज हैं, वैसे अतीत में भी होते आये हैं. लेकिन इतिहास भी अनहोनी को होनी बनाने वाले ही लिखते हैं और वे इसे छिपा लेते हैं. इतिहास में आने ही नहीं देते." अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया और गंभीर थिर स्वर में बात जारी रखी, "बुद्ध की अहिंसा से देश के दरवाजे आक्रमणकारियों के लिए खुल गये थे. परिणाम यह कि अनहोनी होनी बनी. हमारी बहू-बेटियां गजनी के बाजार में टके-टके बिकीं.

कुछ क्षण मौन के बीते. श्रोताओं के मुख से दुख भरी सांसें निकलीं.

"लेकिन आज अनहोनी ने होनी बनकर जो उत्पात मचा रखा है, उसे हम प्रत्यक्ष देख-सुन रहे हैं. इसे कोई कैसे छिपायेगा?"

"होनी बनाने वाले आज भी छिपाते हैं." कई स्वर एक साथ उठे, "बहुत-सी बातें जो हमें अखबार से मालूम होती हैं, वे रेडियो पर नहीं कही जातीं."

"उन लोगों ने यह भी तो कहा है कि लोग-बाग अखबार न पढ़ें. अखबार उन्हें बहकाते-बरगलाते हैं."

यह किसी व्यक्ति विशेष की आवाज नहीं, हम, तुम सबकी पूरे राष्ट्र की आवाज है. यह आवाज हमारी और उन सबकी सम्मिलित सोच से पैदा हुई है. यह किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, पूरे राष्ट्र की आवाज है.

वाकई उन्होंने यह बात कही थी, पर इसका उल्टा असर यह हुआ कि अखबार में लोगों की दिलचस्पी और बढ़ी. पहले अखबार अपने-अपने घर में अथवा लायब्रेरी में पढ़ा जाता था, पार्क में बैठकर सार्वजनिक रूप से पढ़ने-सुनने का यह सिलसिला उसके बाद ही शुरू हुआ.

आज अखबार के मुखपृष्ठ पर पहली खबर की सुर्खी थी, 'पंजाब में तेरह मरे, जिनमें दो आतंकवादी भी थे.' पिछले पांच बरस में कोई दिन ऐसा नहीं था, जिस दिन पंजाब की हत्याओं की खबर न हो. पंजाब, जो कभी पंचनद कहलाता था, जहां नदियां कल-कल करती हैं, पंजाब जहां शर्बती रंग की दूधिया गेहूं उगती है, पंजाब, जहां लोग भांगड़ा नाचते और माहिया गाते हैं, पंजाब, जिसके, कण-कण में हीर रांझा, मिर्जा-साहबां और सोहणी-महीवाल का रोमांस यों रच-बस गया है... कि पंजाब का हर युवक रांझा और युवती हीर कहलाने में गर्व महसूस करती है. वहां अब मौत मंडरा रही है और मनुष्य के हाथों मनुष्य का खून बह रहा है. आतंकवाद ने ऐसी विकट समस्या का रूप धारण कर लिया है, जो पूरे देश के लिए चिंता का कारण बनी हुई है."

अधेड़ उम्र के प्रबुद्ध व्यक्ति ने सबसे पहले यही खबर पढ़ी. वह पढ़ता रहा और श्रोतागण दम साधे सुनते रहे. फिर संपादकीय पृष्ठ पर एक लेख था– 'समाधान से और ज्यादा दूर' सुननेवालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिव्रता

उदय भानु पांडेय

प्रसिद्ध साहित्यकार विलियम सामरसेट मॉम के माता-पिता की जोड़ी इतनी बेमेल थी कि पेरिस में लोग इसे 'बिउटी एंड द बीस्ट' कहने लगे थे. मॉम की मां न केवल अनिंद्य सुंदरी थीं अपितु वे अपने पति से लगभग इक्कीस वर्ष छोटी भी थीं. लंबी भूरी आंखों, और ललछौंहे—सुनहरे रंगवाली लंबी-घनी केशराशि से मंडित उनका व्यक्तित्व प्रशंसा और चर्चा का विषय बन गया था. जिस व्यक्ति को इस रूपवती महिला का स्वामी होने का सौभाग्य मिला था वह अध्ययनशील और रोमैंटिक तबियत का होने के बावजूद एक निहायत भद्दा, नाटा और कुरूप आदमी था. फिर भी यह दंपति इतना सुखी और अनुरूप था कि पूरे पेरिस में लोग इसकी सफलता पर आश्चर्य-चकित थे. एक दिन लेडी ऐंगलेसी नाम भी एक अमरीकी महिला ने माम की मां से पूछ ही डाला, "तुम इतनी सुंदर महिला हो और ढेर-सारे पुरुष तुम्हें सर आंखों पर बिठना चाहते हैं तब भी भला तुम इस नाटे और कुरूप पति के प्रति इतनी वफादार क्यों हो?"

सौंदर्य ने बड़ी शालीनता से उत्तर दिया, "वे कभी भी मेरी भावनाओं को आहत नहीं करते." □

में उत्सुकता जागी और उन्होंने लेख सुनाने का आग्रह किया. सुनानेवाले ने दृढ़ स्थिर स्वर में लेख पढ़ना शुरू किया :

"आज पंजाब में हर तरफ गोलियां चल रही हैं. इस साल के पहले महीने में अब तक लगभग 175 लोग मारे जा चुके हैं. इनमें पुलिस अफसर भी हैं, पुलिसवालों के हाथों सच्ची-झूठी मुठभेड़ में मारे जाने वाले आतंकवादी भी हैं. आतंकवादियों के हाथों खत्म होनेवाले तथा कथित पुलिस मुखबिरों के पूरे के पूरे परिवार भी हैं और सुबह-सवेरे सैर-व्यायाम के लिए निकलनेवाले बेकसूर आम लोग भी हैं. असल में आज पंजाब में यह मालूम करना मुश्किल है कि कौन किसको मार या मरवा रहा है. साफ सिर्फ यह है कि चारों तरफ चलती गोलियों में भूने जाने वाले लगभग सभी पंजाबी हैं और उनमें ज्यादातर का किसी तरह के राजनीतिक या आतंकवादी गुट से कुछ लेना देना नहीं."

प्रबुद्ध ने पहला ही पैरा खत्म किया था कि कुछ धीर-गंभीर आज सुनाई दी... "मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

लोग पहले खबरें सुनकर चौंकते थे, आज यह आवाज सुनकर चौंके, और पहले से कुछ अधिक चौंके. काफी देर इधर-उधर देखते रहे, पर कोई व्यक्ति नजर नहीं आया.

"क्या यह देववाणी थी?" श्रोताओं में से चार-पांच ने एक साथ पूछा.

"देववाणी नहीं, यह तो मनुष्य की वाणी थी. एक मनुष्य अपने ही देश के लोगों से मुखातिब था. उसके स्वर में मनुष्योचित व्यथा और संवेदना थी." प्रबुद्ध ने उत्तर दिया.

"फिर वह दिखाई क्यों नहीं दे रहा? मनुष्य था तो दिखाई भी देना चाहिए."

"यह बेशक अचरज की बात है. मनुष्य है तो उसे दिखाई देना ही चाहिए." प्रबुद्ध ने अपनी ऐनक उतारकर उसे रूमाल से पोंछा, सोचा और ऐनक दोबारा कान पर रखते हुए बोला, "हवा तेज है. पेड़ों के पत्ते सरसरा रहे हैं. हो न हो, यह सरसराहट ही वातावरण में गूंज उठी हो और हमारी अपनी मनोभावनाओं ने ही आवाज का रूप धारण कर लिया हो."

सुननेवालों की पूरी तसल्ली चाहे नहीं हुई, फिर भी उत्तर काफी हद तक तर्कसंगत था और वे आश्वस्त हुए.

प्रबुद्ध ने लेख पूरा पढ़ा. उसके बाद जो दूसरी खबर पढ़नी शुरू की, उसकी सुर्खी थी— 'वे सियाचिन में जोखिम से खेलते हैं.'

"ये सियाचिन क्या है और कहां है?" चार-पांच व्यक्तियों ने एक साथ पूछा.

"सुनो. अभी पता चल जायेगा." प्रबुद्ध ने उत्तर दिया, "बर्फीले मैदानों के आर-पार वे दो-दो दुश्मनों से लड़ रहे हैं. बर्फ गिरने पर उन्हें जिंदा दफन हो जाना पड़ता है. लेकिन कड़ाके की ठंड और ऊंचाईयों पर हो जानेवाली जान लेवा बीमारियां भी उन्हें डिगा नहीं पातीं. अपने मोर्चे पर डटे रहने वाले ये लोग— भारतीय सशस्त्र सेना के जवान हैं और उनका रण क्षेत्र है दुनिया की सबसे ऊंची जगह.

"इन सैनिक जवानों की आन का सवाल है भारत के जबर्दस्त सामरिक महत्व की बिलकुल की ढलवानवाली वीरान और उस ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी तलहटी. यानी हिमालय की दूर उत्तरी सीमा पर स्थित साल तोरा पर्वतमाला सियाचिन ग्लेशियर का इलाका."

एशिया के इस सबसे बड़े दूसरे ग्लेशियर में 1984 से भारत और पाकिस्तान के बीच झड़पें होती रहती हैं. कराबोस श्रृंखला में स्थित इस पर्वतमाला की कुछ चोटियां दुनिया में सबसे ऊंची हैं, जैसे के गैशरबुम, मिशरबुम, माल्तोरो कांगड़ी, अप्सरा और तेशम कांगड़ी."

"बड़े विचित्र नाम हैं. आज पहली बार सुनने में आ रहे हैं."

"हमारे इस महान और विशाल देश में विचित्रता और विविधता का कोई ओर-छोर नहीं."

"जब सियाचिन और उसकी ऊंची ऊंची चोटियां हमारी हैं तो पाकिस्तान क्यों बीच में अपनी टांग अड़ाता है."

"कल तक तो भारत और पाकिस्तान एक ही देश थे. दोनों की सीमा सियाचिन से जा लगती है. पाकिस्तान भी उस पर अपना हक समझता है और टांग अड़ाकर अपना हक जमाता है."

"परिणाम यह कि गोलियां चलती हैं और दोनों तरफ के लोग मरते हैं."

"जब गोलियां चलेंगी तो लोग तो मरेंगे ही."

इससे पहले कि बात आगे बढ़ती फिर वही धीर-गंभीर आवाज सुनाई दी. ".... मेरे देश के लोगो, तुम उस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

वे फिर चौंके और पहले से अधिक चौंके. हवा अब थम चुकी थी. पत्तों में सरसराहट नहीं थी. लेकिन आवाज कहां से और किधर से आयी? धरती से उगी या आकाश से उतरी, कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं चल रहा था. इधर-उधर देखा, लेकिन आस-पास क्या दूर तक कोई भी व्यक्ति नजर नहीं आया.

"अगर यह देव वाणी नहीं, मनुष्य की वाणी है तो मनुष्य नजर क्यों नहीं आता? क्या हम इसे अपने मन का भ्रम मानें?"

"भ्रम कैसे मानें? यह मनुष्य की वाणी है. मनुष्य नजर भले ही न आये पर वह अपने देश के लोगों से मुखातिब है और बात जो कह रहा है, वह भी देश की, इस धरती की बात है, और सही है."

"बेशक बात बिल्कुल सही है और सोचने पर बाध्य करती है. आखिर एक ही देश के लोग एक दूसरे के दुश्मन क्यों बन गये? गोलियां क्यों चलती हैं? दोनों तरफ के लोग क्यों मरते हैं?" सात-आठ व्यक्ति एक साथ बोल रहे थे.

"पहले एक देश के दो और फिर दो के तीन बने. जिधर देखो, उधर सीमा, सीमा ही सीमा. सीमाओं की गिनती नहीं. हर सीमा पर गोलियां चलती हैं." एक साथ बोलनेवालों की तादाद दस-बारह थी, लेकिन स्वर एक सिर्फ एक था.

"निस्संदेह यह झूठ में विश्वास के अपराध का दंड है." इस बार एक साथ बोलनेवालों की संख्या पच्चीस-तीस तक पहुंच गयी थी. उनकी सम्मिलित आवाज दो बार सुनी गयी.

पच्चीस-तीस व्यक्तियों के सम्मिलित स्वर से प्रबुद्ध के मन में एक विचार अकस्मात कौंध गया. उसने अपना घुटना थपथपाया, आंखें चमक उठीं और एक मधुर मुस्कान होंठों पर तिर आयी. "सुनो! सुनो!!" उसने खुला पंजा ऊपर उठाया.

सभी की नजरें उस पर केंद्रित थीं. सभी आश्चर्यचकित से उसकी ओर देख रहे थे.

"मैंने इस आवाज का भेद पा लिया है." प्रबुद्ध ने गंभीर स्थिर स्वर में बोलना शुरू किया और बोलता चला गया. "यह किसी व्यक्ति विशेष की आवाज नहीं, हम, तुम, सबकी, पूरे राष्ट्र की आवाज है. जैसे हम-तुम यहां बैठे सोच रहे हैं कि ये घटनाएं क्यों घट रही हैं. उससे वह कैसे उबरेगा? वैसे ही देश और देश की जनता से प्यार करनेवाले पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्खन के सभी लोग सोच रहे हैं. यह आवाज हमारी और उन सबकी सम्मिलित सोच से पैदा हुई है. यह किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, पूरे राष्ट्र की आवाज है.

प्रबुद्ध की आवाज भी धीर-गंभीर थी. उसका एक-एक शब्द श्रोताओं के मन में उतरता चला गया. उन सबकी आंखें चमक उठीं. प्रबुद्ध की तरह उन सबने महसूस किया कि यह आवाज हमारी अपनी आवाज है और हमारी ही सोच से उत्पन्न हुई है. उन सबकी छातियां तन गयीं, मुट्ठियां भिंच गयीं और उन सबने हाथ ऊपर उठाकर इस मजबूत आवाज को समवेत स्वर में दोहराया, "तुम्हारा विश्वास झूठ है, झूठ में विश्वास अपराध है. मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगतन रहे हो."

तिकोने पार्क में उठी यह आवाज हवा के कंधों पर सवार होकर यत्रतत्र फैल गयी. हर जगह और हर क्षेत्र में सुनी जाने लगी. 'देश बचाओ' दिवस पर राज्य-राज्य, शहर-शहर और कस्बे-कस्बे में सभाएं आयोजित की गयीं. यह आवाज हर राज्य, हर शहर और हर कस्बे की हर सभा में सुनाई दी. संसद में त्रिपुरा के चुनाव का सवाल उठा. विपक्ष ने सत्ता पक्ष पर आरोप लगाया कि मतदान से तीन दिन पहले पूरे त्रिपुरा को अशांत राज्य घोषित करके फौज भेजना और मतदान से दो दिन

यातना

सुभाष राय

कमर से नीचे छींट का घाघरा. पैरों में घुंघरू, सिर पर बनावटी जटाजूट. ललाट पर त्रिपुंड. गठीला खुला हुआ बदन और कंधे पर लटकता सर्पाकार कोड़ा. साथ में मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटी नगाड़ा सम्हाले एक महिला बस इतना रतन को पहचान लेने के लिए काफी है.

वह सप्ताह में एक बार कटरा बाजार में निकलता है, दुकान-दुकान जाता है और भीख मांगता है. उसकी याचना का तरीका अन्य भिखमंगों से कुछ भिन्न है, जब पहली बार वह शहर में निकला था, तो मुहल्ले का मुहल्ला उसके पीछे चल पड़ा था लेकिन अब ऐसा नहीं होता. प्रायः सभी दुकानदार जानते हैं उसे. वे यह भी जानते हैं कि रतन चवन्नी से कम नहीं लेता. अगर कोई दुकानदार चवन्नी से छोटा सिक्का निकालता है तो पहले रतन की गर्दन हिलती है और फिर उसके हाथ कंधे पर लटके कोड़े की ओर बढ़ जाते हैं.

शनिवार, रतन बाजार में भीख मांगने में निकला था. उसके साथ उसकी बीवी भी थी, जिसके दोनों बाजू नगाड़े पर यंत्रवत् धमक रहे थे. कुछ-कुछ मारू जैसी आवाज. वह एक दुकान से दूसरी और दूसरी से तीसरी की ओर बढ़ता जा रहा था. पीछे-पीछे लड़कों का झुंड. सेठ रामदास की दुकान पर पहुंचकर वह खड़ा हो गया. दर्शकों का हुजूम उसे घेरे था. एक बार उसने अपनी मरियल-सी बीवी की ओर निहारा. नगाड़े पर चोट पड़ने लगी और रतन ठुमकने लगा. दाहिनी बांह पर उसने मोटी पट्टी बांध रखी थी, जिससे नीचे का हिस्सा कुछ सूज-सा गया था. पीठ का आधा भाग और पूरी बांह जगह-जगह फट गयी थी और चमड़ी के ऊपर गाढ़ा खून करिया गया था.

एक क्षण के लिए उसने अपनी खून से लथपथ बांह सेठ रामदास को दिखायी और फिर ठुमकने लगा. छम, छम, छम, नगाड़े की आवाज तेज हो गयी. सेठ आगे बढ़ा और दस पैसे का सिक्का रतन की ओर बढ़ा दिया. रतन की गर्दन नकारात्मक मुद्रा में हिली और फिर छम, छम, छम सेठ वहीं सिक्का लिए खड़ा था. अचानक नगाड़े की आवाज ठंडी पड़ी और रतन ने हाथ फैलाकर भीड़ को दूर करने हटने का इशारा किया. जगह मिलते ही रतन के कंधे पर लटका कोड़ा उसके हाथ में लहरा उठा. वह एक पैर पर चक्कर काट गया—छम, छमाछम—और दूसरे क्षण उसके हाथ में लपलपाता हुआ कोड़ा उसके शरीर पर बैठ गया. सटाक, सटाक, सटाक. देखते ही देखते उसने कई कोड़े अपनी खुली पीठ पर जड़ दिये. छरछराता हुआ ताजा खून जमीन पर फैल गया. सेठ ने चवन्नी उछाल दी और रतन दूसरी दुकान की ओर बढ़ गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले सवा सौ से अधिक व्यक्तियों की हत्या करवाकर ट्राइवल नेशनल वालंटीयर्स के आतंक का हौवा खड़ा करना खुली धांधली थी. यह चुनाव, चुनाव नहीं दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्रत की नृशंस हत्या है. तब संसद में भी यह आवाज सुनाई दी ''.... देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो.'' सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों चौंके. दोनों की कुर्सियां डगमगयीं. दोनों परेशान थे और दोनों इस बात पर एकमत थे कि हो न हो, यह आतंकवादियों की आवाज है. आतंकवादियों को विदेश से कोई ऐसा यंत्र मिल गया है, जो इस आवाज को दूर-दूर फैलाता है. वरना उसका संसद में पहुंच जाना मुमकिन नहीं था. चुनाव में धांधली की जगह संसद की मर्यादा और लोकतंत्र की रक्षा का सवाल उठ खड़ा हुआ. इस सवाल को लेकर सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों चिंतित थे. कुर्सियां दोनों की डगमगाइयी थीं.

सी.बी.आई. को सतर्क किया गया. भेदिये इधर-उधर दौड़ाये गये कि वे इस आवाज के स्रोत का पता लगायें, उस स्थान का पता लगायें, जहां इस आवाज को फैलानेवाला विदेशी यंत्र लगा हुआ है भेदिये इधर-उधर दौड़ रहे थे. उन्हें यह आवाज सर्वत्र सुनाई पड़ी रही थी. लेकिन कहां से आती है, यह पता नहीं चलता था. वे नगर-नगर, गांव-गांव घूमते रहे, सुनसान स्थानों और बेकार पड़े अंधे कुओं तक में झांकते रहे. महीनों गुजर गये, लेकिन स्रोत का पता नहीं चला. आखिर एक भेदिया एक ऐसे व्यक्ति से अचानक टकरा गया, जो तिकोने पार्क में जाया करता था और जिसने यह आवाज वहां पहली बार सुनी थी.

सुराग मिला. खुफिया विभाग के उच्चाधिकारयों ने अखबार बांचनेवाले प्रबुद्ध व्यक्ति को तलब किया और पूछताछ शुरू हुई:

''तुमने यह आवाज सुनी.''

''जी हां. सुनी.''

''किसी व्यक्ति को देखा.''

''जी, नहीं देखा.''

''फिर तुम्हारे ख़याल में यह आवाज किसकी है और कहां से आती है?''

''सच कहूं तो क्या सच कहने का कसूर माफ होगा?''

''हां! माफ होगा.''

''श्रीमान, यह किसी व्यक्ति विशेष की आवाज नहीं, समूचे राष्ट्र की आवाज है और जन जन की सामूहिक सोच से पैदा हुई है.''

''तुम सच नहीं, झूठ कह रहे हो. तुमने आवाज की यह व्याख्या करके लोगों को गुमराह किया है. राजद्रोह और आतंक फैलाया है.''

प्रबुद्ध व्यक्ति को राजद्रोह फैलाने का आरोप लगाकर जेल में डाल दिया गया और एक अध्यादेश निकालकर सार्वजनिक रूप से अखबार बांचने और सुनने का पाबंदी लगा दी गयी. अध्यादेश में कहा गया था— ''जिन लोगों को सोचने की तमीज नहीं, उन्हें सोचने का अधिकार नहीं. वे गलत सोचने हैं. अपनी इस ग़लत सोच से खुद भी गुमराह होते हैं और दूसरों को भी गुमराह करते हैं. यह आवाज जो जहां-तहां सुनी जा रही है, इसी गलत सोच में पैदा हुई है. यह आवाज हमारे राष्ट्रीय विश्वास को खंडित करती है. दिन-दिन बढ़ रहा आतंकवाद इसी गलत सोच का नतीजा है. यह

कच्चे मन का विद्रूप

अरविंद शर्मा

उसकी उम्र इस समय आठ वर्ष की है. अमर टी स्टाल पर काम करते हुए उसे पूरा एक वर्ष हो गया है. टी स्टाल व्यापारिक क्षेत्र है. वह अधिकांश दूकानों से, उनके मालिकों से, उनके ग्राहकों से परिचित हो चुका है. उसकी काम करने की क्षमता से प्रभावित होकर टी स्टालवाला उसे शाम को खाने को टोस्ट भी देने लगा है. शुरू-शुरू में जब वह दूकानों में चाय पहुंचाकर देर से लौटता था तब अक्सर उसकी पिटाई हो जाया करती थी. पहले-पहल जब खाली ग्लासों में दो की तीन और तीन की पांच चाय उसे करनी पड़ती थी तो चाय गिर जाया करती थी, तब ग्राहकों के थप्पड़ भी उसे पड़ जाया करते थे. लेकिन अब वह 'ट्रेंड' हो गया है.

रोजगारी पर उसके मां-बाप ने उसे यहां लगा रखा है. अब वह साफ-सुथरा भी रहने लगा है. चोरी से खाने की उसकी आदत भी छूट चुकी है. मालिक भी बिना नागा एक पांच का नोट उसे पकड़ा देता है, जिसे उसका बाप अपनी अंटी में खोंस लेता है. रात को जब वह नौ बजे के लगभग घर पहुंचता है तब उसकी घर पर बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा की जाती है.

बहुत दिनों बाद आज उसकी पिटाई हुई थी, घर से बाप को भी साथ लाने को कहा गया था. मालिक ने यह भी कहा कि साढ़े चार रुपये में कई छोकरे चक्कर लगा रहे हैं. हुआ यह कि वह तीन दूकानों पर चाय पहुंचाने गया था. यह उसका सुबह का नियमित क्रम था. वह पहले जहां चाय देता था वहीं से खाली गिलास लेना शुरू करता था. लेकिन आज सुबह से ही बरसात की झड़ी लगी हुई थी और दूसरी दूकान पर जब वह पहुंचा तो बाजू से बहने वाले नाले में दूकानदार के बच्चे बीच बहाव में कागज की नाव बना-बना कर डाल रहे थे. बहाव के साथ नावें बह जाती थीं. उससे न रहा गया और वह उनके साथ बैठकर नाव बना-बना कर किनारे से छोड़ने लगा. दूर तक नावें बहने लगीं. सभी बच्चों ने हर्षित होकर तालियां बजाईं, उसके नेतृत्व को इस समय स्वीकार कर लिया गया. वह उन्हें नाव बहाने का अंदाज सिखाने लगा.

एक-डेढ़ घंटे तक जब वह स्टाल पर नहीं लौटा तो मालिक स्वयं उसे ढूंढने निकल पड़ा. वह अपने घुटनों पर एक कागज की तहें जमाने में तल्लीन था. मालिक ने खाली गिलासों को एक तरफ रखा और उस पर लात-घूंसे बरसाने लगा. उसके कच्चे मन में उस समय उसके बाप की तस्वीर उभर रही थी. जिसे ऐसे अवसरों पर उसे गेंद की तरह उठा-उठा कर दीवार पर दे पटकने में आनंद आता था.

इस अप्रत्याशित मार का उस पर अधिक असर नहीं हो रहा था. उसे लगा कि वह एक गेंद है और यह स्टालवाला उसमें उग आये अनावश्यक हाथ-पैरों को निकाल कर खेलने लायक बना रहा है. जो कुछ शेष रह जायेगा, उसका बाप उसे तराश कर गोलाकार रूप दे देगा और फिर ये दोनों मिलकर जमकर उससे खेलेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम

श्यामसुंदर चौधरी

पिताजी को हिदायत के अनुसार मां दरोगा राम प्रसाद से अन्दर बैठने के लिए कहती हुई बोली,– "... वह आध-एक घंटे में लौटेंगे. जरा साइकिल ठीक करवाने गये हैं. आपको बैठने के लिए कह गये हैं...' और फिर मां रसोई में चली गयी, दरोगा कमरे में बैठकर एक पत्रिका के पन्ने उलटने लगा.

रग्घु उस वक्त दूसरे कमरे में अध्ययन कर रहा था. उसे दरोगा की पीठ दिखायी दे रही थी. उसके सीधे-सादे पिताजी के परिचय की वजह से शहर के सबसे अच्छे स्कूल में पिछले साल दरोगा की बच्ची की एडमिशन हो गया था. तब से उसका यहां आना-जाना शुरू हो गया था. रग्घु को वह कतई पसंद नहीं था. जब-तक शराब पीकर चला आता. पिताजी अपनी सिधाई के कारण उसे मना नहीं कर पाते. वह घंटों इधर-उधर की हांकता रहता. बात-बात पर भद्दी गालियों का प्रयोग करना उसके लिए बहुत जरूरी था. उसकी मां तो चुपचाप अपना काम करती रहती, पर दरोगा कितनी बुरी तरह उसे घूरता रहता.

एकाएक मेज पर चाय रखने की आवाज से रग्घु के विचार टूटे. लेकिन जैसे ही मां वापस जाने लगी, दरोगा एकदम से उस पर टूट पड़ा. मां के लाख प्रतिरोध करने पर भी वह उसे छोड़ नहीं रहा था. मुंह से गालियां भी बक रहा था. अंततः मां गिड़गिड़ाने लगी. दरोगा उसे निर्वस्त्र करने की चेष्टा कर रहा था.

रग्घु अचम्मित-सा सब कुछ देख रहा था. उसकी नसें जैसे फट जाना चाहती थीं. आंखों में खून दकहने लगा. उसकी समझ में नहीं आया, क्या करें. एकाएक उसकी दृष्टि चाय के भरे हुए कप पर पड़ी. दौड़के उसने कम उठाया. एक ही झटके में सारी चाय उसने दरोगा की आंखों में झोंक दिया. दरोगा घुटी-घुटी चीख के साथ वहीं बैठ गया.

पंद्रह दिन बाद जब एक रोज रग्घु स्कूल से नहीं लौटा तो उसके पिता परेशान हो उठे. रात भर जहां कहीं सम्भावना थी, एक आध रिश्तेदारों के साथ ढूंढ़ते रहे. अंत में निर्णय लिया गया कि सवेरे पुलिस में रिपोर्ट लिखाने जायेगा. पर सवेरे स्थानीय समाचार के उस विशेष कालम पर नजर पड़ते ही स्तब्ध रह गये– "तेरह वर्षीय रग्घु नाम का बालक कल शाम पुलिस की जीप से टकराकर घायल हो गया था. दरोगा रामप्रसाद जीप चला रहे थे. पुलिस सूत्रों के अुसार रग्घु तेज चलती हुई जीप के सामने से एकाएक दौड़कर सड़क पार करना चाहता था. हड़बड़ाहट में टकरा गया. मुख्य अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी..." □

आवाज उसे फैलाने में मदद करती है. जो कोई यह आवाज सुनेगा, उसे सही बतायेगा और उसे दोहरायेगा, देशहित और जनहित के लिए उसे सख्ती से कुचल दिया जायेगा."

इस अध्यादेश को ब्रोडकास्ट और टेलीकास्ट किया गया, अखबारों के जरिए प्रचारित-प्रसारित किया गया और पोस्टर छपवाकर दीवारों पर चिपकाये गये.

यह अध्यादेश जिस खतरे को टालने के लिए बनाया गया था. वह उल्टा और बढ़ा. लोग-बाग रेडियो सुनने और पोस्टर पढ़ने के लिए जगह-जगह इकट्ठे होते थे और जगह-जगह यह सवाल उठता था 'यह कैसा लोकतंत्र है, जिसने हमसे सोचने और बोलने का अधिकार भी छीन लिया?'

इस सवाल का उत्तर वही धीर-गंभीर आवाज देती थी– "मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

लोग-बाग इस आवाज को न.सिर्फ सुनते थे, बल्कि मुट्ठियां तानकर जोर-जोर से दोहराते भी थे. पुलिस आती थी, गोली चलती थी और बोलनेवाले हताहत होकर गिरते थे. लेकिन आवाज बंद नहीं होती थी. दोहरानेवाले उसे अधिक जोश से दोहराते थे. उन्हें पकड़कर जेल में बंद कर दिया जाता था.

अध्यादेश के विरोध ने कुछ ही दिनों में राष्ट्रव्यापी रूप धारण कर लिया. प्रबुद्ध व्यक्ति जो कल एक साधारण नागरिक था, पार्क में बैठकर अखबार पढ़ता था. जिसकी बात कोई सुनता, कोई नहीं सुनता था और जिसे बहुत कम लोग जानते थे, वह यकायक हीरो बन गया, उसका नाम कश्मीर से कन्या कुमारी तक गूंज उठा और उसकी रिहाई की मांग दिन-दिन बढ़ने लगी.

युवक-युवतियों का एक विशाल जुलूस निकला. उनकी छातियां तनी हुई थीं और उनका जोश-खरोश देखते ही बनता थ. वे "हमारे साथी रिहा करो, रिहा करो." के नारे लगा रहे थे और मजबूत आवाज को समवेत स्वर में दोहरा रहे थे. पुलिस ने जुलूस को रोका. ऐलान किया– "दस मिनट के भीतर-भीतर तितर-बितर हो जाओ. यह आवाज गलत है. इसे दोहराने में देश की हानि है. तुम्हारी अपनी हानि है."

अध्यादेश विरोधियों ने इस चेतावनी का उत्तर नारे लगाकर दिया और उस मजबूत आवाज को दोहराकर दिया और दृढ़ स्थिर स्वर में कहा: "यह आवाज सही है. आज की हकीकत है. बिना तेग बिना ढाल का राग अलापने वाले चलायें गोलियां आतंकवादी हम नहीं वे हैं. वे जो इक्कीसवीं सदी के सपने दिखाते हैं. वे इस हकीकत को झुठला नहीं सकते. इस आवाज को दबा नहीं सकते."

दस मिनट तक नारे लगते रहे, अध्यादेश विरोधी युवक उस मजबूत आवाज को समवेत स्वर में दोहराते रहे. इसके बाद धांय धांय गोलियां चलीं. जुलूसवाले और जुलूस को रोकनेवाले आपस में गुत्थम-गुत्था हो गये. गोलियां चल रही थीं. हताहत धरती पर गिर रहे थे. लेकिन किसकी बंदूक किसके हाथ में है? कौन किस पर गोली चला रहा है और कौन मर रहा है, यह पता लगाना मुश्किल था. आखिर गोली चलनी बंद हुई. फिर से नारे लगने शुरू हुए. युवक-युवतियों का जुलूस आगे बढ़ा. उन्होंने जेल के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी– "हमारे साथी रिहा करो!" दरवाजा खुला नहीं चरमराकर टूट गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ चंद्रकिरण सौनरेक्सा

जाहिल

सरकारी किरायेवाली इस पॉश कालोनी के आगे-पीछे टूटी-फूटी झोपड़ियों और कोठरियों, नीम बरगद के छतनार पेड़ों और शहर के बड़े गंदे नाले के पास दो हाते बसे हैं— छंगामल का हाता और डिप्टी साहब का हाता.

बढ़िया मखमली रजाई में लगी काली, मामूली गोट की भांति यह हाते की बस्तियां कालोनीवालों की पसंद भले ही न हों, पर उनके बिना भी उनकी गृहणियों को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता, ये भी वे सब जानते हैं. छंगामल हाते में अधिकतर चपरासी, ड्राइवर या माली, धोबी, बारी बसते हैं. वे कालोनी के साहबों के घरेलू लान या हाट बाजार का काम कर देते हैं और डिप्टी साहब के हाते में बसे गरीब मजदूरों की पत्नियां व बच्चे उन साहबी कोठियों में चौका-बासन, झाड़ू-पोंछा या बच्चे खिलाने का काम करती हैं.

शहर से दूर बसी इस कालोनी में यदि आस-पास में गरीब न बसे होते तो इस महंगाई के जमाने में कालोनी के साहब व मेम साहबों की साहबी काफी परेशानी में पड़ जाती. इसीलिये बहुत से साहबों ने अपने-अपने गैराजों में मोटर के साथ-साथ उनके ड्राइवरों या सरकारी चपरासियों को भी रहने की इजाजत दे रखी है.

कितनों ने कोठियों के आगे बाढ़ लगा के, जमीन घेर के लॉन बना लिये हैं? किसी को तो सरकार रोकने नहीं आयी. हम छह-सात फुट की एक कोठरी इस पीछे के मैदान के किनारे मूर्ति रखने को बना लेंगे तो कौन गजब हो जायेगा?

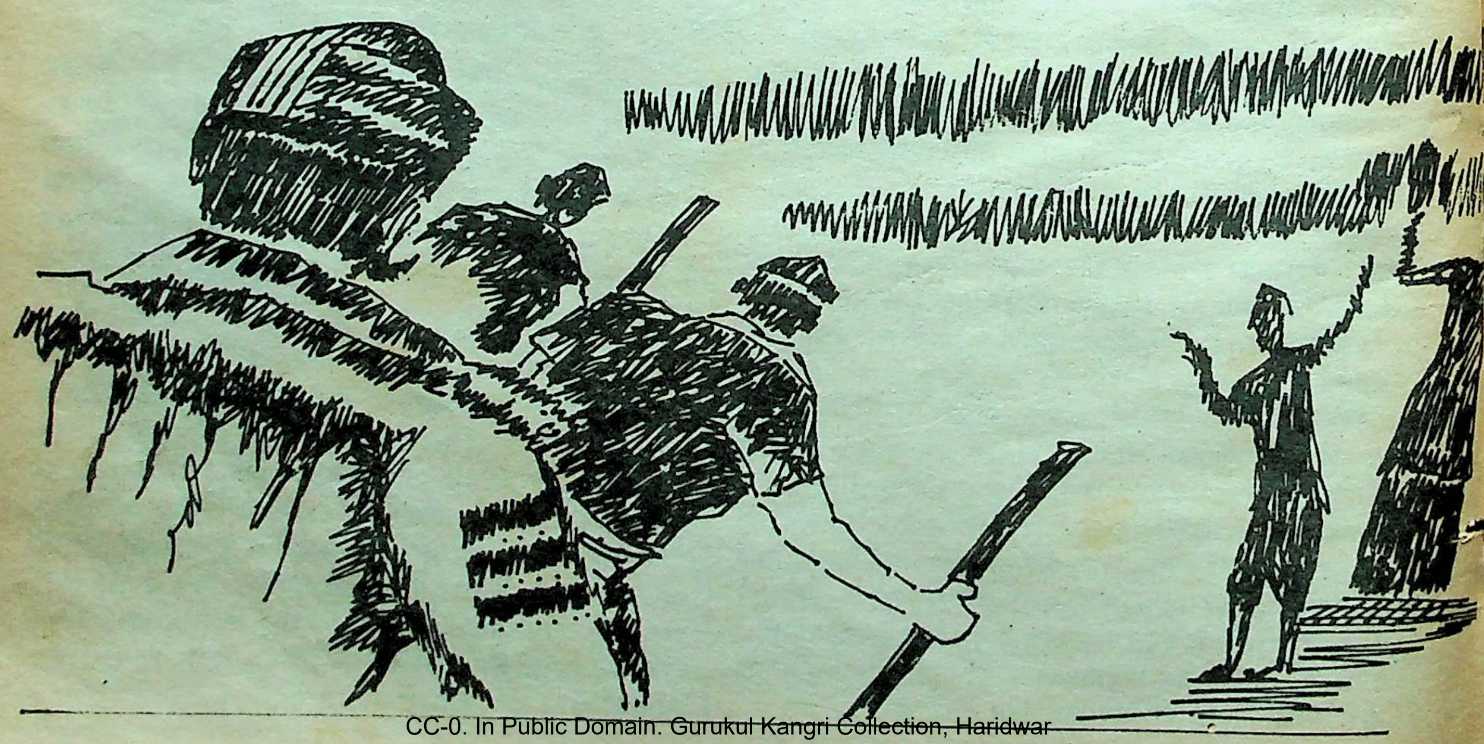

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवदत्त पांडे भी गन्ना विभाग में चपरासी है और डाक्टर भाटिया के गैराज में पत्नी व दो बच्चों सहित रहता है. इधर दो दिन से डाक्टर साहब की झाड़ू-बर्तन वाली नौकरानी बीमार पड़ी है, तो शिवदत्त ही किसी तरह घर की गाड़ी खींच रहा है, अर्थात झाड़ू-सफाई भी करता है और जूठे बर्तनों के अतिरिक्त (ब्राह्मणपन की रक्षा करते हुए) बनाने-पकाने के बर्तन भी साफ कर रहा है.

आज मिसेज भाटिया ने डाक्टर साहब से कहा, ''भई रज्जो तो लंबी पड़ गयी है. किसी और नौकर-नौकरानी का प्रबंध करो ना, प्लेटें, प्याले और बर्तन धोते-धोते मेरे तो हाथों में लकीरें पड़ गयी हैं.''

''अरे? इसके लिए, मैं या करूं.'' डाक्टर भन्नाये, ''क्यों नहीं शिवदत्त से कहती कि अपनी बीवी को यहां काम पर लगाये—उसे अलग से पैसे दे देंगे.''

''कहा तो था. पर वो बोला—मेमसाब मैं चोरी-छिपे आपके बर्तन धो देता हूं. बिरादरी में पता चले तो हमारा पानी बंद हो जाये, हम भी तो पहाड़ी बामन हैं.''

''डैम साला बामन!'' भाटिया ने मुंह चढ़ाकर कुछ सोचते हुए कहा, ''खैर मैं उसी से पूछूंगा. वह तो हाते के बहुत से लोगों को जानता है.''

''अजी मैंने कहा था किसी और को ढूंढ ला, पर वो तो बातें बनाने लगा कि मेमसाब डेढ़ सौ कोठियों की कालोनी है. कोई तैयार ही नहीं होती. फिर दो दिन काम करेगी. तीसरे दिन नागा. कहिये तो डिप्टी के हाते में गरीब मुसलमानों के घर हैं, वहां कोशिश करूं.''

''अरे तो वही सही,'' भाटिया ने ऊंचे स्वर में उत्तर दिया, ''रज्जो कौन असल महरी थी, सुना है, वो चमारिन है. पांडे से कहो जो भी मिले उसे ले आये. बस चोर न हो.''

और शिवदत्त जब डिप्टी के हाते में नौकरानी ढूंढने पहुंचा, तो वहां रमजान अली की दुकान पर भीड़ जमा थी. रमजान की दुकान भी क्या है, अपनी रहने की कोठरी में ही उसकी छोटी सी—परचून की दुकान है. एक-दो बोरी आटा, चावल, थोड़ी घटिया किस्म की दालें, मसाले और नमक-तेल. हाते के अपने जैसे गरीबों को बेचता है, पर दुकानदार होने के नाते हाते में उसकी इज्जत है. शिवदत्त ने भीड़ में घुसकर देखा—रमजान अली सौदा बेचना छोड़, हामिद फल वाले के बेटे से उलझा हुआ था. अपनी मूंछ, पकी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए वो चिल्ला रहा था, ''तुम साले मेरी दुकान में जूते पहनकर घुस आये? साथ में कुत्ता लिये हो. कित्ता नजिन जिनावर है. आने दे तेरे अब्बा को, तेरी हड्डी-पसली तुड़वाऊंगा.''

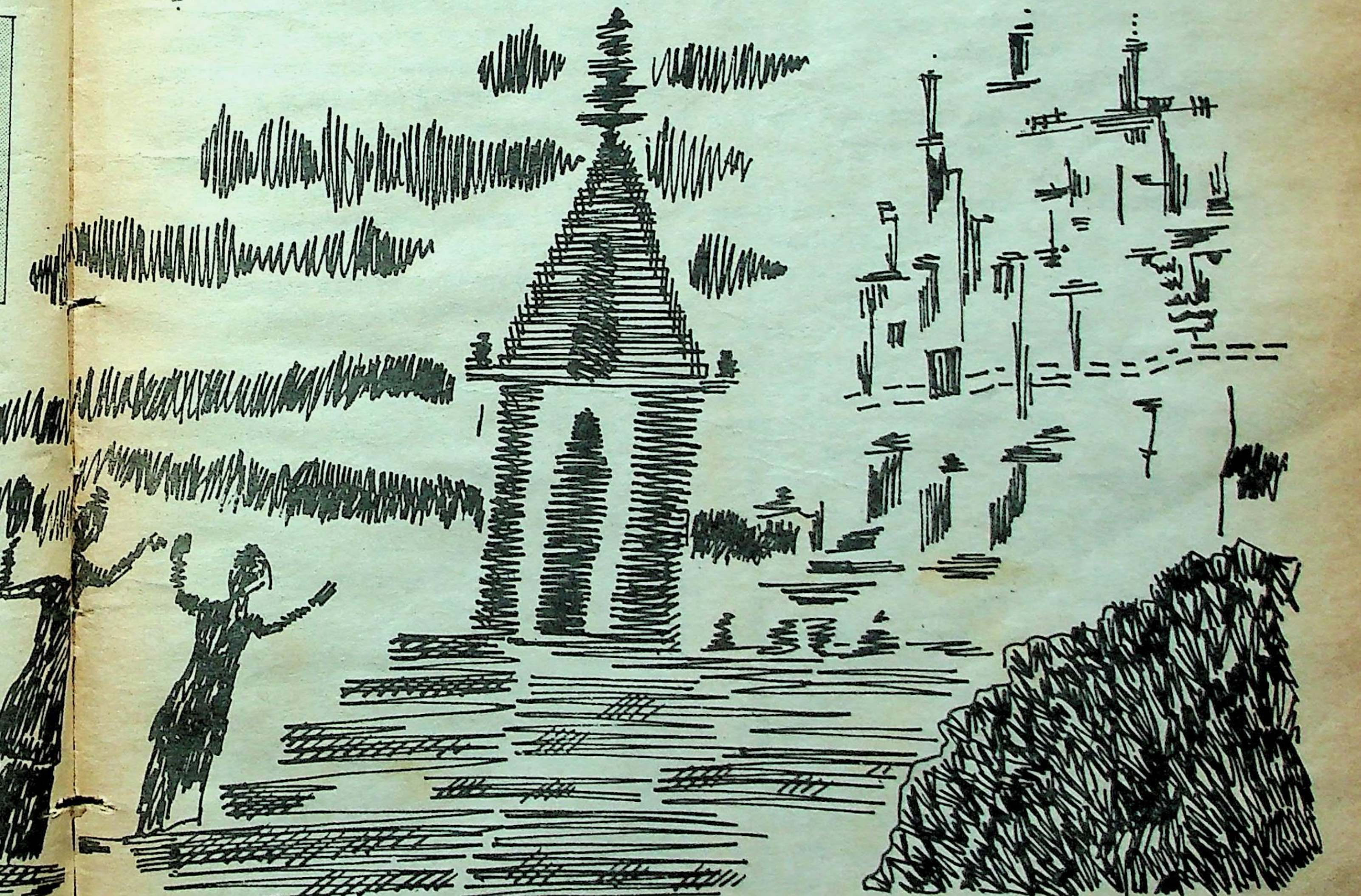

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे चचा, अब गुस्सा थूक दो, दो सौ गिराम दाल तोलो न. कुत्ता पीछे-पीछे चला आया तो मैं क्या करूं?"

"हूं. और तेरे जूते भी तेरे पीछे-पीछे चले आये. सब जानते हैं, मेरी दुकान की चौखट के भीतर जूता लाना मना है. तू जानबूझ के मुझे परेशान करने को जूता पहने घुसा है. जा भाग मैं नहीं दूंगा दाल-वाल."

लड़के ने झटका देकर रमजान से अपनी कमीज का पल्लू छुड़ा लिया, और बड़बड़ाता हुआ कालोनी की कैंटीनवाली बड़ी दुकानों की तरफ चल पड़ा. "मत दो दाल. क्या तुम्हारी दाल में सोना जड़ा है. हम बिहारी की दुकान से ले आयेंगे."

"ले आ, ले आ." रमजानी चीखा, "पांच के दस लगायेगा बिहारी. डेढ़ पाव दाल लेने बिहारी की दुकान जा रहे हैं साले..."

"अरे चचा जाने भी दो— गुस्सा थूक दो." बशीर ने भीड़ में से कहा, "जल्दी से आधा किलो आटा तोल दो."

पर रमजानी ने तराजू उठाने की बजाय, पास पड़े मग से चौखट के आसपास पानी बखेर दिया, फिर झाड़ू से उसे फैलाते हुए बड़बड़ाया, "ठैर जा, भइये. पहले ये जूते, कुत्ते की नाजिसकारी मेट दूं. अरे. मैं इसी कुठरिया में पांचों टैम निवाज पढ़ता हूं. यहां जूतों का क्या काम. अल्ला को भी मूं दिखाना है." पांडे को देखते ही उसने समर्थन के लिए स्वर ऊंचा किया, "क्यों पांडे, क्या मैं गलत कहता हूं? तुम हिंदू लोग पूजाघर में गंगा जल छिड़कते हो तो क्या हम अपने निवाज पढ़ने की जगा पानी से भी न धोयें?"

"जरूर धोओ चचा, पर जल्दी करो," बशीर ने अपना थैला दिखाया, "आधा किलो आटा."

रमजानी ने झाड़ू किनारे रखी, फिर सामनेवाले सरकारी नल पर जाकर हाथ धोये और आटा तोलने लगा.

कई ग्राहक निबट गये, भीड़ छंट गयी तो पांडे ने धीरे से पूछा, "चचा. ये बसंती, साजिद की अम्मा और (नूरी) वगैरह सब लोग कहां गयी हैं? मैंने बसंती के लिए एक काम ढूंढ़ा था. हमारे साहब के यहां नौकरानी की जगा खाली है."

"पांडे भाई. बसंती अब काम नहीं करेगी." रमजानी ने आकाश की ओर उंगली उठाकर कहा, "उस ऊपरवाले ने उसके बेटे की नौकरी लगवा दी. मोटर कंपनी में लग गया है कहीं. पहली तनख्वा मिली थी सो बसंती अलीगंज वाले महाबली पे परसाद चढ़ाने गयी है. साथ में नूरी, फहमिन सब गयी हैं."

"अरे!" शिवदत्त अचकचाया, "उन्हें क्यों ले गयी वा?"

"साजिद की मां उसकी धरम बहन बनी है. और नूरी उसके बेटे को राखी बांधती है. सो वो सबको ले गयी. फहमिन को काली माई की कढ़ाई चढ़ानी थी. वहीं पास में ही तो है काली माई का मंदर— बसंती वो भी चढ़वा देगी."

छोटी जातों के इस हेल-मेल से शिवदत्त खास परिचित नहीं है. क्योंकि कुछ भी हो वो ब्राहमण है. पहाड़ी है तो क्या?

"चचा, तुम लोग काली माई मानते हो?"

"मानना पड़ता है भइया. फहमिन के बेटे को माता निकली थी. जब कढ़ाई बोली तब ठीक हुआ."

"अच्छा चचा. बसंती न म्डी, आपकी नजर में कोई और कामवाली है तो बताओ. हमारी मेमसाब बड़ी परेसानी में है."

रमजान अली ने सिर खुजाया. क्षण भर सोचा, फिर बोला, "पांडे, हाते में कुल चार घर हिंदू हैं, सो हरिया और मुंदर तो धोबी हैं— उनपे धुलाई का काम बहोत है, उनकी घरवाली चौका-बासन काहे करेंगी. बसंती तो अब कमाऊ पूत की अम्मा है और कलुवा तो तुम जानो, भंगी होगा."

"चचा. तुम्हारी बिरादरी में कोई करे तो बताओ. मेम साब उसे भी रख लेगी."

"तो भईये नूरी से पूछूंगा. आजकल बड़ी तंगी में है. माचिस बनाने का काम भी बंद है आजकल."

"जरूर जरूर भेज देना चचा." पांडे ने चेताया, "आज ही दोपहर से काम पर आ जाये," फिर धीरे से फुसफुसाया, "ढंग से सब काम करेगी तो मेमसाब सौ रुपया तक दे देंगी..."

मित्रों को विदा करके डा. भाटिया ड्राइंग रूम में लौटे तो शिवदत्त ने साहस जुटाकर अपनी बात रखी. "साब जी. हम लोग कालोनी में एक छोटा-सा मंदिर बनाने की सोच रहे हैं. आप बड़े साब लोग भी कुछ-कुछ सहायता कर दें."

"क्या?" भाटिया एकदम भड़क उठे, "शहर में क्या मंदिरों की कमी है. हर सड़क पर तो एक छोटा-मोटा मंदिर-शिवाला बना पड़ा है. कोई मंदिर-वंदिर नहीं बनेगा कालोनी में."

शिवदत्त को निराशा तो हुई, पर उसने फिर हिम्मत करके बात बढ़ायी, "साब जी, शहर में तो अनेकों मंदिर हैं. पर हाते में हम सब पचीस-पचीस घरों की गरीब औरतें उतनी दूर कैसे जायें. तीज-त्यौहार, मन्नत-पूजा के लिए कालोनी में एक छोटा-सा मंदिर बन जाये तो सबको सुभीता हो जायेगा. मेमसाब लोगों को भी कभी न कभी तो मंदिर से काम पड़ता ही है."

"तो वे अलीगंज चली जाती हैं. देखो शिवदत्त, यह सरकारी जमीन पर बनी कालोनी है. यहां जमीन कहां लोगे? कारपोरेशन तुम्हें जमीन देगी नहीं, समझे. इस बेकार के झंझट में, मैं या कालोनी के और साहब लोग नहीं पड़ेंगे. न कोई चंदा देगा. पूजा करनी है तो अपने घरों में मंदिर बनाओ."

शिवदत्त चुप हो गया. साहब को नमस्ते करके बाहर आया तो सड़क पर प्रतीक्षा करते उसके साथी चपरासियों ने पूछा, "क्या कहा साहब ने?"

वह महिला

विवेकानंद

उन दिनों जब मैं कलकत्ता में ही अध्ययन हेतु एक छोटे से मुहल्ले में रहा करता था तीन चार कमरे छोड़ सामने वह रहा करती थी. अक्सर पानी आदि भरने में सहायता भी करती थी.

उस दिन न जाने क्या जुनून था उसके ऊपर सीधे मेरे कमरे में आयी. मैं खाना बनाने में तल्लीन था. नजदीक आ बैठ गयी. अनाप-सनाप प्रसंग छेड़ बाहुपाश में जकड़ने का प्रयास करने लगी. काफी विरोध के बाद भी जब न मानी मुझे याद है कि वह तीव्र जलन उसे तवे की, जिस पर रोटियां सेंक रहा था, मेरा बैठना और उस महिला का चमत्कृत हो देखना. उसके बाद वह मुझे दिखी भी नहीं. जाने कहां गयी. उसकी पश्चाताप से भरी आंखों की आज तक तलाश है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवदत्त ने उदास स्वर में उत्तर दिया, "साब कहते हैं हम कोई चंदा-वंदा नहीं देंगे. और यहां की जमीन सरकारी है, हमें नहीं मिलेगी."

"हूं," उमेदसिंह ने मुंह बिगाड़ा, "सरकारी जमीन! इस कालोनी के कितने साहबों ने बिना पूछे मोटर गिराज खड़े कर लिये हैं? कितनों ने कोठियों के आगे बाढ़ लगा के जमीन घेर के लान बना लिये हैं? किसी को तो सरकार रोकने नहीं आयी. हम छः-सात फुट की एक कोठरी इस पीछे के मैदान के किनारे मूर्ति रखने को बना लेंगे तो कौन गजब हो जायेगा?"

उमेदसिंह ठेले पर सब्जी बेचता है, देह से तगड़ा और स्वभाव से अक्खड़ है. पर बात वजनदार करता है. उसकी राह पर रामचरन माली ने भी टीप लगाई, "रही चंदे की बात. न दें साब लोग, हम सब मिलके दो-तीन हजार ईंटा और दस बोरा सीमेंट जुटा लेंगे. खुद दीवार उठा लेंगे."

"हां-हां हम कोई मिट्टी के बने हैं," उमेद बोला, "मंदिर तो बनेगा, धरम के काम में ये बड़े लोग चंदा न देंगे तो क्या— दोनों हाते वाले हिंदू-मुसलमान सब देंगे. यह मेरे जिम्मे छोड़ो."

और फिर तय पाया कि मंदिर जरूर बनेगा.

इस कालोनी में साहब लोग उचित-अनुचित निर्माण अपनी सुविधा और पैसे की अधिकता के अनुसार करते ही रहते हैं. फ्लैटों के भीतर तो लोगों ने कमरे, दालान, बाथरूम इत्यादि बनाये ही हैं, बाहर भी कुछ न कुछ किसी का बनता ही रहता है. ऐसे में किसी कोठीवाले को यह पता ही नहीं चला कि विमलाजी के स्कूल के पीछेवाले खाली मैदान के किनारे धीरे-धीरे छः-सात महीने में एक कोठरीनुमा मंदिर भी तैयार हो गया और उसमें मूर्ति की स्थापना भी हो गयी. पता चला तब, जब स्थापनावाले दिन पूरी रात भर शिवदत्त पांडे एंड कंपनी के लोगों ने रामायण का सुरदार और बेसुरा पाठ किया. हाते के नंग-धड़ंग बच्चे आधी रात तक 'बजरंग बली की जय' और 'राजा रामचंद्र की जय' के नारों से कालोनी के साहबों की नींद में विघ्न डालते रहे. रातभर के जागरण से बोझिल आंखें और रामायण पाठ के कारण भरांये कंठवाले शिवदत्त ने जब एक दोने में चार बताशे व एक केले का प्रसाद मेमसाहब को थमाकर कहा, "मेमसाहब जी, ये अपने मंदिर का परसाद है. कल मूरत की स्थापना हुई थी," कि बाथरूम से निकलते भाटिया साहब ने शिवदत्त को घूर कर कहा, "ओह, तो ये रात भर उसी बात का होहल्ला मच रहा था!"

"जी साब जी." शिवदत्त ने विनीत स्वर में उत्तर दिया, "बस वो तो कल भर की बात थी. अब तो बस सबेरे-सांझ आरती करके पट बंद कर देंगे."

"हूं." भाटिया ने गुर्राकर कहा, "बड़ी जल्दी मंदिर बना डाला. सरकार से इजाजत ले ली थी?"

शिवदत्त ने सिर झुका लिया, तो उन्होंने धमकी के स्वर में कहा, "किसी ने शिकायत कर दी तो मंदिर-वंदिर सब धरा रह जायेगा. खिंचे-खिंचे फिरोगे. तुम लोग भी अजब औंधी खोपड़ी के लोग हो."

शिवदत्त नतमस्तक चुपचाप बाहर चला आया. उसे अभी बहुत से घरों में परसाद बांटना था. डिप्टी साहब के हाते के सभी हिंदू-मुसलमान घरों में, उसने दोनों में रखी चुटकी-चुटकी भर पंजीरी और चार-चार बताशों का प्रसाद दिया. रमजान अली ने

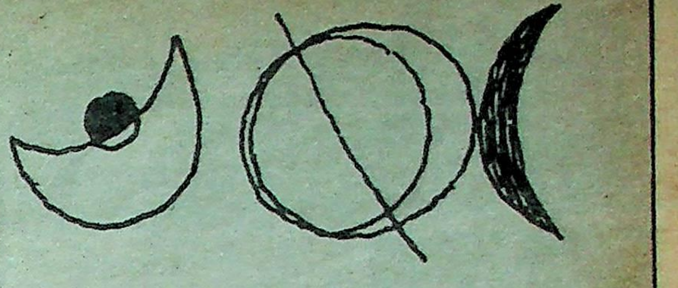

निली

इदरीस शाह

किसी व्यक्ति को पता चला कि निली अपने अनुयायियों को संगीत और मनोरंजन का अभ्यास करने को कहते हैं, साथ ही उन्हें किताबें पढ़ने और अजीब-अजीब जगहों में मिलने को प्रोत्साहित करते हैं.

यह व्यक्ति उनके पास पहुंचा और बोला, "मुझे तो अब याद भी नहीं है कि आप कितने बरसों से इन्हीं चीजों के खिलाफ काम करते आ रहे हैं. और अब मैं सुनता हूं कि आप-अपनी झूठी शिक्षा में इन्हीं का इस्तेमाल कर रहे हैं. या तो इस अभ्यास को छोड़ दीजिए या फिर बताइए कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं."

निली ने कहा, "न मुझे छोड़ने की जरूरत है, न कारण बताने की, फिर भी आपको बताकर मुझे खुशी होगी. कारण यह है, मैं उन लोगों को यह बातें करने को कहता हूं जो यह समझते हैं कि उन्हें क्या करना है. अधिकतर लोग नहीं समझते, और वे उस व्यक्ति की तरह हैं, जो किसी रेस्तरां में जाते हैं और सूप को पीने के बजाय, उसको बनानेवाले से प्यार करने लगते हैं. लोग गलत कान से संगीत सुनते हैं, इसलिए मैं तब तक उन्हें संगीत से दूर रहने के लिए कहता हूं, जब तक वे उसका लाभ उठाने के योग्य नहीं हो जाते, कि वे संगीत को खेल न समझें. जब तक वे नहीं समझते कि संगीत किस लिए है, वे इसका उपभोग वैसे ही करते रहते हैं जैसे कुछ लोग आग पर हाथ सेंकते रहते हैं, जबकि आग पर कोई चीज पक रही होती है. जहां तक माहौल का संबंध है, कुछ वातावरणों का निर्माण सौंदर्यवादियों द्वारा किया जाता है, जो अपनी कीमत को बढ़ने से रोक देते हैं ओर दूसरों को भी कुछ बहुमूल्य प्राप्त करने से पहले रोक देते हैं. वे उन लोगों की तरह हैं, जो तीर्थ यात्रा को जाते हैं और केवल यही सोच पाते हैं कि उन्होंने कितने कदम चला था!

"जहां तक अभ्यासों का संबंध है, मैं उन्हें वहीं तक अनुमति दे सकता हूं, जहां तक वे यह न समझ लें कि उन्हें छिछलेपन के बजाय गहराई में उतरना है, कि फल की सुगंध भले ही बहुत अच्छी हो, वह सूंघने के लिए नहीं, खाने के लिए है. सुगंध पर किसको आपत्ति हो सकती है? लेकिन अगर लोग खाना बंद कर देंगे, तो जल्दी ही इनसानियत का अंत हो जायेगा." □

अनुवाद : सुदीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी से पहले और बाद ताकत व जवानी के लिए मिलें या लिखें

मिलने का समय :
सुबह 11 से 1, शाम 6 से 7.30
रविवार सुबह 11 से 1 (केवल)

कीमती पुस्तक पत्र लिखकर मुफ्त मंगवाएं

अगर आप कई जगह से इलाज करवाकर भटक चुके हैं तो आईए, हम आपको ताकत व जवानी की दौलत से मालामाल कर दें। हमारे खानदानी शफ़ाख़ाना के चार पुश्तों से चले आ रहे कीमती नुस्ख़े जो किसी ज़माने में सिर्फ राजे-महाराजे, खान, नवाब व रईस-लोग ही इस्तेमाल कर सकते थे, अब आप भी हमारे उन कीमती शक्तिवर्धक खानदानी नुस्ख़ों को इस्तेमाल करके अपनी खोई हुई सेहत, ताकत व जवानी फिर से प्राप्त करके दीर्घायु तक सुखी विवाहित जीवन का भरपूर लुत्फ उठा सकते हैं। अगर आप बचपन की गलतकारियों की वजह से अपनी ताकत व जवानी खत्म कर चुके हैं, तो परेशान न हों। हमारे सैक्स स्पैशलिस्ट (Sex Specialist) से जल्द मिलकर या लिखकर जल्द लाभ उठाएँ। अपने दिल की बात आज ही डॉक्टर साहब से स्वयं बता दें या लिख दें। अधिकतर पुरुष शर्म, संकोच या अपनी कमजोरी छिपाकर विवाहित जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा करने से आपका जीवन नष्ट हो सकता है। लेकिन समय पर सही सलाह और सही इलाज से दुख को सुख में बदला जा सकता है। खानदानी शफ़ाख़ाना दिल्ली में कई मरीज आकर दिल की मुराद पाते हैं।

Note : पत्र व्यवहार से भी इलाज होता है। जो लोग नहीं आ सकते, पत्र में पूरी तफसील लिखकर घर बैठे मशवरा व दवाएँ प्राप्त कर सकते हैं। पत्र व्यवहार गुप्त रखा जाता है। दुनिया के कोने-कोने से ख़ानदानी शफ़ाख़ाना के इलाजों के लिए मनी आर्डर, ड्राफ्ट, पौंड, डालर इत्यादि आते हैं

Note : विदेशों के लिए जरुरी सूचना

हमारे इलाज भारत के इलावा विदेशों के हर मुल्क में भी जाते हैं। विदेशी भाई रकम एडवांस में भेजें। दवाएँ हवाई जहाज से भेजी जाती हैं।

ख़ानदानी शफ़ाख़ाना

4/12, पहली मंजिल (नज़दीक ब्राडवे होटल)
आसफ अली रोड़, नई दिल्ली -110 002
फोन : 267709, 269650

भी प्रसाद माथे से लगाते हुए कहा, ''पांडे, अब तो पूजा-पाठ का भौत सुभीता हो गया ना. महजिद, मंदर बिना भी कोई जिनगानी है. पर खर्चा तो बहुत ढेर हुआ होगा?''

''हां, चचा. हम सबने मिलजुलकर मंदिर का खर्चा तो उठा लिया था. बस मूरत की परेसानी थी, पर वो बिहारी है न कालोनी का बड़ा परचूनिया, वो चीनी की गड़बड़ी में जेहल जाते-जाते बचा, तो उसने झट से जैपुर से मूरत मंगवा के मंदिर को भेंट कर दी.''

''अच्छा! मैंने भी कल दूर से मूरत देखी थी. संगमरमर की है. और जमीन कित्ते की मिली?''

''जमीन.'' शिवदत्त ने सिर खुजाया, ''चचा. जमीन तो मुंसपालटी की ही है. यूं ये पूरी कालोनी ही उसकी है. हमने वहां जाकर पूछा तो किलार्क बोला, 'अबे यहां कौन पूछता है. हाफिज जी ने दो सौ गज में अपनी भैंसों की डेरी बना ली. विमला जी ने स्कूल खोला... दसियों साल हो गये.' सो चचा सौ रुपये हमने उसे थमा दिये बस. वैसे मंदिर तो मैदान के एक कोने में बनाया है.''

''खैर वो तुम जानो.'' रमजानी ने बे मुरब्बीपन छांटा, ''पर हमारी कौम में तो महजिद जभी बन सकती है, जब वो जमीन मोल ली जाये या कोई बकफ कर दे.''

''बकफ क्या होता है, चचा?''

''लो बकफ नहीं समझे– मतलब कोई बड़ा आदमी अपनी जगा दान में दे दे.''

''अब चचा ये तो न कहो,'' शिवदत्त ने विरोध किया. ''हम साहब के साथ दिल्ली घूमे, मथुरा भी गये. वहां हमने कई महजिद देखीं, तो बादशाहों ने मंदिर तोड़ के बनवा डालीं, तो क्या वहां जमीन का दाम दिया होगा?''

''अरे भइये,'' रमजानी ने पंजीरी फांक दोना फेंकते हुए कहा, ''अब बास्साह तो बास्साह ठैरा, वो तो तलवार के जोर पे लोगों की जोरू भी भी ले लेते थे. उनकी भली चलाई.''

ग्राहक आ गया और रमजान अली सौदा तोलने में व्यस्त हो गया.

पांडे भी प्रसाद की थाली लेकर दूसरी ओर चल पड़ा. रमजान ने आवाज लगाई, ''पांडे अलगे महीने अजमेर सरीफ जा रिया हूं, कुछ मंगाना हो तो बताना.''

पूरे हाते में सनसनी फैल गयी थी. औरतें बच्चे सभी दौड़कर मंदिर के आस-पास जमा हो गये थे. हाते के सभी पुरुष अपने-अपने रोजगारों और धंधे पर गये हुए थे, इसलिये शिवदत्त और उमेद की पत्नियां रमजान अली की दुकान पर पहुंची.

''चचा, चच्चा, गजब हुई गवा,'' उमेद की पत्नी ने घबड़ाये स्वर में पुकारा, ''कालोनी में थानेदार आवा है. संग में चार सिपाही भी हैं.''

''कोई बारदात हो गयी क्या?'' रमजान दोपहर की नमाज को जाने ही वाला था. दुकान बंद करते-करते बोला, ''किसी कोठी में चोरी हो गयी होगी.''

''अरे नाहिं चचा. उन तौ मंदिर तोड़ै के बदे आवा है. कहि रहा है कालोनी से सिकायत गयी है कि सरकारी जमीन पे नाजायज़ तौर से मंदिर बनावा है. ये भी घर नई है. पांडे दफ्तर गये हैं. हम जनानी लोगा का करीं...''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा यह बात है." रमजान चौंके, "कालोनी से किस ससुर ने सिकायत की होगी. हुआं तो सारी कोठियों में हिंदू बसते हैं? बहू. तू घबड़ावे मत, मैं कासिम को सैकल पै पांडे को बुलाने भेजता हूं. मैं भी निवाज पढ़के अभी हाल आया. घबड़ाओ मती. मंदिर तोड़ेगा! कोई अंधेर मचा है क्या?"

नमाज पढ़कर रमजान अली जब कालोनी के मैदान में पहुंचा तो शिवदत्त और बंसी नाई आ चुके थे. थानेदार उन्हें धमका रहा था, "अबे तुम लोगों के बड़े पर निकल आये हैं. सरकारी जमीन पे मंदिर बना डाला. अपनी मूर्ति-बूर्ती उठा लो. यह कमरा कल गिरा दिया जायेगा."

"साब? थानेदार साब. ऐसा जुलुम मत कीजिए. साब," शिवदत्त ने खुशामद की, "आप भी हिंदू हैं साब. आप मंदिर तोड़ेंगे तो पाप लगेगा."

"हूं. पाप लगेगा? हम तो अपनी सरकारी ड्यूटी पूरी करेंगे. यह कालोनी की जमीन कारपोरेशन की है. यहां कोई प्राइवेट आदमी कुछ नहीं बना सकता. क्यों बनाया तुमने मंदिर?"

"पर... पर साब," बंसी न शिकायती स्वर में कहा, "कालोनी में तो कई साहबों ने कोठियों के बगल में गिराज बना लिये. ये जो इस्कूल आप देख रये हैं, ये भी मुन्सपालटी की जमीन पे बना है. दस बरसे हो गये इसे."

"और वो हाफिज जी की डेरी," शिवदत्त ने दिखाया. डेढ़ सौ गज जमीन घिरी है भैंसों से, चार दीवारी है– टीन छाया है. इसे तो कोई तोड़ने नहीं आया."

थानेदार ने झल्लाकर उत्तर दिया, "ठीक है– ठीक है, बने होंगे. पर जब तक हमें शिकायत नहीं पहुंचे, हम लोग क्यों तोड़-फोड़ करेंगे. मंदिर की तो ऊपर शिकायत पहुंची है. और बात सही भी है. यह आठ फुट जमीन जिस पर मंदिर बना है, सरकारी हैं."

शिवदत्त व बंसी का मुंह धुआं हो गया. गरीब आदमी थानेदार से क्या बहस करें. फिर भी पांडे ने कहा, "साब, सौ रुपये तो हमने वहां दफ्तर में भी दिये थे."

"अच्छा– रिश्वत देकर आये थे? ये दसरा जुर्म है." थानेदार ने एक बार वहां जमा नंग-धड़ंग बच्चों व मैली-कुचैली धोतियों में लिपटी हाते की स्त्रियों पर रोबदार दृष्टि डाली– फिर जोर से कहा, "ये लोहे का फाटक और मूर्ति कल तक हटा दो. कोठरी दो दिन बाद गिरा दी जायेगी."

"मंदिर नहीं गिराया जा सकता थानेदार साब," भीड़ में से आगे बढ़ते रमजान अली ने कहा, "ये मंदिर का कमरा पूरे साल भर में बन पाया है. जित्ता चंदा हो जाता था उतनी दीवार उठ जाती थी. तब तो कालोनी के साहबों ने सिकायत नहीं की. दस महीने ये मंदिर बिना मूरत खड़ा रहा, तब तो आप गिराने नई आये."

"अरे मियां भाई. तुम काहे को इस मामले में टांग फंसा रहे हो," थानेदार ने मजाक में कहा, "तुमने कौन पूजा करनी है."

"वाह साहब वाह. खुदा का घर ठैरा, वो मंदर हो या महजिद. इज्जत तो दोनों की बराबर है. जब तक इस कोठरी में मूरत की स्थापना नहीं हुई थी– आप तोड़ जाते ये कोठरी. पर अब जब इनके भगवान यां पर बिठा दिये गये, तब बात और है. ये मंदिर नहीं टूटेगा साब. हम सब हाते वाले सत्तियागिरै कर देंगे–जान दे देंगे या पर..."

मेरी टाइलर उवाच

जहां तक मेरी बात है, मैं नक्सलवादी आंदोलन के बारे में किसी व्यापक जानकारी का दावा नहीं कर सकती. जो कुछ मैं जान सकी हूं, उसका एक काफी बड़ा हिस्सा मैंने जेल में रहकर ही जाना है. जिन नक्सलवादियों के संपर्क में मैं आयी, उनकी निष्ठा और ईमानदारी ने, भारतीय जनता की चिंता के लिए उनकी सच्ची चिंता ने, उनकी देशभक्ति ने और आत्म-बलिदान के लिए हमेशा तैयार रहनेवाली प्रवृत्ति ने मुझे बेहद प्रभावित किया. मैंने जेल के कर्मचारियों और कैदियों को समान रूप से उनकी प्रशंसा करते सुना– वे उनके साहस, व्यापक भ्रष्टाचार के प्रति प्रतिरोध, निस्वार्थता और बेहद दलित, पीड़ित तबके के साथ भी पूरी तरह से घुल-मिल जाने की उनकी क्षमता की प्रशंसा करते थे. सरकार के जबरदस्त दमन के बावजूद नक्सलवादी आंदोलन का बने रहना ही इस बात का संकेत है कि भारतीय जनता की आवश्यकताओं के संदर्भ में इस राजनीति का कितना ज्यादा औचित्य है. भारत के संसदीय जनतंत्र को उन्होंने एक धोखा कहकर नामंजूर किया और 26 जून 1975 की घटनाओं ने तथा अब संसदीय प्रणाली द्वारा किसी कारगर रूप से काम कर सकने में विपक्षी दलों की पूर्ण असमर्थता ने इसे साबित कर दिखाया है, आंतरिक आपात स्थिति की घोषणा के कुछ ही दिनों बाद कांग्रेस सरकार ने नक्सलवादी गुटों पर आधिकारिक रूप से प्रतिबंध लगा दिया. लेकिन वे काफी पहले से गुप्त संगठन के रूप में काम करने के आदी थे इसलिए वे पहले की तरह काम करते रहे. अंततः समय ही बता पायेगा कि भारत की समस्याओं के समाधान के लिए नक्सलवादी कोई राजनीतिक नेतृत्व दे सकेंगे या नहीं... □

('भारतीय जेलों में पांच वर्ष' से)

वहां जमा भीड़ में जैसे बिजली-सी कौंध गयी. शिवदत्त के साथ-साथ हिंदू-मुसलमान, स्त्री-बच्चे सभी चीखने लगे, "सतियाग्रह करेंगे. इस मंदिर पे जान दे देंगे– जैय बजरंग बली की जै."

थानेदार अचकचा गया. वो फसाद नहीं चाहता था. उसे रमजान अली पर गुस्सा आया, पर करे क्या– भीड़ बढ़ती जा रही थी.

"अच्छा-अच्छा. बंद करो ये बकवास." वो जोर से डंडा हिलाकर बोला, "तुम जाहिलों के मुं कौन लगे. ठीक है–ठीक है. नहीं तोड़ेंगे हम मंदिर. पर अब कोई शिकायत-विकायत नहीं पहुंचनी चाहिये," फिर वो रमजान की तरफ मुड़ा, "वाह मियां, तुम्हारा भी जवाब नहीं. तुम्हीं इनके बजरंग बली बन गये वरना..."

और "जै बजरंग बली की जै." "राजा रामचंद्र की जै" के नारों के साथ "थानेदार साब की जै" के बीच थानेदार साहब अपने फौज-फाटे सहित बिदा हो गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 21 जून 1933. बेहटा, लखनऊ.
प्रमुख कृतियां : 'प्रपंच तंत्र', 'दंडविधान' (उपन्यास), 'मेरी कहानियां' (कहानी संग्रह), 'तेंदुआ', 'आला अफसर' (नाटक)

लंबी कहानियों का यह सिलसिला प्रारंभ हुआ था द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी 'सरस्वती' से. पिछले अंक में दूसरी कड़ी के रूप में प्रकाशित हुई थी कवि-कथाकार रामेश्वर शुक्ल अंचल की कहानी—'देहगाथा'. अब प्रस्तुत है, इसी क्रम को आगे बढ़ाती कहानी—

☐ मुद्राराक्षस

एहसास

दुनिया का गहरा अंधेरा भी कभी-कभी उन आंखों के सामने झीना पड़ जाता है जो उस वक्त कुछ भी देखने से इनकार करना चाहती हों, हमदम साहब अंधेरे के इस झीनेपन से डर रहे थे. अब उन्हें मृत्यु का नहीं रोशनी का भय था.

रात अभी मुश्किल से आधी बीती थी. नहर के किनारे उगे पतावर की लंबी धनुषाकार पत्तियों का बड़ा गुच्छा उनकी आंखों और आकाश के बीच बहुत साफ उभर आया था जैसे काली रोशनीवाला कोई अनार छूटकर ठहर गया हो.

हवा एकदम ठहरी हुई थी और हमदम साहब की निगाहें सिर्फ दो चीजें देख पा रही थीं, बारीक लंबी तलवारों जैसी पतावर की काली पत्तियां और उनकी पीछे किसी खाली पड़े सिनेमाघर के ढके परदे की तरह खिंचा हुआ आसमान.

अब उनका ध्यान गया, नीचे पानी है, टखने से ऊपर तक, उनके पांव भिगोता हुआ.

बहुत देर से ठहरी हुई या घुटी हुई सांस सहसा उनके फेफड़ों ने इस तरह खींची जैसे पानी में लंबी डुबकी लगाकर आये हों और इसी सांस के साथ एक मितली उठी. इस बार पसलियों के दर्द से नहीं, न खौफ से. मितली एक दुर्गंध से उठी, खून की दुर्गंध, अपने खून की या दूसरों के खून की.

इस बीच शायद वे बेहोश हो गये थे क्योंकि अपनी पसलियों से लेकर कंधे और कान तक आग से जलाये जाने की जैसी तकलीफ वे फिर महसूस करने लगे. यह गनीमत थी कि अब वहां सिर्फ वह असहय जलन ही थी वरना जिस वक्त उन्हें गोली लगी थी उस वक्त उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने बहुत वजनी कुल्हाड़ी से उनका आधा हिस्सा चीर दिया हो और चीरने के बाद उनकी पसलियां मरोड़ रहा हो. तभी वे चीखे थे. बेसाख्ता. बहुत दर्दभरी आवाज में.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उन्होंने गौर किया, क्या वे अकेले ही चीखे थे? वहां तो बहुत लोग थे. अंधेरे में सही तादाद वे नहीं जान पाये थे लेकिन सौ एक लोग तो रहे ही होंगे.

मौत से पहले आदमी के शरीर में शायद बहुत कुछ बदल जाता है जैसे उसकी आवाज. वह अपनी बोली बिल्कुल भूल जाता है. कोई शब्द उसे याद नहीं रहता. कान सुनना बंद कर देते हैं. दहशत से थमकर खून इस कदर जोर से चीखता है कि कान बहरे हो जाते हैं. शायद यही कुछ हुआ हो. हमदम साहब के अलावा और लोग भी चीखे होंगे. पर उनकी आवाजें सुनाई नहीं दीं. याद नहीं पड़ता कि गोली की आवाज भी उन्होंने साफ-साफ सुनी हो.

उन्होंने हिलना चाहा. हिल नहीं. हिल नहीं पाये. लेकिन इतना सोचने भर से उन्हें लगा उनकी पसलियां कोई फिर मरोड़ रहा है, मरोड़ कर उस जख्म से खिलवाड़ कर रहा है. एक दबी हुई कराह उनके गले से निकली लेकिन वे फौरन ही खामोश हो गये. थोड़े पल के खौफनाक सन्नाटे के बाद एक चीख और उभरी जैसे किसी का गला दबाया जा रहा हो. हमदम साहब इस बार और ज्यादा डर गये. उन्होंने ही कराहकर गलती की थी और अब अगर कोई और भी वहां जिंदा है तो इस बुरी तरह चीखकर उसने तो कयामत ही बुला ली है. वे लौटेंगे और खोज-खोजकर गोली मारेंगे. हमदम साहब सांस रोककर दहशत से आंखें मूंदे देर तक इंतजार करते रहे लेकिन गनीमत है कि दुबारा वहां कोई नहीं आया. खौफ फिर भी कम नहीं हुआ. वहां अंधेरा भी तो काफी नहीं था. अगर वे दुबारा आयें और थोड़ा-सा गौर करें तो हमदम या उस चीखनेवाले दूसरे आदमी को खोज सकते हैं. मगर इससे ज्यादा भयावह स्थिति तो चार-पांच घंटे बाद

> देखिए इस वक्त हमारे मुल्क के वजीरे आजम जनाब राजीव गांधी साहब पर चारों तरफ से हमले हो रहे हैं. अपोजीशन जनाब बदेशी ताकतों की कठपुतली बनकर हमारे वजीरे आजम को हटाना चाहता है. उनकी कोशिशें हैं जनाब कि मुल्क टूट जाये.

आनेवाली थी. पर क्या तब तक जिंदा रह पाना मुमकिन होगा? उन्होंने मायूस होकर गर्दन नीचे झुकायी और तीखी धारवाले पतावर की पत्तियों पर माथा टिका लिया. उनके दोनों बाजू सलीब पर लटकाए आदमी की तरह पतावर पर लंबे होकर उलझे हुए थे.

पतावर में माथा टिकाए हुए उन पर अब एक गहरी मायूसी छाने लगी. या शायद नींद या नीम बेहोशी. खून की दुर्गंध अब इतनी तीखी और असहय हो गयी थी कि उन्हें लग रहा था जैसे वे लहू के दरिया के किनारे डाल दिये गये हों. अपनी लाचारी पर उन्हें यकायक रोना आ गया पर वे रो नहीं पाये. खुश्क हो गये. गले में लकड़ी की फांसें-सी चुभीं और आंखों में जलन होने लगी. न हिचकी आयी न आंसू.

खुदाया, ये क्या हुआ? आखिर मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था? होश में आने के बाद उनके कलेजे में पहली बार यह इबारत उभरी कि तभी वह आदमी फिर कराहा, ठीक उसी तरह जैसे उसका गला दबाया जा रहा हो.

खून की तीखी बदबू के बीच यह आवाज—हमदम साहब को लगा जैसे उनके कानों के पास अपने बदबूदार दांत चमकाती हुई मौत गुर्रा रही हो. अगर उनकी पसलियों की तकलीफ फिर न उभर आयी होती तो जरूर वे मौत के उस दुर्गंध युक्त काल्पनिक जबड़े से बचने के लिए पतावर से नीचे फिसल जाते. उन्होंने अपने दांत सख्ती से भींचकर माथा पतावर पर और ज्यादा गड़ा दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत के दांतों की वह दुर्गंध दारोगा श्याम लाल को भी महसूस हुई. दो सिपाहियों के साथ वह साइकिल पर नहर के किनारे-किनारे चला आ रहा था. सिपाही आपस में ऊंची आवाज में बातें कर रहे थे. दारोगा ने दुबारा लंबी सांस खींची. इस बार वह दुर्गंध महसूस नहीं हुई. उसे लगा यह वहम था. पर तभी एक सिपाही ने बातों का सिलसिला तोड़ दिया, "अबे ये बदबू काहे की है बे?"

इसी वक्त दारोगा ने वह गंध फिर महसूस की. इस बार पहले से ज्यादा.

"मरा जानवर कोई नहर में धकेल गया है." मगर यह कहते-कहते दूसरा सिपाही भी सहम गया. तीनों को लगा यह दुर्गंध मरे जानवर की नहीं, ताजे खून की है. इसी बीच दूसरे आदमी के कराहने की आवाज आ गयी. दारोगा को रात के उस सन्नाटे में झुरझुरी हो आयी. तीनों ही सहसा साइकिलें रोककर उतर पड़े.

दारोगा ने कड़कती आवाज लगायी, "कौन है बे वहां? कौन है बे."

जवाब में पहले से भी ज्यादा सहमा हुआ सन्नाटा छा गया.

"अबे कौन है, बोलता क्यों नहीं?" एक सिपाही ने टार्च जला दी.

"साहब, आवाज इधर नहर के किनारे से आती लगीं थीं," दूसरा सिपाही बोला.

अब उन्होंने महसूस किया, बदबू बहुत तेज है और उनके पैरों के करीब ही कहीं है. उन्हें यह भी लगा, जमीन आसपास खासी भीगी है. तभी पहला सिपाही लगभग चीख पड़ा, "साहब, लाश, लाशें!"

दारोगा ने अपनी टार्च की रोशनी नहर के ढाल पर घुमायी. उस बेहद तीखी रोशनी में नहर के पानी तक बहे खून में लिथड़ी हुई लाशें एक दूसरे से उलझी हुई पड़ी थीं—दस, बीस, पचीस, पचास, सौ—इतनी लाशें और इतना खून दारोगा ने जिंदगी में कभी नहीं देखा था.

दारोगा झटके से पलटा. लगा वह चीखेगा. पर बगैर कोई आवाज निकाले वह ढाल से कूदकर ऊपर सड़क पर आ गया और तेजी से शहर की तरफ पैदल दौड़ पड़ा. वह इस तरह बेतहाशा दौड़ रहा था जैसे लाशों से हटकर मौत अपने खौफनाक पंजे उसकी तरफ उठाए हुए पीछे झपटती आ रही हो.

नहर के आरपार बने पुल से गुजरने वाली चौड़ी सड़क पर आकर दौड़ने में उसे कुछ ज्यादा आसानी हुई. गोल चक्करवाले बड़े चौराहे से सीधे आगे बढ़कर उसकी चौकी थी. पर वह उधर नहीं गया. दाहिने मुड़कर दुबारा बायें एक पतली सड़क पर उतरकर वह उसी तरह दौड़ता रहा.

इसी सड़क के छोर पर पुलिस कप्तान का बड़ा-सा मकान था. मकान के फाटक के बाहर एक छोटी गुमटी थी पहरेदारों के लिए.

और कोई दिन होता तो दारोगा गुमटी पर खड़े संतरी से जरूर बात करता. उसे खुश करने के बाद वह कप्तान साहब के बारे में पूछता. लेकिन आज सहसा वहां अंधेरे को

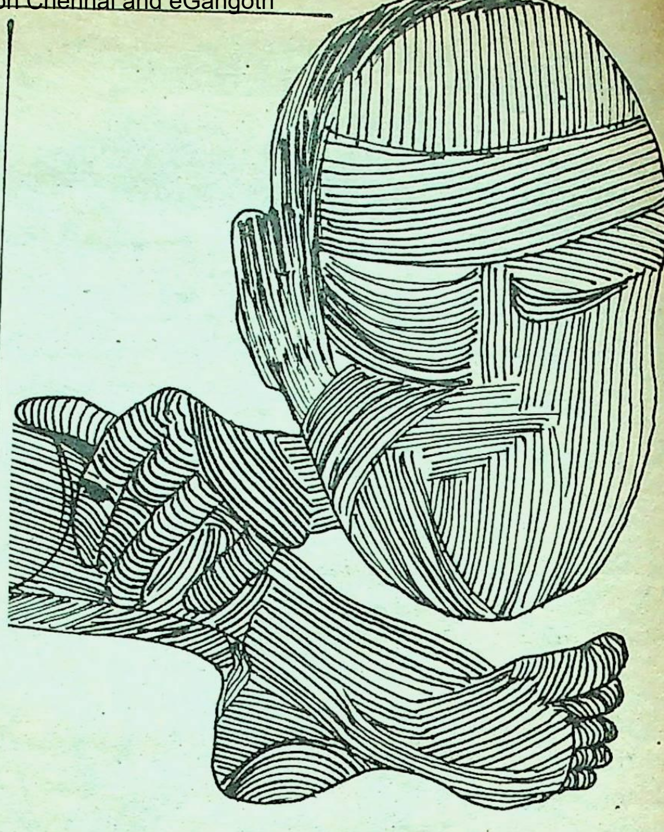

फाड़ता हुआ दारोगा प्रकट हुआ और छलांग लगाकर फाटक के अंदर हो गया. बौखलाया हुआ संतरी चीखा, "अरे ए..."

कप्तान उस वक्त गाजियाबाद कला मंडल के एक नाटक समारोह से लौटा था. अभी उसने जीप से एक पैर बाहर लटकाया था कि वह अर्ध विक्षिप्त दारोगा वहां पहुंच गया. जीप का सिपाही उछलकर दारोगा के पीछे आ खड़ा हुआ.

दारोगा कुछ बोला नहीं. उसने सिर्फ इस तरह एक यांत्रिक अभिवादन किया जैसे हथेली के पीछे से माथे का पसीना पोंछ रहा हो. हाथ सीधा नीचे नहीं आया. लगा उसका जोड़ उखड़ गया हो. वह झूल-सा गया है. कप्तान ने उसे निगाह गड़ाकर घूरा, "क्या है?"

बहुत कोशिश के बाद दारोगा के गले से दो बार अस्पष्ट-सा एक शब्द निकला, "श्रीमान..."

यह संबोधन इतना टूटा-फूटा था जैसे बहुत देर से वह अपनी पसीजी हथेली में मुठ्ठी बांधकर दबाये रहा हो.

कप्तान बहुत जल्दी उस घबराहट को समझ गया. चौकी पर कोई हवालाती उसके हाथों मर गया है. थोड़ी सख्त लेकिन आश्वासन देती आवाज में उसने कहा, "ठीक से बोलो, क्या बात है?"

वह एक शब्द 'श्रीमान' भी इस बार साफ नहीं निकला. वह कुछ इस तरह हिलने लगा जैसे उस पर कोई दौरा पड़नेवाला हो.

"हुआ क्या है, आराम से बताओ. तमाशा मत करो..." कप्तान ने कहा, "पानी पियोगे? पानी लाओ."

सिपाही अंदर की तरफ दौड़ गया. लेकिन संतरी उससे पहले ही एक पीतल का गिलास भर लाया.

दारोगा को संभलने में ज्यादा ही वक्त लगा. तब तक दोनों

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही भी दारोगा की साइकिल लिये हुए फाटक पर आ खड़े हुए.

दारोगा ने लाशों का जो ब्योरा दिया उस पर कप्तान सहसा विश्वास नहीं कर पाया. उसने दारोगा को एक बार फिर गौर से देखा. दारोगा ने शराब नहीं पी हुई थी. भंग पीकर भी यह हालत नहीं हो सकती थी.

देर बाद दारोगा ने जो कुछ बताया उस पर कप्तान को सहसा विश्वास नहीं हुआ, ''इतनी लाशें...''

''हां श्रीमान, सैकड़ों...''

''कहां? कहां हैं लाशें...''

''बार्डर पर श्रीमान, मेरठ-गाजियाबाद बार्डर पर नहर के अंदर...''

''नहर के अंदर? गाजियाबाद में?''

''हां सर.''

कप्तान झपटकर दफ्तर वाले कमरे में आया. उसके वायरलेस से शांय शांय की कर्कश ध्वनि के साथ लगातार किसी को कोई सूचना भेजी जा रही थी. बहुत ऊंची आवाज में. कप्तान ने नियंत्रण कक्ष को लाशों की सूचनी दी और लड़खड़ाते दारोगा को साथ लेकर नहर के किनारे चल दिया.

घबराहट में दारोगा उस जगह की शिनाख्त करना भूल गया था, अंदाज से उसने जीप जहां रुकवायी वहां नहर के किनारे कुछ नहीं था. बहुत दूर तक फैले अंधेरे में झींगुरों की तीखी आवाज के अलावा और सब कुछ शांत था. नहर में पानी बहुत थोड़ा और चुपचाप बह रहा था.

क्या उसने ख्वाब देखा था? वह भ्रम था? दारोगा बौखाला गया. उसकी आवाज एक बार फिर गायब हो गयी. इस दूसरे धक्के से वह बेहोश ही हो जाता कि वह कराह कहीं दूर से आती हुई फिर सुनाई दी. इस बार जैसे कोई उल्टी कर रहा हो.

उल्टी हमदम साहब ही कर रहे थे. बहुत देर से घुटी हुई मितली उनके सूखे कंठ को चरचराहट के साथ फाड़कर अनायास बाहर आ गयी थी. भयानक दुर्गंध और अपनी दुर्दशा की बेबसी के बाद इस घिनौनी प्रतिक्रिया के लिए वे कतई तैयार नहीं थे पर इसे भी उन्होंने स्वीकार कर लिया. मरोड़ के साथ पसलियों से लेकर कंधों तक बढ़ गये दर्द से लड़ते हुए उन्होंने दुबारा स्वेच्छा से वमन करना चाहा. पर इस बार बहुत डरावनी गों-गों और बेबसी भरी रिरियाहट के अलावा गले से कुछ भी बाहर न आया.

इसके बाद जिसका उन्हें डर था वही हुआ. बहुत से भारी कदम दौड़ते हुए करीब आये. उनके साथ ही तुरंत एक गाड़ी भी आ गयी. कई टार्चों और जीप की बत्तियों से नहर के उस अंधेरे किनारे पर तेज और चकाचौंध दिलानेवाली रोशनी का जैसे एक विस्फोट-सा हुआ. पुलिस की वर्दियों की एक झलक-सी उन्हें दिखाई दी. गंदगी को भूलकर उन्होंने दांत भींचे और माथा दुबारा पतावर में गड़ा लिया. लेकिन वे ज्यादा देर उस हालत में अपने को रख नहीं पाये. इस बार वे अपनी मृत्यु के समूचे आयोजन को ठीक से देख लेना चाहते थे.

''जिंदा है!'' एक आवाज आयी. आवाज सुनकर सर्द पानी में और ज्यादा सर्द पड़े टखनों में एक थरथराहट हुई. मगर आंखें उन्होंने बंद नहीं कीं. टार्च की रोशनी में बहुत फटी हुई उन आंखों को देखकर कप्तान उस तरफ झुका, ''डरो नहीं, बाहर आओ...''

उसकी इस आवाज पर भी वे हिले नहीं. पलक तक नहीं झपकायी. उन्हें और नजदीक से देखने के लिए कप्तान ने पैर नहर के अंदर के ढाल पर उतारा. पैर टिका नहीं. जैसे वहां चिकनी कीचड़ हो, इस तरह फिसल गया. कठिनाई से संभलकर जब वह खड़ा हुआ तो उसने पाया उसकी वर्दी, जूतों और हथेलियों पर जो लिपट गया है वह आधा, जमा, गाढ़ा, सुर्ख और कहीं-कहीं मिट्टी में मिलकर काला पड़ा खून है. और अब जीप की रोशनी में उसने देखा, नहर के जल से लेकर पानी तक बहुत-सी लाशें एक दूसरे में उलझी पड़ी हैं.

''ये हुआ क्या है?''

''श्रीमान गोलियां. इन्हें गोलियां लगीं हैं...'' एक सिपाही ने कहा.

वहां कुल अठहत्तर लाशें थीं. या छियत्तर. दो अभी जिंदा थे. उठाये जाते वक्त भी वे इन सिपाहियों को वैसे ही अविश्वास से आंखें फाड़कर घूर रहे थे. कप्तान को खून की दुर्गंध लाशों और घायलों को अस्पताल पहुंचाने के बाद महसूस हुई. दो बड़े दारोगा वहीं छोड़कर कप्तान घर लौट आया. वह जल्दी से जल्दी नहा लेना चाहता था. जिंदगी में पहली बार वह पूरी वर्दी में नहाया. फव्वारे की बारीक तेज धारों में वर्दी के वे लाल काले दाग देर तक कट-कटकर गिरते हुए वह देखता रहा. जिस वक्त नहाकर वह बाहर आया उसने महसूस किया उसे एक असाधारण सर्दी लग रही है.

जिंदा बच गये दोनों आदमियों के जख्म ज्यादा घातक नहीं थे. हमदम साहब की ऊपर से दूसरी पसली और कंधे के बीच गोली लगकर तिरछा निकल गयी थी. वह दूसरी पसली बुरी तरह टूट गयी थी और बगल में बांह के नीचे मांस पेशियां फटकर लटक गयी थीं. खून जरूर ज्यादा बह गया था पर फेफड़े सही-सलामत थे. दूसरे आदमी के कूल्हे और जांघ में दो गोलियां लगी थीं. दोनों को आपरेशन के बाद दूसरे दिन दोपहर तक होश आ गया.

कप्तान ने खुद बयान लिया. पहले दूसरे आदमी का. तकलीफ काफी कम हो गयी थी पर बोलने में सांस थोड़ी उखड़ती थी, पर वह जोश के साथ बयान देता रहा, ''साहब, अल्लाह मालिक है. उसकी कसम खाकर कहता हूं अगर मैंने कभी कोई असलाहा जमा किया हो या—या दंगे-फसाद में हिस्सा लिया हो...''

''ठीक है, वो बाद की बात है. पहले यह बताओ नाम क्या है और कहां के रहनेवाले हो?'' कप्तान ने पूछा.

''साहब, वही तो बताया. साहब, मैं तो गरीब आदमी, हमेशा अपने काम से काम रखता हूं. उन्होंने बेकुसूर हमको गोली मारी...''

''भई नाम बताओ. नाम.''

''अबदुल रऊफ.''

''कहां रहते हो?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मलियाना में. सब्जी बाजार में साहब, मैं वहां. पंचर जोड़ता हूं."

"हुआ क्या था?"

"साहब खुदा गवाह..."

"है यार, तुम बात तो बताओ," कप्तान थोड़ा अधीर होने लगा, "तुम नहर तक कैसे पहुंचे. किसने गोली मारी?"

"पी.ए.सी. ने साहब. पी.ए.सी. ने गोलियां मारकर बिछा दिया. मेरा कोई कुसूर नहीं था साहब, मगर उन लोगों ने हमको घेर लिया. सबको घेर लिया."

"कहां घेर लिया?"

हमारे घरों में. हजारों सिपाही थे पी.ए.सी.के. हमारा सारा सामान सड़क पर फेंक दिया. औरतों, बच्चों को बंदूक के कुंदों से मारने लगे, तब हम बकसों के ढेर के पीछे से निकल आये. सब लोगों को बाहर इकट्ठा कर लिया. सारे मुहल्ले के जितने मर्द थे– बूढ़े, जवान, किसी को नहीं छोड़ा, सबको ले के शहर से बाहर आ गये. तब उनका अफसर बोला, 'यहां नहीं, गाजियाबाद ले चलो.' बस साहब, नहर तक लाये, फिर सबको लाइन से खड़ा कर दिया और तड़ातड़ गोलियां चलाने लगे, साहब, एक-एक को भून दिया. एक-एक को. एक-एक को मार दिया साहब..." वह आदमी रोने लगा. कप्तान ने धीरे से उसका हाथ दबाया.

पूरा वाकया खौफनाक भी था और उलझन में डालनेवाला भी. सरेशाम लोगों को मलियाना में घरों से निकाला गया और गाजियाबाद की सीमा में लाकर पी.ए.सी. ने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया. अब्दुल रऊफ तादाद तीन-चार-सौ बताता है पर अगर लाशें नहर में बही नहीं थीं तो दो घायलों सहित उनकी तादाद अठहत्तर थी.

दूसरा ब्यान हमदम साहब का था. पर देर तक वे कुछ नहीं बोले. कई बार पूछने पर अपना नाम और पता बता दिया और फिर चुप हो गये.

"क्या बहुत तकलीफ है?" हारकर कप्तान ने पूछा.

"नहीं हुजूर. अब तो काफी ठीक हूं. बहुत बेहतर हूं." कहकर वे फिर चुप हो गये. अब वे कप्तान को नहीं छत को घूर रहे थे. जब शायद उनकी आंखें थक गयीं तो उन्होंने पलकें मूंद लीं और बहुत धीरे से एक शेर पढ़ा: दुनिया में ऐ जबां, रविशे सुलहे कुल न छेड़. जिससे किसी को रंज हो ऐसा बयां न छेड़.

यह शेर पढ़ने के बाद वे काफी खामोश हो गये. बहुत-बहुत कोशिश करने के बाद भी वे नहीं बोले तो कप्तान निराश होकर उठ पड़ा. जब वह बाहर जाने लगा तो हमदम साहब ने दायां हाथ थोड़ा-सा उठाया और धीरे से आवाज दी, "सुनिए..."

कप्तान फौरन वापस आया, "कहिए?"

"आप तशरीफ रखें."

"ठीक है. बैठ जाऊंगा. मैं चाहता हूं आप बयान दे दें. क्या बहुत तकलीफ है?" कप्तान ने पूछा.

"हां. दिल में." हमदम साहब धीरे से बोले, "जनाब, मैं अर्ज करूं. इस मुल्क को किसी बहुत बड़ी साजिश का शिकार बनाया जा रहा है. मैं जानता हूं, आप एक ईमानदार और सच्चे अफसर हैं. आप खुद जानते होंगे. इसी की तकलीफ है मेरे दिल में."

"वो ठीक है, मगर इस गोलीकांड के बारे में आप तफसील में हमें बताएं..."

गोलीकांड. जी हां. देखिए इस वक्त हमारे मुल्क के वजीरे आजम जनाब राजीव गांधी साहब पर चारों तरफ से हमले हो रहे हैं. अपोजीशन जनाब बदेशी ताकतों की कठपुतली बनकर हमारे वजीरे आजम को हटाना चाहता है. उनकी कोशिशें हैं जनाब कि मुल्क टूट जाये. इसीलिए उन्होंने राजीव गांधी पर गंदे-गंदे इल्जामात लगाना शुरू कर दिया है. जनाब आप तो जानते हैं. इतने बड़े खानदान के वारिस और सारे मुल्क के मालिक हैं वों, भला तोपों, पनडुब्बियों के कमीशन से उनका क्या बनना है जनाब..."

"सही है जनाब, लेकिन मैं जानना चाहता हूं कि आप लोगों को गोलियां किसने मारीं?" कप्तान ने अपने धीरज को बटोरकर फिर पूछा.

"अल्लाह की मर्जी हुजूर. आप जैसा नेकदिल इंसान बख़ूबी जानता है." हमदम साहब ने थोड़ी सांस लेकर कमजोर आवाज में अपनी बात फिर शुरू की, "जनाब, लोग कहते हैं कि सूबए उत्तर पर देश के वजीरे आला जनाब वीर

मेरी तरह की फिल्में

ख्वाजा अहमद अब्बास

एक फिल्मकार के रूप में राज की जो बात मुझे पसंद आयी है, वह यह है कि वह ऐसे शख्स हैं जो दूसरों की फिल्मों की प्रशंसा करते हैं. विमल राय की 'दो बीघा जमीन' देखने के बाद राज ने रेडियो सीलोन को दिये गये एक इंटरव्यू में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर विमल राय को बधाई दी थी. इसमें उन्होंने कहा था कि 'दो बीघा जमीन' के बाद भारतीय सिनेमा में एक क्रांति आ गयी है. लेकिन बाद में जब हम सब राजकपूर, विमल राय और हृषिकेश मुखर्जी–मास्को फिल्म फेस्टिवल में हिस्सा लेने साथ-साथ गये, तो रूसियों ने हमसे कहा कि हम भारतीय प्रतिनिधि मंडल का एक नेता चुन लें. मैंने विमल राय का नाम सुझाया. राजकपूर ने तुरंत इसकी मुखालफत की. विमल राय ने, जो इस मुद्दे को लेकर बेवजह झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहते थे. मेरा नाम सुझाया और राजकपूर ने प्रतिनिधि मंडल ने नेता के रूप में मेरा नाम स्वीकार कर लिया. राज कपूर यह नहीं चाहते थे कि मैं फिल्मकार बनूं. दरअसल, यह उनके अहम् का सवाल था. एक बार कुछ रूसियों से मेरा तअर्रुफ अपने लेखक के रूप में कराया. तो मैंने जवाब दिया, "नहीं, मैं इनका लेखक नहीं हूं, मैंने तो इनकी दो ही फिल्में लिखी हैं." राज मुझे अपनी रोसेलिनी कहते लेकिन जब मैं यह कहता कि मैं निर्देशक बनना चाहता हूं और अपने ढंग की फिल्में बनाना चाहता हूं तो उनका जवाब होता था कि वह आखिर मेरी तरह की ही फिल्में तो बना रहे हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुर सिंह साहब ने, खुदा उन्हें लंबी उम्र दे, मेरठ में दंगे करवा दिये. वो भी इसलिए कि बोफोर्स की तरफ से लोगों का ध्यान हट जाये और अम्नो–कानून के नाम पर विशनाथ परताप सिंह के बाकी जलसे रोके जा सकें. मैं पूछता हूं हुजूर कि इसमें बुरा क्या है? आखिर ये सियासत है जनाब, कोई हंसी खेल नहीं है. अगर इस मुल्क को टुकड़े होने से बचाने के लिए और अपने हरदिल अजीज राजीव गांधी के हाथ मजबूत करने के लिए मेरठ से चंद कुर्बानियां मांगी गयीं तो बुरा क्या था? रिआया का फर्ज है वतन के लिए कुर्बानी देना. जनाब शायर ने कहा है. सबसे पहले मर्द बन..."

कप्तान ने बेचैनी से बालों में उंगलियां घुसायीं और सिर को इस तरह झटका दिया जैसे बालों की गर्द झाड़ रहा हो. फिर हल्की खीज के साथ बोला, "देखिए भाई, मैं जो पूछ रहा हूं. बताइए..."

"जी?' बेहतर है. बेहतर है हुजूर." हमदम साहब खासे ही निराश हो गये.

"क्या यह सच है कि आप लोगों को यहां लाकर पी.ए.सी. वालों के गोली मारी?"

"जनाब, फिरकापरस्त और मुल्क को तोड़नेवाली ताकतें कहां नहीं हैं हुजूर. मैं अर्ज करना चाहता हूं..."

कप्तान ने बहुत लंबी सांस खींचकर कहा, "हमदम साहब, मेरा ख्याल है अब आप आराम करिये..."

"जी? जी हां, जी हां. शुक्रिया." हमदम साहब के चेहरे पर मायूसी और गहरी हो गयी.

अस्पताल में उन्हें ज्यादा दिन नहीं लगे. कंधे से लेकर पसलियों के नीचे तक पलस्तर में लिपटे हुए वे बाहर आये और मेरठ जानेवाली बस पर बैठ गये. मलियाना तक पहुंचते-पहुंचते उन्होंने यह फैसला कर लिया था कि मलियाना में बीवी-बच्चों से मिलने के बाद वे जल्दी से जल्दी जनाब गवर्नर साहब से मुलाकात करेंगे. पी.ए.सी. के द्वारा छियत्तर आदमियों की गाजियाबाद सीमा में हत्या को लेकर बहुत से अखबारों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था. इस मामले में उन्हें पहल करनी होगी, यह उनकी जिम्मेदारी है.

मलियाना वैसा ही नहीं था जैसा उन्होंने छोड़ा था, बल्कि कहना चाहिए जैसा मलियाना उन्होंने जिया था. मलियाना की मुख्य सड़क पर सीमा के पासवाली पुलिया के ऊपर दोनों तरफ पी.ए.सी. के कुछ सिपाही बैठे थे. खड़खड़ेवाले ने उन्हें मलियाना से थोड़ा पहले दाहिनी ओर मुड़नेवाली सड़क के मोड़ पर उतार दिया था. वहां से पैदल रास्ता ज्यादा नहीं था. उन्हें कतई उम्मीद नहीं थी कि इस तरह कस्बा शुरू होते ही ये सिपाही उन्हें मिल जायेंगे. अनचाहे ही वे सहम गये. लेकिन अब पीछे लौटना भी मुमकिन नहीं था. उन्होंने अपने कलेजे को मजबूत किया और सधे कदम पुलिया की तरफ बढ़ चले.

वे अजब बदइख्लाक किस्म के सिपाही थे. बजाय इसके कि वे अपने काम से काम रखते, उन्होंने हमदम साहब को घूरना शुरू कर दिया. उन निगाहों से बिंधे हुए चलना ऐसा लगा जैसे उन्हें किसी ने तीरों से बेधकर उठा लिया हो. सिपाही शायद कौतुक के लिए ज्यादा उत्सुक थे. जब वे ठीक उनके बीचों-बीच पहुंच गये तब एक सिपाही ने बेहद अभद्र लहजे में आवाज दी, "एई मियां जी!"

"मुल्लाजी कहो मुल्लाजी. कहां चले?"

"आपने कुछ फर्माया?" हमदम साहब ने रुककर बेहद संजीदगी से पूछा.

सिपाही हंसने लगे, "अब, शायरी बोलता है."

हंस चुकने के बाद एक सिपाही ने गंभीरता से पूछा, "कहां जा रहे हो?"

"जी? घर जा रहा हूं. जनाब."

"कहां से आये हो?"

"अस्पताल से. चोट लग गयी थी."

"हूं. तभी. तुम्हें मालूम नहीं है कि यहां कर्फ्यू लगा है?"

"जी कर्फ्यू? मगर मैं तो अपने घर ही जा रहा हूं, बंदापरवर."

"कहा न कर्फ्यू लगा है? जाओगे कैसे? पास है कर्फ्यू का?" सिपाही ने पूछा.

"जी पास तो नहीं है. मगर मैं तो..."

"मियां जी, मेरी सलाह मानो, यहीं से वापस हो लो. मुसीबत में पड़ जाओगे. हम तो भलमंसाहत से पेश आ रहे हैं, आगे डंडे से ही बात होगी."

"जी." हमदम साहब परेशान हो आये, "अगर मैं यहां... मेरा मतलब है कर्फ्यू पास तो बनता होगा? देखिए मैं..."

हमदम साहब ने चाहा कि वे बता दें कि वे एक मशहूर कौमी शायर हैं, यहां तक कि उन्होंने खुद गवर्नर साहब बहादुर के रूबरू बैठकर अपनी नज्में सुनायी हैं, पर वे रुक गये.

मार्क ट्वेन की हाजिर जवाबी

अमरीकी लेखक मार्कट्वेन प्रसिद्धी प्राप्त लेखक थे. वे लिखते समय पूर्ण विराम, अर्ध विराम, कौमा का जरा भी ध्यान नहीं रखते थे. एक बार किसी प्रकाशक ने परेशान होकर उनकी पुस्तक की पांडुलिपि वापस भेजकर यह पत्र लिखा कि आपके लेख में पूर्णविराम, अर्धविराम आदि की भूलें ठीक करने में बहुत कष्ट होता है अंतः आगे से लिखते समय इस ओर ध्यान देकर भूलों को ठीक करें.

मार्कट्वेन ने पत्र मिलते ही एक कोरे कागज पर पूर्ण-विराम, अर्ध विराम, कौमा आदि के बहुत सारे चिन्ह बना दिये और प्रकाशक के नाम पत्र में लिखा, "आपके आदेशानुसार ढेर सारे पूर्ण विराम, अर्धविराम भेज रहा हूं. इनका पूरी उदारता से उपयोग करें, बचे हुए वापस भेजने का कष्ट करें."

इंदु महेंद्र जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही शायद उतना बुरा नहीं था. समझाता हुआ बोला, "मुल्ला जी, पहले बनता था, अब यहां नहीं बनता. अब मेरठ से ही बनवाना पड़ेगा. डी.एम. के यहां चले जाओ. बन जायेगा. तुम तो अस्पताल में थे इसलिए तुम्हारा केस मजबूत है..."

हमदम साहब ने सिपाहियों को एक बार फिर देखा. उन्हें लगा, जो कहा गया है उसे मान लेने के अलावा रास्ता नहीं है.

हालात मेरठ में बेहतर नहीं थे. बल्कि मेरठ-गाजियाबाद सड़क के बस अड्डे से बहुत पहले ही उन्हें रोक दिया गया, "कौन है? कहां जा रहा है? पास है?"

उन्हें शहर सीमा से बाहर ही इस तरह घेर लिया गया जैसे वे कोई भागे हुए मुजरिम हों.

बेहद हताशा और अपमान के साथ अपनी पसलियों पर चढ़ा पलस्तर कई बार प्रदर्शित करने के बाद सिर्फ इतना हुआ कि उन सिपाहियों ने उन्हें वापस जाने की इजाजत दे दी. वापस? लेकिन कहां?

वतन और कौमी फरायज के बाद पहली बार उन्हें अपने घर की याद आयी. इस साल चूने में पीली मिट्टी मिलाकर पुताई कराने के बाद दरवाजों पर तेलवाला नीला रंग उन्होंने खुद लगाया था. दरवाजे अच्छे चमकने लगे थे. उनकी चिड़चिड़ी बीवी उनसे चाहे जैसे पेश आती हो, पड़ोस की हर

मैथिल कहानी

ननद-भौजाई

राजकमल चौधरी

पदुमा अत्यंत खिन्न और चिंतित अवस्था में आंगन में आयी. आंखों में अपराध और पश्चाताप की सलज्ज रेखा थी. अपनी भौजाई से बगैर कुछ बोले पूरबवाले घर में घुस गयी. रसोई घर से भौजाई ने पूछा, "लाल दाइ हैं क्या?"

बिना कुछ उत्तर दिए, पदुमा आईना–कंघी लिए घर से बाहर आयी और आंगन में रखी खाट पर उदास-सी बैठ गयी.

पसीने से भीगे मुंह को आंचल से पोंछते हुए रामगंजवाली रसोईघर से बाहर निकली और ननद की उदास आंखें, शिथिल चेष्टा और झुके सिर को देखकर सन्न रह गयीं, "रुपये-आठ आने भी नहीं मिले क्या?"

पास आकर, बड़े स्नेह से पदुमा के सिर पर हाथ फेरते हुए रामगंजवाली बोली, "क्या बात है? मन क्यों ऐसे उतरा हुआ है? बंगट बाबू से भेंट नहीं हुई क्या?"

"नहीं भौजी, वह बात नहीं है! भेंट तो हुई थी, दो रुपये भी दिये हैं, लेकिन एक विचित्र बात हो गयी. बस, अनर्थ हो गया भौजी! मैं आपसे क्या कहूं?" सूखे होंठों पर जीभ फेरते हुए पदुमा ने कहा.

आंचल में बांधे एक रुपये के दो नोट निकालकर पदुमा ने भौजाई के हाथों में रख दिया. भौजाई की चिंता समाप्त हो गयी. अब कुछ भी हो! हाथ में दो रुपये हैं तो फिर क्या चिंता, किस बात की चिंता?

पदुमा और पदुमा की भौजाई दोनों विधवा हैं. पदुमा की उम्र तेईस-चौबीस साल और रामगंजवाली की बत्तीस-तैंतीस साल है. दोनों निस्संतान और स्वाधीन प्रकृति की हैं.

पदुमा का गांव, वनग्राम बहुत बड़ा गांव है. गांव में ही हाई स्कूल, थाना, पोस्ट आफिस, अस्पताल और हाट बाजार है. इसलिए, इन दोनों विधवा ब्राह्मणी का जीवन निर्वाह कोई कठिन चीज नहीं है. दो हजार घरों की बस्ती में दो सौ बंगट तो अवश्य ही हैं.

फिर भी आज रात में पदुमा बड़ी परेशान थी. भौजाई ने फिर पूछा, "लाल दाइ! आप तो बच्चों की तरह कर रही हैं. ऐसे थोड़े ही काम चलेगा. मुझसे कहिए, क्या हुआ है. कहीं रास्ते में थानेवाले ने तो नहीं पकड़ लिया था? आजकल पूरी रात सिपाही बाग-बगीचे में घूमते रहते हैं."

"किस सिपाही की हिम्मत है कि मुझे पकड़े. मुझे क्या दारोगा साहेब नहीं पहचानते हैं? मैं आपको कैसे बताऊं कि मुझे क्या हुआ है : बस यही समझिए कि मैं जिंदा नहीं हूं. मर चुकी हूं."

भौजाई हंसकर बोलीं, "यह तो समझी कि आप मर गयीं. लेकिन यह तो बताइए कि किसने मारा, कैसे मरीं."

तब पदुमा ने रात की कहानी बतायी, मंदिर के पास ही बंगट मिल गया. मंदिर के पिछवाड़े ले जाकर मैंने उससे कहा, "हे बंगट, पांच रुपये चाहिए."

उसने कहा, "तुम भूतहा बगीचे की तरफ चलो, मैं रुपये लेकर आता हूं."

मंदिर में और कुछ करने का साहस उसे नहीं हुआ. मैं भूतहा बगीचे में पाकड़ के पेड़ के नीचे खड़ी होकर उसका इंतजार करती रही. बड़ी देर के बाद बंगट आया. मेरे ब्लाउज में दो रुपये खोंसकर हाथ पकड़ते हुए बोला, "अभी दो ही रुपये हैं, बाकी तीन रुपये सुबह आकर दे जाऊंगा." और फिर थोड़ी देर तक चूमता-चाटता रहा. मैं परेशान थी कि देरी होने पर भौजाई बिगड़ेगी, लेकिन वह छोड़ता ही नहीं था. कभी सीने से चिपका ले और कभी और कुछ करे. मेरा भी मन इसके बाद काबू में नहीं रहा. लगा जैसे पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरत पर उसने उनकी शायरी और गर्वनर साहब से उनके ताल्लुकात का रौब गालिब कर रखा था.

पिछले बरस छब्बीस जनवरी के मौके पर उनकी बहुत कोशिशों के बाद गवर्नर की कोठी पर होनेवाले मुशायरे का निमंत्रण सूचना विभाग ने दे दिया था. मुशायरे वाले दिन शाम कोई चार बजे गवर्नर के यहां होनेवाली चायपार्टी में शिरकत का मौका भी उन्हें मिला था. इस चाय पार्टी में शामिल होने का गौरव वे कभी नहीं भूल सकते. कितने बड़े-बड़े लोग थे वहां, पुलिस के अफसर तमगे चमकाते हुए, बड़े-बड़े हाकिम, अदब से खड़े नौकर, बेहतरीन मेजपोशों पर सजी हुई उम्दा मिठाइयां. पैरों के नीचे मोटे कालीन जैसी घास....

हमदम साहब के बच्चों ने बहुत देर जिरह करके उनसे हर मिठाई की शक्ल और जायके का परिचय लिया था. इसके बाद बच्चे मिट्टी और पत्थर के टुकड़ों की मिठाई बना लेते और ईंटों पर कोई कागज बिछाकर उन्हें मेजें मान लेते. इस तरह गवर्नर के चाय-पान का खेल वे लोग बहुत दिन तक खेलते रहे थे.

गोश्त बेचनेवाला मुन्ना उन्हें इस दावत के बाद से बहुत महत्वपूर्ण और सम्मानित व्यक्ति मानने लग गया था. मक्खियों से भरे चबूतरे पर बैठाकर वह उन्हें चाय पीने को मजबूर कर देता था. जिस बनिये से वे राशन लाते थे, उसे भी बहाने-बहाने उन्होंने सब कुछ बता दिया था. वह राशन की दूकान का लाइसेंस चाहता था. उसने दो बार उन्हें रोककर ठंडे शरबत की बोतल पिलायी थी.

इस वक्त इससे ज्यादा कुछ उन्हें याद नहीं आया. लगा इस बीच घर से बाहर एक जमाना गुजर चुका है और याददाश्त में काफी धुंधलापन आ गया है. न चाहते हुए भी उन्होंने एक बड़ा फैसला कर लिया. वे गवर्नर साहब से मिलेंगे. हालांकि नंगे बदन पर चढ़े पलस्तर के ऊपर लटकाया कुर्ता बहुत बेढंगा लग रहा था, पर ऐसे ही सही. कप्तान ने यह एक मेहरबानी जरूर कर दी थी कि चलते वक्त उन्हें अपना कुर्ता और पायजामा भी दे दिया था. पता नहीं सरकारी खजाने से या अपनी तरफ से उसने जो सौ रुपये उन्हें दिये थे उसमें से अभी बहुत थोड़े ही खर्च हुए थे. अपनी इस वक्त की समस्या के लिए गवर्नर साहब से मुलाकात कुछ ऐसी थी जैसे चींटी मारने के लिए तोप का इस्तेमाल किया जाये, लेकिन इसके अलावा उन्हें और रास्ता दिखाई नहीं दिया.

इस बार गवर्नर साहब की कोठी उन्हें उतनी सुहानी नहीं लगी. बड़े फाटक के संतरी ने उन पर ध्यान भी नहीं दिया. पर आगे जहां एक छोटा सरोवर बना था उससे कुछ पहले ही दो आदमियों ने उन्हें टोका.

गनीमत ही है कि उन्होंने थोड़ी शिष्टता बरती और कोठी के स्वागत कक्ष की तरफ इशारा कर दिया. स्वागत कक्ष में चार-पांच लोग बहुत जोश के साथ किसी बात पर बहस कर रहे थे. हमदम साहब बहुत अदब से आदाब करके एक किनारे खड़े हो गये.

दरअसल मामला किसी की छुट्टी का था जिसकी फाइल गुम थी. जब वे लोग बहस से करीब-करीब थक गये तब उनमें से एक ने हमदम साहब की तरफ ध्यान दिया,

''कहिए?''

''आदाब हुजूर, मुझे हमदम मलियानवी कहते हैं, पिछले बरस छब्बीस जनवरी के मुशायरे में हुजूर ने इस नाचीज को याद फर्माया था...''

''जी. अच्छा. बैठिए.'' उसने कहा.

हमदम साहब थोड़ा अटपटे ढंग से कुर्सी में धंसे और पसलियों में उभर आयी पीड़ा की वजह से थोड़ी-सी बिगड़ गयी मुस्कराहट के साथ बोले, ''जनाब, अस्पताल से आ रहा हूं. एक अजब-सा हादसा हो गया था.''

बगीचा झूला बन गया है और बंगट के साथ आकाश में उड़ रही हूं.

अचानक पदुमा को बाहों में कसते हुए रामगंजवाली ने कहा, ''लाल दाइ! बात को इतना मत बिखराइए. यह बताइए कि तब क्या हुआ?''

पदुमा बोली, ''तब बंगट ने मुझे निर्वस्त्र कर दिया. यूं समझिए, मैं होश में ही नहीं थी. लेकिन तभी, जोर-जोर से गीत गाते हुए एक सिपाही बगीचे में घुसा. सिपाही को देखते ही मुझे उसी अवस्था में छोड़कर बंगट भागा. मुझसे नहीं रहा गया. कैसा डरपोक था वह. मैं भी बंगट के पीछे-पीछे दौड़ी. लेकिन वह तो अंधेरे बगीचे में खो गया था. लाख खोजने पर नहीं मिला. एक-दो बार नाम लेकर भी चिल्लायी, कोई पता-ठिकाना नहीं. वह सिपाही तो अपने रास्ते जा चुका था, और मैं बगीचे में भटक रही थी. बड़ी देर के बाद कहीं से बंगट की आवाज आयी, ''पदुमा! पदुमा रे!, दौड़ो!'' जिधर से बंगट की आवाज आयी थी, उधर ही दौड़ी. देखती हूं तो एक पेड़ के नीचे बंगट नंगे पड़ा हुआ है और छटपटा रहा है. चिल्ला रहा है. लेकिन भौजी, मैं तो जैसे भांग के नशे में थी. चांदनी रात में बंगट की पूरी देह, सब अंग एक साथ देखने के बा नहीं रहा गया. फिर जरा भी होश नहीं रहा कि कहां हूं, क्या कर रही हूं, क्यों कर रही हूं? इससे ज्यादा क्या कहूं भौजी, इसके बाद क्या हुआ सो अब भी याद नहीं आता. लेकिन जब होश आया तो देखती हूं कि बंगट नहीं है, केवल उसका शरीर भर शेष है.''

''बाप रे!'' रामगंजवाली चिल्लायी.

पदुमा भी चिल्लायी, ''भौजी, बंगट को सांप ने काट लिया था, इसलिए वह मेरा नाम लेकर चिल्लाया था. भौजी, मैं मुर्दा के साथ सोयी, अब कैसे बचूंगी?''

पदुमा रोने लगी. बड़ी देर तक रोती रही.

तब भौजाई ने कहा, ''लाल दाई, जाइए, तालाब से नहा आइए और देह पर गंगाजल छींट लीजिए. और कर भी क्या सकती हैं. जब जिंदा पुरुष के साथ सोने में लाज ही नहीं है तो मुर्दा पुरुष के साथ कैसी लाज?'' पदुमा उठकर नहाने चली गयी. □

□ अनुवाद : अजय ब्रहमात्म्ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पताल के नाम पर वह आदमी थोड़ा संकुचित हो गया. "क्या हो गया था?"

"क्या बताऊं, हुजूर, बदकिस्मती मेरी कहिए? जनाब इसी सिलसिले में हजरत आरिफ साहब के नयाज हासिल करना चाहता था..."

"ओह..." वह आदमी समझा. हमदम साहब इलाज के लिए मदद मांगने आये हैं. उसने सहानुभूति दिखलाते हुए कहा, "गवर्नर साहब तो इस वक्त कहीं जा रहे हैं. आप स्वास्थ्य मंत्री जी से मिल लीजिए."

"जी?"

"चाहें तो मैं एक स्लिप दे देता हूं."

"जी शुक्रिया. मगर जिस काम से मैं जनाब गवर्नर साहब हुजूर से मिलना चाहता हूं... मेरा मतलब है मुझे दरअसल कुछ अर्ज करना है..."

"किस सिलसिले में? आप मुझे बतायें..." उस आदमी ने कहा.

हमदम साहब को थोड़ा संकोच हुआ. फिर वे धीरे-धीरे बताने लगे, "हुजूर, बात ये है कि मैं मलियाना का रहने वाला हूं. जी हां, वही मलियाना जहां आजकल कर्फ्यू लगा हुआ है. बल्कि ज़नाब मैं क्या कहूं मैं उन दो लोगों में से एक हूं जिन्हें बाकी सौ-डेढ़-सौ लोगों के साथ गाजियाबाद ले जाकर पी.ए.सी. ने गोली मार दी थी."

"क्या?" सहसा वह आदमी बौखला गया, "मतलब आप, यानी आपको, मेरा मतलब है..."

"हुजूर मैं उन्हीं लोगों में से एक हूं. अल्लाह का शुक्र है कि मैं बच गया."

मगर वह आदमी अब आगे की बात सुन नहीं रहा था. बेचैनी से करवट बदलकर उसने कहा, "सुनिए, आप जरा-सा इंतजार कर लें. मैं बस अभी हाजिर हुआ."

"बेहतर है हुजूर, बेहतर है."

"आपको चाय भिजवाता हूं."

"जी नहीं. शुक्रिया. एक गिलास पानी मिल जाता..."

"पानी?" उस आदमी ने किसी को बुलाकर उन्हें पानी और चाय देने को कहा और कोठी के अंदर चला गया.

दुबारा वह काफी देर में ही वापस आया. तब तक पानी तो आ गया था; चाय नहीं आयी थी. उस आदमी ने आते ही कहा, "महामहिम जाने वाले हैं लेकिन वे दो मिनट आपसे मिलना चाहते हैं."

"या खुदा..." हमदम साहब ने छत की तरफ देखकर कहा, "तेरी मेहरबानी."

गवर्नर साहब अपने दफ्तर में थे. उन्होंने हमदम साहब को बहुत इज्जत से अपने करीब की सेटी पर बैठा लिया. हमदम साहब का गला भर आया, "जिस सरकार के सबसे बड़े हाकिम ऐसे रहमदिल और मेहरबान हों उस सरकार के खिलाफ लोग ऐसी-ऐसी बातें करें?"

वे देर तक बिना कुछ बोले डबडबायी आंखों से गवर्नर साहब को घूरते रहे. गवर्नर उनकी मानसिक स्थिति समझ गये. थोड़े क्षणों के बाद बहुत नरमी से उन्होंने पूछा, "कैसे हैं?"

"जी आपकी दुआ है हुजूर, जिंदा हूं. वैसे हुजूर मैं इसे भी खुदा की मर्जी मानता हूं जनाब. उसने मुझे जिंदगी के चंद दिन और बख्शे हैं ताकि मैं फिरकापरस्तों और मुल्क के दुश्मनों के खिलाफ अपनी आवाज उठा सकूं. जनाब अब देखिए, यह जो गाजियाबादवाला हादसा हुआ है, इसकी जिम्मेदारी भी सरकार पर डाली जा रही है. जबकि सब जानते हैं कि इस वक्त हमारे वतन के लीडरान के खिलाफ खुलेआम साजिश हो रही है जनाब..."

गवर्नर ने उनके सामने धीरे से एक अखबार रख दिया. अखबार में गाजियाबाद के हादसे की सफाई में मुख्यमंत्री का बयान छपा था. उन का कहना था कि छयत्तर आदमियों का हत्या सरासर झूठ है—

पढ़ते-पढ़ते हमदम साहब जोश में आ गये, "ये ठीक किया जनाब. इस साजिश का ऐसे ही जवाब देना चाहिए था..."

हमदम बाकी खबर भी पढ़ने लगे. पढ़ते-पढ़ते वे बेचैन होने लगे. खबर पढ़ना खत्म करके वे फटी आंखों गवर्नर को घूरने लगे. देर बाद ही उनकी आवाज फटी, "जनाब, मैं... खुदा कसम जनाब... ये सब झूठ है, सफेद झूठ. मैं... मेरा मतलब दो बरस पहले पाकिस्तान से शोहरा आये थे उनसे जरूर मिला था, मगर खुदा गवाह है मेरा किसी पाकिस्तानी जासूस से ताल्लुक—मगर हुजूर, सुनिये, क्या आप भी इस बयान पर यकीन करते हैं? मैं तो जनाब रऊफ को भी खूब जानता हूं, वो साइकिल का पंचर ठीक नहीं बना पाता गैरकानूनी असलहे क्या बनायेगा... जनाब... मैं... ये तो हद है हुजूर, ये तो ठीक है कि मगर हुजूर, आप तो मुझे जानते हैं जनाब, कौमी यकजहती पर पिछले बरस मेरी नज्म पर आपने खुद दाद दी थी हुजूर, यकीन मानिये, ये सब झूठ है जनाब, सफेद झूठ..."

गवर्नर ने हाथ बढ़ाकर धीरे से उनका कंधा दबाया. और कोई वक्त होता तो हमदम साहब इस अनुग्रह से गद्‌गद् हो उठते और इस गौरव और सम्मान का बखान वे महीनों करते, पर इस वक्त वह हाथ वहीं पड़ा था जहां जख्म था और इस स्पर्श से उन्हें गौरव नहीं, एक गहरा दर्द महसूस हुआ जो उनके कलेजे तक उतर गया. □

क्या आप जानते हैं कि कालजयी कथाकार जैनेंद्र कुमार की सर्वश्रेष्ठ कहानी कौन सी है...?

वरिष्ठ कथाकार विष्णु प्रभाकर द्वारा चुनी गयी जैनेंद्र जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी और उस पर चयनकर्ता कथाकार की महत्वपूर्ण टिप्पणी सहित जैनेंद्र कुमार के संपूर्ण रचना-संसार को समझने का ऐतिहासिक आयोजन

जैनेंद्र कुमार विशेषांक

जनवरी, 1989

निराशा से बचने के लिए अपनी प्रति अभी से आरक्षित करा लें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वी आइ पी क्लब कार्ड – यह कार्ड आपकी प्रतिष्ठा बतलाता है – आपके पैसों का सही मूल्य चुकाता है.

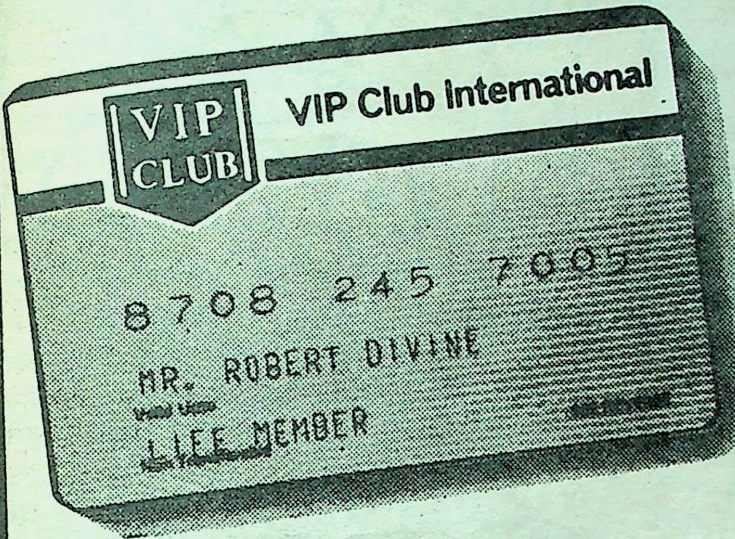

सभी संलग्न संस्थाओं द्वारा देश-विदेश में इसका स्वागत हुआ है. वी आइ पी क्लब इटरनैशनल की सदस्यता पाकर आपको सिर्फ़ एक और कार्ड नहीं मिलता बल्कि वी आइ पी क्लब कार्ड द्वारा आपको देश और विदेश में कई तरह की अनोखी सेवाए प्राप्त करने का सौभाग्य मिल जाता है.

वी आइ पी क्लब की सदस्यता आपकी एक और पहचान बनायेगी जो आपकी प्रतिष्ठा और समाज में आपकी उन्च्व जीवन पद्धति का प्रमाण होगी.

वी आय पी क्लब के सदस्यों को मिलनेवाले फायदों पर एक नज़र डालिए :

- देश-विदेश में आपके होटल बिलों पर ४०% तथा कार के किराये पर २०% तक की छूट.
- रेस्टॉरंट तथा दुकानों से की गई खरीद पर २०% तक की बचत.
- ५०,०००/- रु. तक का व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा.
- खोये हुए सामान की भरपाई
- वीआइपी क्लब समाचार, नामक मासिक पत्रिका सदस्यों को भेजी जाती है.

आपकी सदस्यता १५ दिन में

R. A. Advtg.

कृपया मुझे सदस्यता प्रदान करें. ________ रु. का चैक/डिमांड ड्राफ्ट संलग्न है.

व्यवसाय : ________

नाम : ________

घर : ________

फोन ऑफिस : ________

सही ________

पता : ________

सदस्यता शुल्क
१ वर्ष-५५०/-रु.
३ वर्ष-१२००/-रु.
वी आइ पी क्लब गोल्ड कार्ड (आजीवन सदस्यता)-५,०००/-रु.

वी आइ पी क्लब इंटरनेशनल
१०९, एम्बेसी सेंटर,
नरीमन प्वाइंट,
बम्बई : ४०० ०२१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1 अगस्त 1939.
प्रमुख कृतियां : 'लाल पीली जमीन', 'हुजूर दरबार', 'वह अपना चेहरा', 'धीर समीरे', तुम्हारी रोशनी में' (उपन्यास) व 'अंतःपुर', 'खुद के खिलाफ', 'अपाहिज', 'पगला बाबा', 'खाक इतिहास' (कहानी संग्रह)

☐ गोविंद मिश्र

धुंधलका

रुक्मिणी ने दरवाजा खोला तो छोटा भाई राहुल, भाभी और उनका सात-आठ साल का लड़का आलोक अटैची, बिस्तरबंद, डोल्चियां लिये खड़े थे. स्टेशन से सीधे चले आ रहे थे. सबने लपककर रुक्मिणी के पैर छुए. रुक्मिणी ने दूर-दूर के भाव से स्वीकार किया, पैर पीछे हटाते हुए, चेहरा खिंचा हुआ. बाहर का कमरा दिखाते हुए बोलीं, ''उस कोने में सामान रख लो.''

राहुल स्वयं को एकदम आज्ञाकारी जताते हुए कोने में सामान इस तरह लगाने लगा जैसे कमरा नहीं, वह रेल का डिब्बा था... कभी इस तरह फिट करता, कभी उस तरह. एक-एक इंच जगह का इस्तेमाल, कम-से-कम जगह में गुजारा कर लेंगे वे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो स्वाग! कड़ुवाहट रुक्मिणी के मुंह तक आ गयी, "मैंने तो लिख दिया था कि यहां कुछ नहीं हो सकेगा. न हमारी डाक्टरों से जान-पहचान है, न कुछ!"

"अरे! आपनै लिखो हतो?" राहुल की पत्नी चौंकती हुई बोली, "अरे हमें देखो कि हम आपकी चिट्ठी खां तरस गये. फिर जौ सोचो कि राम जाने आपकी तबीयत खराब है कि का! लेव अब इतनी दूर नाहक आये, खर्चा-पानी भओ सो अलग. चिट्ठी मिल जाती तो काये खां आवनै हतो..."

रुक्मिणी भाभी को खूब जानती है. बोली में बुंदेली की पूरी मिठास, बच्चे जैसी निश्छलता घोल लेंगी. जो सुने वही रीझ जाये... पर भीतर वह पैंतरबाजी कि अच्छे-अच्छे नेताओं को भी पैर का धोवन पिला दे महारानी! वैसे आजकल यह बढ़िया है—उधर से कोई साफ शब्दों में मना भी कर दे, फिर भी पहुंच जाइए... चिट्ठी मिली ही नहीं!

बाथरूम दिखाकर रुक्मिणी चुपचाप अपने कमने में आ गयीं और ठाकुरजी की पोशाक सिलने में लग गयीं.

भोलेपन पर एक अजीब तरह की संजीदगी बिछी हुई थी...संजदगी जो दहशत पैदा करती थी— खुलते हुए जीवन में ऐसी संजीदगी! रुक्मिणी सहम गयीं. नमी की एक लहर उनकी आंखों में कथलने लगी... चुभती हुई...

ब्राह्म मुहूर्त में मंगला आरती से ठाकुर को जगाने से लेकर रात्रि उनके शयन तक अष्टयामी सेवा का अनुष्ठान ओढ़ रखा है रुक्मिणी ने. आठ बार की ये पूजा तो हुई रोज.... फिर अतरे चौथे रोज त्यौहार हैं. ठाकुर का मंदिर धोना-पोंछना है, पोशाकें सीना-पिरोना है. ठाकुर के लिए तरह-तरह के भोग बनाना-धरना है. वर्षों से यही जीवन-क्रम है. सोना-जागना सब प्रभु की छाया में हो, हर क्षण उन्हीं में डूबना-उतरना.... यह कोशिश करती हैं. और कुछ नहीं भाता. कभी ऐसे ही चौबीसों घंटे कन्हैया के इर्दगिर्द बुने हुए थे. शादी के छः साल बाद संतान का मुख देखा था तो दोनों पति-पत्नी प्यार-अनुराग में पिछले वर्षों की भी कमी पूरी कर लेना चाहते थे. सारा संसार उस बच्चे में ही सिमट आया था, उसके बाहर जैसे कुछ था ही नहीं. पर जिसे जीवन का केंद्र बनाया, वही चला गया देखते-देखते.... एक बुखार और बस! जैसे रुक्मिणी की जान से थक्का का थक्का किसी ने नोचा और खींचकर ले गया....

आसमान धू-धू करते जलता रहा था—कितने महीने, कितने साल. अनगिनत यात्रा और तीरथ कर डाले. तिल-तिल करके रुक्मिणी ने स्वयं को समेटा, समेटकर पूजा-पाठ में लगाया. दूसरी संतान नहीं हुई तो फिर संसार में लौटना नहीं हुआ एक तरह से. पूजा-पाठ की दुनिया ही रुक्मिणी की दुनिया हो गयी. अब दिन हो या रात, ठाकुर के आसपास गुंथा हुआ है.... पर कड़ुवाहट की एक गांठ जो तब पड़ गयी, वह आज तक घुली नहीं. बाहर की दुनिया उनकी दुनिया नहीं है, वे दूर-दूर रहना चाहती हैं.

कोई थोड़ी देर को भी आ जाये, उतने में ही रुक्मिणी उकता आती हैं, फिर किसी का आकर घर पर ठहरना, दिनों-दिन रहना? ऐसा तो नहीं कि कोई आता नहीं. पति के मेहमान आते हैं, रहते हैं.... पर बाहर-बाहर. कोई ऐसा नहीं जो रुक्मिणी की दिनचर्या में बाधा बने. रुक्मिणी ने किसी ने बनाया ही नहीं कि कोई उनके घर आये और ठहरे, उनके जीवन में दखल करे. वे एकदम सूखी हैं.... जैसे बाहर, वैसे भीतर. सब जानते भी हैं. अब कोई क्या करे खून के रिश्ते का भाई—राहुल, मना करने पर भी आ गया...जबर्दस्ती!

राहुल कस्बे में मां-बापवाले मकान में ही रहता है. वकालत है, खाने-पीने भर. रुक्मिणी बड़े शहर में है, आर्थिक स्थिति राहुल से बहुत अच्छी है. इसलिए राहुल ने लिखा था—उनके लड़के आलोक को इस छोटी उम्र में ही मोतियाबिंद उतर आया है, आप लोग बड़े शहर में हैं, किसी अच्छे डाक्टर को दिखा दें तो अच्छा रहे. रुक्मिणी को दो मिनट नहीं लगे थे तय करने में—सगे भाई का मामला है तो क्या हुआ, वे नहीं पड़ेंगी इस पचड़े में. अपनी दिनचर्या बिगाड़ो, शांति भंग करो, किसके लिए? राहुल और भाभी ने खुद किसके लिए क्या किया? जब पिता बीमार थे तो ये दोनों उन्हें बड़े भाई की तरफ ढकेलते रहे. जब पिता का देहांत हुआ तो एक-एक पैसे का हिसाब बड़े भाई के सामने रखा कि आधा-आधा खर्चा बांटा जाये—अर्थी बांधने के लिए इतने की रस्सी, इतने का कफन, इतने के फूल.... छिः...

आदमियों की यह दुनिया! घिन छूटती है रुक्मिणी को. पिता... कन्हैया के अलावा दूसरा कोई, जिससे उनका लगाव था—उसके साथ यह हुआ... रुक्मिणी भी क्यों करें किसी का? संसार में आये हैं तो अपने हिस्से का थोड़ा-बहुत पति का कर दिया... बस! ईश्वर की कृपा से पति भी ऐसे कि दिन-रात दफ्तर के काम में डूबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना. वे फाइलों में डूबे रहते हैं, रुक्मिणी अपने ठाकुर में. पति को थोड़ा-बहुत समझाकर देखा... रुक्मिणी ने भी छोड़ दिया... अपनी-अपनी निर्यात! संसार असार है... माया, इसलिए छोड़ो. रुक्मिणी अपने को ही संभाले रहें—बहुत है. जब वे अपने भाई, भाभी, पति के मित्र, उनकी पत्नियां... उन जैसों को देखती है तो लगता है सबके सब जैसे कीचड़ में खदबदा रहे हैं, कीड़ों की तरह. रुक्मिणी पास जायेंगी तो छीटें उन पर भी पड़ेंगे. इसलिए दूर...दूर...

आने को मना कर दिया था, फिर भी राहुल परिवार समेत आ गया. रुक्मिणी ने अपने पति को समझा दिया, कुछ करने की जरूरत नहीं है इनके लिए. इतना बहुत है कि घर में ठहरा लिया. कुछ और किया तो ये पास पसर जायेंगे. घर में ठहराओ, उनका काम कराओ, उनकी सेवा करो और राहुल और भाभी जैसों से मिलना अपयश ही है. और यश भी मिले तो क्या... इनके पीछे-पीछे दूसरे चले आयेंगे, चलो बड़ा शहर है, खाने-पीने का इंतजाम फिट है, उपर से बैठे-बैठे बड़े डाक्टरों का इलाज. फिर रुक्मिणी और उसके पति दौड़ते रहे डाक्टरों के पीछे, करते रहे तीमारदारी... एक के बाद दूसरी टीम, दूसरी के बाद तीसरी. घर न हुआ, हस्पताल हो गया. अपनी दिनचर्या, अपना पूजा-पाठ, सब कुछ होम कर दो. सेवा ही करना है तो अपने ठाकुर की न करे कोई.

अलग एक पूरा कमरा दे दिया, पर नहीं, घर-भर में फैलेंगे. राहुल के बेटे आलोक ने तो आते ही ड्राइंगरूम को खेल का मैदान बना लिया. दीवान की तीनों गोल-गोल तकिया निकालकर पटकेगा. उन पर बैठकर घोड़ा-घोड़ा खेलेगा. सब तकिया टेढ़ी कर डाली. खाने की मेज पर मठरियों का मर्तबान रखा था तो उससे निकाल-निकालकर दिनभर मठरियां खाना. मुट्ठी में भरकर खायेगा, बराबरी से उचकेगा—आधा पेट में, तो आधा कार्पेट में. कार्पेट में इसी तरह तो कीड़े लगते हैं. रुक्मिणी ने मेज पर बैठकर खाने को कहा तो एक बार तो उसने माना, पर थोड़ी ही देर को. दूसरी बार से कहने का कोई असर नहीं. रुक्मिणी ने अपना सख्त चेहरा दिखाया तो कोई डर नहीं.... उल्टे हंसता चला गया, जैसे उनके उस विद्रूप चेहरे को देख कर हंसी आ रही हो. आखिर मर्तबान की मठरियां खत्म हुईं, पर इधर रुक्मिणी ने राहत की सांस ली, उधर आलोक रह-रहकर जिद्द करने लगा, "बुआजी! बुआजी! मठरी और बना दैहो!" कैसा बेशरम लड़का है!

राहुल और उसकी पत्नी दूसरे दिन भी बड़े आत्मविश्वास से निकले थे—जीजी-जीजाजी कुछ नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, वे स्वयं इधर-उधर से पता चला लेंगे, कुछ सिलसिला जमा लेंगे. प्राइवेट डाक्टरों से पूछा तो उन्होंने वह फीस बतायी कि मिजाज़ झक्क! तीसरे दिन शहर के उपनगरों में पूछताछ की. वहां फीस ज़रूर कम थी पर हस्पताल जैसा कोई इंतजाम नहीं... कस्बे के डाक्टरों से थोड़ा ही बेहतर. चौथे दिन बड़े हस्पताल में घूमे. पूरा दिन खप गया. डाक्टर न मिला, सिर्फ डाक्टर को दिखाने का एपाइंटमेंट मिला—वह भी दो दिन बाद का. दिखाने का तो हाल यह, आपरेशन का क्या होगा!

आलोक ने तो हद कर दी. रुक्मिणी नहा-धोकर पूजा के बर्तन शुद्ध करने रसोईघर गयी थीं. वहां से पूजा के बर्तन और फूलपत्ती लिये ठाकुर के अभिषेक में चित्त जमाये, वे पूजागृह की ओर जा रही थीं, होंठ भजन की लहरियों में ऊपर-नीचे होते हुए... कि एकाएक आलोक पीछे से आकर चिपक गया. घबराहट में रुक्मिणी के मुंह से चीख निकल गयी. वे लड़खड़ा गयीं, पूजा के बर्तन गिरते-गिरते बचे. ऐसा कभी नहीं हुआ था. पूजा-पाठ के उनके आग्रहों को सब जानते हैं, ये सब भी उन्हें इतने दिनों से पूजा करते देख रहे हैं. वैसे भी वे दूर-दूर रहती हैं, पूजा के लिए प्रस्तुत होने पर तो और भी फूंक-फूंक पग धरती हैं.... और यह छोकरा न नहाया, न धोया, सब अपवित्र कर दिया— वस्त्रों को, पूजा के सामान को, उन्हें. पाजी! बेशरम!! बदमाश!!!

रुक्मिणी ने आलोक को खूब डांटा. पीछे-पीछे उनकी आंखें छलछला आयीं.... कहां ठाकुर के प्रेम में विभोर मन, कहां गुस्से में तनतनाती ये नसें! कहां से कहां तो पटका इस छोकरे ने. इसीलिए उन्हें किसी का अपने घर रहना नहीं सुहाता.

आलोक डांट से सहमकर एक किनारे हो गया. अपने जबड़ों को चिपकाये रुक्मिणी पूजा के बर्तनों को वापस रसोईघर में रख आयीं और फिर से स्नान करने चली गयीं. कैसे मां-बाप हैं—धर्म-कर्म, आचार-विचार की कोई शिक्षा नहीं दी लड़के को. उस दिन रुक्मिणी ने भाभी को दो टूक शब्दों में कह दिया—उनका न निभेगा, बिल्कुल नहीं. जल्दी अपना कामकाज निपटाओ और अपने घर जाओ. अगर इस तरह उनकी पूजा में विघ्न हुआ तो एक दिन वे सामान उठाकर बाहर फेंक देंगी. पूजन-भजन भी मन लगाकर न कर पाये तो क्या फायदा जीवन का ही.

रुक्मिणी ने सोचा था कि उतनी डांट खाने के बाद आलोक अब उनसे दूर रहेगा... पर शाम को ही जब वे दीवान पर बैठी थीं तो वह उनके पास ऐसे चला आया जैसे कुछ हुआ ही नहीं था. बोला, "बुआजी! बुआजी! कविता सुनहौ?" रुक्मिणी न तो नहीं कर सकीं, चुप बनी रहीं. उधर आलोक चालू हो गया था—

तितली उड़ी
उड़ के चली
श्याम ने कहा
आजा मेरे पास,
तितली बोली—
हट बदमाश!

क्या मतलब? शायद कुछ नहीं, इन चीजों का क्या मतलब होता है. बच्चे हैं—इधर से यह सुना, उधर से वह. थोड़ा यह लगाया, थोड़ा वह जोड़ा. लेकिन 'हट बदमाश' में क्या सबेरे की डांट का कुछ.... रुक्मिणी कविता के मतलब में खोयी हुई थीं कि उधर आलोक "और सुनहौ?" कहकर दूसरी कविता सुनाने लगा था—

"बेसन की पकौड़ी
मूंग की मंगौड़ी
उड़द की कचौड़ी
खाकै मुन्नी दौड़ी."

रुक्मिणी ने तरेरकर आलोक को देखा. वह उन्हें चिढ़ा रहा था— मुन्नी उनके बचपन का नाम है, मां-बाप से उसे पता चल गया होगा. आलोक के चेहरे से जरूर ऐसा नहीं लगता था कि वह कविता का मतलब भी जानता था. रुक्मिणी जानती थी क्या.... अगर कविता उनके लिए थी तो भी क्या मतलब था! आलोक कविता में मुन्नी मिलाकर या देखकर ही खुश था.... उन्हें खुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहता था किसी तरह? रुक्मिणी कुछ न सोच पायीं, उठ जरूर गयीं.

अगले दिन जो आलोक रुक्मिणी को घेर पाया तो पहेली बुझाने का खेल खेलाने लगा—"बुआजी, बुआजी. बताइयो.... हरी डिबिया में सफेद मोती?"

रुक्मिणी ने कोई दिलचस्पी नहीं जतायी.

"हार गयीं? हार गयीं?" आलोक उन्हें झकझोर रहा था. तंग आकर रुक्मिणी ने हां कर दी. आलोक हंसकर बोला, "हरी मिर्च!"

तुरंत ही उसने दूसरी पहेली उठा ली थी—"बताइयो....
नांय गयीं, मांय गयीं
चोंखरो लटकाय गयीं."

रुक्मिणी अपनी तरफ की भाषा समझती हैं—माने कि इधर-उधर गयीं तो चूहा लटकाकर गयीं. चूहा.... रुक्मिणी के गले में माला तो है—वह चूहा? गंदगी और अपमान एक साथ महसूस होने लगा उन्हें, पर क्यों... पहेली कोई उनके लिए तो नहीं बनायी गयी थीं: उधर आलोक पूछने में लगा था, "हार गयीं? बुआजी हार गयीं?"

रुक्मिणी ने तंग आकर हां कर दिया, कौन खोपड़ा खपाये. आलोक ने खुश-खुश पहेली का उत्तर बताया-"ताला."

.राहुल और भाभी पस्त हो आये हैं. बड़े अस्पताल के डाक्टर से मिलना हुआ था. उसने आलोक को देखा और गंभीर हो गया, "अपने देर कर दी है, आंख के मामले में ऐसी लापरवाही नहीं करनी चाहिए. सारी जिंदगी का सवाल है. बच्चे का मामला है, इसलिए खतरा कतई नहीं लेना चाहिए. फौरन आपरेशन कराइए, वह भी प्राइवेट में.... सिर्फ डा. झाभवाला से."

आपरेशन यहीं.... माने रुक्मिणी के घर कम-से-कम एक महीना और रहना. रुक्मिणी का जो रुख है, वह किसी से छिपा नहीं. दूसरे, डाकटर झाभवाला—माने लंबी फीस! क्या वे दे सकते हैं? यहां भी रुक्मिणी की मदद चाहिए.

नहीं दे सकते तो ठीक तो है—बांधें अपना बिस्तर और घर जायें. ठस्सा तो था कि दोनों भाग-दौड़कर सब कर लेंगे. ऐसे टहलते हुए चले आये बड़े शहर जैसे अपने कस्बे से जिला जा रहे हों. फालतू में दस दिन निकाल दिये—खूब कचर-कट्ट खाओ और डाक्टर-अस्पताल करते हुए पड़े रहो. जैसी मां फालतू, वैसे ही बाप-बेटा. अब जायेंगे ही:.. और क्या करेंगे? रुक्मिणी को तसल्ली हो रही थी.

कब आलोक आकर पूजागृह में रुक्मिणी के पीछे बैठ गया, उन्हें पता ही न चला. पूजा के बीच जब कुछ उठाने केलिए वे पीछे मुड़ीं तो दिखाई दिया—नहाया-धोया, साफ कपड़े, बाल खिंचे हुए.... शालीनता से बैठा था. रुक्मिणी चौंक गयीं. मन हुआ कि उसे बाहर जाने को कह दें.... आलोक भी तो उसी दुनिया का है.... कीड़ों से बदबदाती दुनिया, जिसे बाहर कर रुक्मिणी ने अपने आपको ईश्वर से लगाया है. हटाओ... भगाओ इसे. पर ऐसा ही बैठा रहे तो क्या शिकायत हो सकती है. वे उसे पीठ दिये बैठी रहीं और पूजा में पूर्ववत् लग गयीं.

पूजागृह में जब वे पूजा कर रही हों... तब किसी अन्य की उपस्थिति? पति ने भी कभी हिम्मत नहीं की.... और आलोक पूरे आधा घंटे बैठा उन्हें विधि-विधान से पूजा-पाठ करते देखता रहा!

रुक्मिणी का हाथ दूर से प्रसाद छोड़ने की मुद्रा में झुका था, प्रसाद के लिए आलोक नीचे अंजुरी बनाये हुए.... पर ठीक रुक्मिणी के हाथ के नीचे नहीं, थोड़ा हटकर. प्रसाद छोड़ा तो जमीन में गिरेगा.... उतर आया न शरारत पर, कुत्ते की दुम टेढ़ी ही रहेगी, इतनी देर सीधा बहुत बैठ लिया. प्रसाद हाथ से लिये हुए ही रुक्मिणी ने डांटती हुई आंखों से आलोक की तरफ देखा. शरारत के चिह्न वहां दूर-दूर तक नहीं थे. वह गंभीर था, चुपचाप सामने देखे जा रहा था... उस तरफ, जहां देखने को कुछ खास न था. छोटी-छोटी खुली आंखों में पुतलियों के इर्दगिर्द गाढ़ी सफेदी... अरे! उसे तो पता ही न होगा कि अंजुरी इतना हटकर है, ठीक-ठीक कहां दिखता है.... और वह कहे भी कैसे....

भोलेपन पर एक अजीब तरह की संजीदगी बिछी हुई थी... संजीदगी जो दहशत पैदा करती थी—खुलते हुए जीवन में ऐसी संजीदगी! रुक्मिणी सहम गयीं. नमी की एक लहर उनकी आंखों में कलथने लगी... चुभती हुई, बाहर चू पड़ने की बजाय वह पलकों की कगार से भीतर लौट गयी, अपने उत्स की ओर.... और वहां एक भवंर की तरह चक्कर खाने लगी.... आलोक में भी तो वही ईश्वर है जो रुक्मिणी के भीतर बैठा है. आलोक में है तो संसार में है.... व्याप्त ईश्वर को अपने भावों से उतारें... उसकी जगह रुक्मिणी कैद हैं मात्र दिनचर्या में—मंगला से शयन, शयन से मंगला! उनका जीवन वीरान और सूखा तो सारे संसार को वैसा मानकर उन्होंने किवाड़ बंद कर दिये.... ताला लटका दिया. कन्हैया के लिए जो स्नेहधारा थी, उसे मोड़कर भीतर कड़वाहट के रेगिस्तान में ले गयीं और सुखा दिया. अगर वह बाहर की ओर बहती तो कैसी खेती लहलहाती, कैसा आलोक!

आलोक को मुट्ठी में प्रसाद पकड़वाकर रुक्मिणी ने थोड़ा चंदन अपनी उंगली में उठाया और आलोक के माथे पर बिंदी धर दी....

आलोक, राहुल और भाभी की संतान भर नहीं जो उनके कुकर्मों का बदला उसे मिला. वह है संसार में आया एक और जीव.... नया, पृथक! उसके वे ऊटपटांग खेल—कभी कविता, कभी पहेली... जैसा पालने का बच्चा रुक्मिणी की तरफ लपक रहा हो! उस जैसे कितने? उन पर सब रुक्मिणी बदली की तरह छा जायें!

पूजागृह के बाहर खुली छत थी जहां से भरे बादलों को छूती नम हवा सरसराती हुई गुजर रही थी... इस पार से उस पार. आलोक को साथ खचोरते हुए रुक्मिणी छत की तरफ करीब-करीब दौड़ गयीं. □

चलते-चलते

स्टेशन के पूछताछ कार्यालय की खिड़की पर जाकर एक सज्जन ने पूछा, "क्यों साहब, आसाम मेल कब आ रही है?"

तीन बजकर पंद्रह मिनट पर." जवाब मिला.

"प्लेटफार्म नंबर कितना है?"

"चार."

"चार पर ही आयेगी न?"

"जी हां, वैसे आप चाहें तो आपके घर भिजवा दी जायेगी."

— राजकुमार जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फाइल पढ़ि पढ़ि जग मुआ

गोपाल चतुर्वेदी

सरकार, रफ्तार और साईकिल

एक उम्र के बाद कुछ आदमी यौवन का भ्रम बनाए रखने के लिये कभी बाल रंगते हैं. कुछ विग लगाते हैं और सब नये फैशन के कपड़े पहनते हैं. जो व्यक्ति के लिये आसान है, सरकार के लिए मुश्किल है. वह अपनी कार्यकुशलता की छवि बनाने के लिये क्या करे! थोड़े दिनों इक्कीसवीं सदी की धूम मची. पे-कमीशन की आर्थिक रियायतों और महंगाई, याने इस हाथ दे, उस हाथ ले का दौर चला. कम्प्यूटर के झुनझुने बजे. विदेशी प्रशिक्षण की मदद से सोचा गया कि देसी समस्याएं सुलझेंगी. ऐसा नहीं कि कुछ भी नहीं हुआ. जो बाहर गये, उनकी उलझनें कुछ हद तक कम हुई. चोरी-छिपे कलर-टी.वी., वी.सी.आर., नयी किस्म के फोन आदि आ गये. मुफ्त का सैर-सपाटा अलग. पर इस सबके बावजूद सरकार की रफ्तार नहीं बदली. गजगामिनी-सी चाल पर, पता नहीं अज्ञानी क्यों एतराज करते हैं. कागज सचिव या मंत्री के शिखर से टपकता है तो सहायक के खजूर तक अटकने में अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव, उप-सचिव, अवर सचिव, सैक्शन अधिकारी के माध्यम से गुजरने के दौरान वक्त लगना तो लाजमी है. ऊपर की वस्तु का नीचे आना तो न्यूटन के नियम के अनुसार स्वाभाविक है. इसी कागज का फिर से सचिव के पहाड़ तक का सफर समलैंगिक संबंधों के समान अप्राकृतिक और अस्वाभाविक है. लिहाजा कागजी घोड़े खा-पीकर मुटाते और सुस्ताते रहते हैं.

उन्नीसवीं-बीसवीं सदी तक चलन था कि कहीं कोई कमी दिखे तो कमेटी बना दो. जब तक रिपोर्ट आयेगी समस्या स्वयं ही चल बसेगी. ठीक उसी तरह जैसे शीत-लहर के शिकार सरकारी राहत के कंबल आने तक स्वर्ग सिधार जाते हैं. बीच में जब सरकार में जनता आयी तो उसने कमेटी कार्यप्रणाली से कमीशन तक तरक्की की. इस जनता अंतराल को अवकाश-निवृत अधिकारियों का स्वर्ग युग भी कहा जाता है. जैसे ही कोई अधिकारी सरकार से जुदा हुआ, किसी न किसी कमीशन से जुड़ गया. जन-कल्याण के नाम पर कुर्सी, कार, दफ्तर, स्टेनो आदि का सुखद सिलसिला अनंत काल तक जारी रहना था पर इस बीच सरकार ही बिखर गयी. अधिकारी तो हट गये पर कमीशन अपनी जगह अटल है. पहले बनते थे, अब 'मिलते' और 'बंटते' हैं. इतिहास गवाह है कि सरकार कोई भी हो. सचिवालय के संदर्भ में आम आदमी सिर्फ एक आंकड़ा होता है.

पर अच्छे प्रशासन की राह में कई रोड़े हैं. प्रजातंत्र की दुखद अनिवार्यता है कि किसी निश्चित अवधि के बाद चुनाव अवश्य हो जाते हैं. सरकार की तटस्थ, जन-निरपेक्ष और निस्पक्ष स्वाभाविक स्थिति वोट की भाग-दौड़ और जोड़-भाग से डांवाडोल हो उठती है. बांध, पुल, कारखाने, रोजगार और विकास के कार्यक्रमों का अस्तित्व अधिकतर सिर्फ नेताओं के भाषणों में होता है. इलैक्शन के समय इन्हें जमीन पर उगाने की कोशिश की जाती है. पुराने गड़े उद्घाटन के पत्थरों की तलाश की जाती हे. दफ्तरों में उनकी फाइलें भी या तो खुलकर बंद हो जाती हैं या गायब. सदियों बाद भी उसके राजनैतिक आका सरकार की असलियत की कलई से अपरिचित हैं. वह सवाल उठाते हैं कि जो कारखाना जलपाईगुड़ी या जोरहाट में स्वीकृत हुआ था उसका क्या हुआ! सच्चाई यह है कि सरकार ने अपना काम कर दिया. कागजों में कारखाना सिर्फ स्वीकृत ही नहीं चालू भी है. अब यह बात दीगर है कि उसका कारखाना बना या कमीशन.

ऐसी परिस्थितियों से प्रभावित होकर कई जन्मजात शिकायती आरोप लगाते हैं कि सरकार सदा कछुए की गति से क्यों काम करती है. कोई कैसे इनको समझाये कि फुदकते-उछलते खरगोश से धैर्यवान और लगनशील कछुआ हर हाल में बेहतर है. आखिर उसमें खराबी भी क्या है! ग्लैमर हो न हो, गरिमा तो है ही.

उदाहरण के लिये मान लीजिये आप सरकारी कर्मचारी हैं और शासकीय एडवांस से साईकिल खरीदना चाहते हैं. उसके लिये आपको अर्जी देनी पड़ती है. उसके बाद इसे फाइल पर लगाकर ऊपर भेजने के 'अप्राकृतिक' कृत्य के लिये आप संबद्ध बाबू के आगे-पीछे नाक रगड़ते घूमते हैं. तब कहीं जाकर वह चार-पांच बाधाओं को लांघती-फांदती निर्णय लेने वाली 'सरकार' के सामने पहुंचती है. अब उस पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विचार प्रारंभ होता है. देश में कितने कर्महीनों को साईकिल की आवश्यकता है. इनमें से कौन वरीयता की श्रेणी में आते हैं अर्थात कितनी सिफारिशें किसके पक्ष में हैं! कहीं ऐसा तो नहीं कि बाढ़ या शांत राहत के चलते सरकार साईकिल लेने से कंगाली के कगार पर आ जायेगी. साईकिलों की संख्या बढ़ने से नगर-बस की आर्थिक स्थिति पर या भीड़ घटने से सवारियों के मनोरंजक कुटीर उद्योगों जैसे जेबकतरी या महिलाओं को छेड़ने, चुटकी काटने आदि पर दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ेगा. साईकिल और उसके चालक की सेहत और सुरक्षा के बारे में स्वास्थ्य और गृह मंत्रालय की राय लेना भी जरूरी है. साईकिलों की संख्या और बढ़ने से नगर-बस के सारथी सड़कों को महाभारत का कुरुक्षेत्र भी बना सकते हैं. क्या इस तरह से आबादी घटाना संविधान-संगत होगा. गटर बने शहर से मक्खी-मच्छरों का उन्मूलन अधिक आवश्यक और लाभप्रद है या साईकिल की खरीद. दफ्तर की मेज के पीछे कुर्सी में धंसे-फंसे व्यक्ति को हर मसले पर 'ग्लोबल' दृष्टिपात करना पड़ता है. यदि ऐसा करते-करते उसका सिर चकराने लगे या चश्मा गिर जाये तो वह सहानुभूति का पात्र है. पर होता यह है कि निर्णय की इस गंभीर प्रक्रिया को बिना समझे लोग उस पर फिजूल हर मसले को अटकाने की तोहमत लगाते हैं. हमारी वास्तविक राष्ट्रीय समस्या यही है कि सब अपने निजी हित की सोचते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस व्यापक संदर्भ में साईकिल की अर्जी पर विचार करता अधिकारी यदि यूरोप-अमरीका के दौरे पर निकल जाये तो क्या गलत होगा! लिहाजा वह देश हित को ध्यान में रख अपने मंत्री को यह सुझाव प्रस्तुत करता है कि तीन सदस्यीय विभिन्न मंत्रालयों की एक टीम अंतर्राष्ट्रीय दौरा कर साईकिलों के निर्यात की संभावनाओं की खोज कर ही डाले. मंत्री जी को इस प्रस्ताव में देशाटन की मुलायम हरी दूब नजर आती है. उनकी बांछें खिल जाती हैं. उनका निजी सचिव चहकता है, ''सर! यह ट्रिप कोरी प्रशासनिक हो ही नहीं सकती. इसका नेतृत्व आपको ही करना चाहिए. अभी तक हम पारंपरिक रूप से चाय, कॉफी, कपड़ा आदि का निर्यात करते हैं. साईकिलों के निर्यात से एक नयी औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात होगा. इलैक्ट्रानिक सामग्री और चार-पहियों के वाहनों में जो स्थान जापान का है, दो पहियों की सवारी में हिंदुस्तान का होगा. यदि आपको सफलता मिली तो आपका राजनैतिक कद बढ़ेगा. भारत का भविष्य उज्जवल होगा.''

मंत्री जी ने तत्काल संबद्ध अधिकारी को बुलाकर उसकी पीठ ठोंकी, ''पार्थसारथी, आपने तो कमाल कर दिया. बड़ा सूझबूझवाला प्रस्ताव है आपका. यदि मैं इस दल का नेतृत्व करूं तो कैसा रहेगा?'' पार्थसारथी ने यात्रा-रथ आगे बढ़ाया, ''सर! मैं तो स्वयं आकर यही कहनेवाला था. आपके साथ रहने से कोई न कोई देश हमारी साईकिलों के निर्यात का प्रस्ताव शर्तिया मान लेगा.''

''साईकिल के एडवांस पर रोक लगाकर उनका निर्यात करने की बात है तो स्टाफ कारों की खरीद भी रुकनी चाहिये. साथ ही कार एडवांस भी. कहीं कर्मचारियों की यूनियन उसका विरोध न करने लगे.''

मंत्री जी के कान खड़े हुए, ''राव की बात में भी दम है. अभी हमने सैकड़ों सरकारी गाड़ियां खरीदी हैं. कई अधिकारियों को कार खरीदने के लिये एडवांस दिया है. लोग हमारे राष्ट्रीय विकास के प्रयास को गलत न समझ बैठें.''

''ऐसा नहीं है सर! संसार के किसी भी विकसित देश में कोई साईकिल से दफ्तर नहीं जाता. उनके समकक्ष आने के लिये जरूरी है कि हम साईकिल से कार्यालय आने-जाने पर रोक लगायें. कारों का प्रयोग सार्वजनिक हित का मामला है. इससे सरकार को फायदा ही फायदा है. पेट्रोल की बिक्री से सरकार को अतिरिक्त आय होती है. टायर घिसते हैं, बैटरी चुकती है तो इनके उद्योग पनपते हैं. सबसे बड़ी बात है कि प्रशासन गतिशील होता है. स्टाफ कार के बगैर अधिकारी कैसे समय से आयें-जायें. कैसे दूसरे मंत्रालयों के अपने मित्रों से संपर्क साधें.

बीच में मंत्री ने पार्थसारथी को टोका, ''वह कैसे?'' ''पेट्रोल पंप पर कम उम्र के लड़कों को नौकरी मिलती है. सरकार के ड्राइवर ओवर-टाइम कमाकर अपना जीवन-स्तर सुधारते हैं. पेट्रोल बेचकर समाजवाद लाते हैं. साईकिल से सरकार को क्या लाभ. न पेट्रोल की जरूरत, न ड्राइवर की दरकार. हमें तो इसका निर्यात कर ही देना चाहिये,'' पार्थसारथी ने समझाया. पर इधर चुनाव की आशंका से मंत्री जी को 'बैलेटोरिया' हो गया था. इस बीमारी में अव्वल तो मरीज को नींद नहीं आती और यदि आयी भी तो चुनाव के बैलट में अपना डिब्बा गोल देखकर अचानक टूट जाती है. ''जनता अकसर अपने हित के कामों को गलत समझती है. साईकिल के एडवांस पर रोक लगाने के पहले हमें सही जनमत तैयार रहना चाहिये.'' उन्होंने निर्देश दिया.

''आप सही फर्माते हैं सर! पर अभी तो सवाल साईकिलों के निर्यात के लिये विदेशों में बाजार की तलाश का है. यदि हम अपने 'मिशन' में सफल रहे तो सरकारी साईकिलों की खरीद के एडवांस पर रोक लगाने की नौबत आयेगी. तब हम 'भौंपू' का प्रयोग कर लेंगे,''

''यह भौंपू क्या बला है?'' मंत्री जी चौंके. ''भारत के भौंदू भौंपू से बड़े प्रभावित हैं. जो इससे सुनते हैं, सच समझते हैं. इसीलिये कुछ समझदारों ने मिलकर ''भौंदू भारत प्रतिष्ठान बनाया है. यह भौंपू बजाकर, तस्वीरें दिखाकर जनमत तैयार करता है,'' अधिकारी ने मंत्री जी को ज्ञान दिया.

अब अनिवार्य था कि साईकिल की अर्जी इन सब अहम मसलों के बीच असहाय-सी दफन हो जाये. पार्थसारथी ने फिर भी हमदर्दी दिखायी और उसे जिंदा रखा, ''हम साईकिलों के बारे में नीतिगत निर्णय लेने पर विचार कर रहे हैं. अभी इसे लंबित रखें,'' अर्जी ने नीचे जाने की स्वाभाविक यात्रा शुरू कर दी. तब से भौंपू का दृश्य-श्रव्य संगीत चालू है और साईकिल की सरकारी खरीद बंद है. □

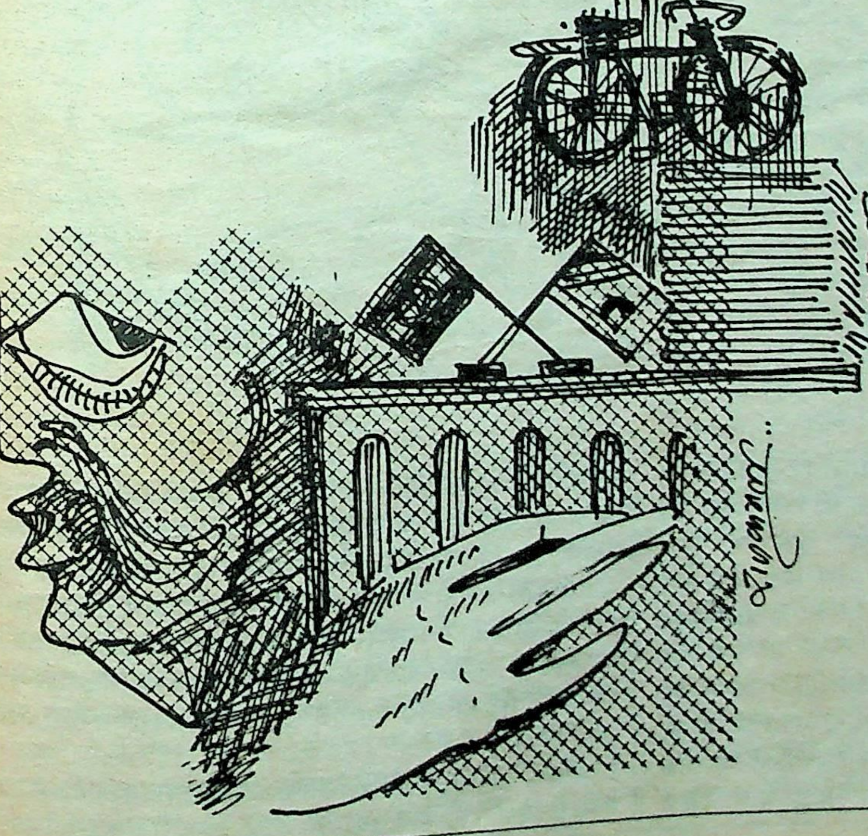

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 2 नवंबर, 1940 वृंदावन.
प्रमुख कृतियां : 'छुटकारा', 'एक अदद औरत', 'सीट नं. 6 (कहानी संग्रह), 'बेघर', 'नरक दर नरक', 'लड़कियां' (उपन्यास)
संपर्क : इलाहाबाद प्रेस, 370 रानी मंडी, इलाहाबाद.

□ ममता कालिया

सूनी

नाम था उसका सुनंदा, लेकिन उसे ज्यादातर लोग सुनी या सूनी कहते थे. शुरू में इस संबोधन की विशिष्टता उसे महसूस नहीं हुई लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे बरस खिसकते गये सुनंदा स्वयं अपना असली नाम भुला बैठी और अपने आप को सूनी ही समझने लगी. नाम, व्यक्तित्व और जीवन में ऐसा नहीं था कि वह कोई असफल जीवन जी रही थी. बाकायदा एम.ए. डी.फिल. तक की शिक्षा पाकर उसने इस महिला कॉलिज में प्राध्यापिका के पद पर ग्यारह साल बिताए थे. हिंदी विभाग में अब उसकी गिनती वरिष्ठ सदस्यों में थी. उसे बी.ए. आनर्स के लेक्चर भी मिले हुए थे जो एम.ए. से भी ज्यादा प्रतिष्ठित जिम्मेदारी माना जाता था. सूरत-शक्ल से वह औसत से ज्यादा सुंदर थी लेकिन उसके व्यक्तित्व में ग्लैमर का अभाव था. उसकी कपड़ों की पसंद भी कुछ ज्यादा गंभीर और सादी थी. लिहाजा जो उसे जानते थे वे सुंदर मानते थे लेकिन जो नहीं जानते थे, वे परिचय और संपर्क के लिए बेताब भी नहीं थे. वह क्लास लेती, स्टाफरूम में बैठकर चाय पीती, लायब्रेरी में कुछ वक्त बिताती और जब क्लास खत्म हो जाती तब भी घर जाना स्थगित करती रहती. जब से मां नहीं रही घर बेहद सुनसान हो गया था. कुछ महीने उसने मां से जुड़ी चीजें यादगार की तरह संभाल कर रखीं. फिर नये सिरे से जीने के इरादे से उसने वे सब चीजें अपने आत्मीयों में बांट दीं— पूजा की स्टील की चौकी, मखमल के जंपर, रुद्राक्ष की माला और चांदी का लोटा. मां की सफेद धोतियां उसने पहले ही फकीरों को दे दी थीं. अब उसके घर में गिना-चुना सामान था. एक अविवाहित लड़की जैसा घर बनाती है वैसा. यह दो कमरों का फ्लैट था. नंबर चार. इस इमारत में सिर्फ छह फ्लैट थे, नीचे के कुछ बड़े, बीच वाले दो कमरों के और सबसे ऊपर एक कमरे के साथ छत का हिस्सा. सूनी के घर में सबसे ज्यादा संख्या किताबों की थी. दोनों कमरों में किताबें ही किताबें नजर आती थीं, बेतरतीब, जगह-जगह. वह रोज सोचती इन्हें उठाकर रखेगी, ठीक से जमायेगी लेकिन रोज रात होते-होते तक वह ऐसी उदासी और जड़ता से जाम हो जाती कि यह काम कल पर टाल देती. अच्छे वेतन के बावजूद सूनी एक सन्यासी-सा जीवन व्यतीत कर रही थी. उसकी वार्डरोब में एक भी चटख रंग की साड़ी नहीं थी. उसे पसंद ही आते थे मटमैले, दबे रंग— काले, स्लेटी, भूरे, ऊदे, सफेद.

महिला कॉलेजों में जीवन कितना एकाकी हो सकता है यह वहां काम करनेवाले ही जान सकते हैं. छुट्टी की घंटी बजते ही मिनटों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कॉलेज खाली हो जाता. कहां कॉलेज के बाहर रिक्शों की कतार खड़ी होती, कहां सारी गायब हो जाती. जिस स्पीड से क्लासरूम खाली होते उसी स्पीड से चौकीदार उनमें ताला डालता रहता. देखते-देखते सब तरफ सन्नाटा छा जाता, बस पीछे के मैदान का एक नल पड़-पड़ आवाज करता अपनी मौजूदगी बताता रहता. माली अपनी कोठरी में पहुंचकर मगन हो जाता. थोड़ी देर में चौकीदार भी चाबियों का बड़ा-सा गोल तार झनझनाता हुआ मेनगेट बंद करने के लिए चल पड़ता. ऐसे में अगर कोई टीचर या लड़की घर जाने में देर लगाती तो चौकीदार, माली बड़ी हैरानी और बेसब्री से उसे देखने लगते.

सूनी के मन में मां की एक पारंपरिक तस्वीर थी लेकिन न जाने कितनी बार सूनी को अपनी मां ठीक इसके विपरीत लगी थी.

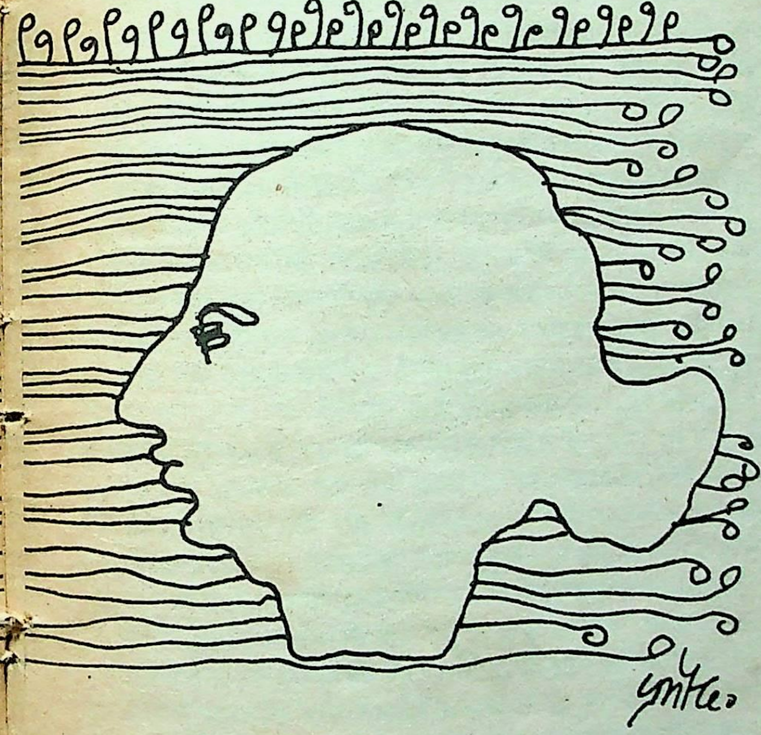

रिक्शे में घर की तरफ जाते-जाते सूनी सोचती-आज कौन दिन था– मंगल या बुध? कौन-सी तारीख थी– इक्कीस या बाईस? वह अपनी घड़ी देखती और पाती उस दिन न इक्कीस थी न बाईस, बल्कि तेईस तारीख थी, दिन था गुरुवार. सूनी को दुख होता, कैसे उसे इतनी मामूली बातें भी भूल जाती हैं जबकि जिन बातों को वह भूलना चाहती थी, वह बार-बार याद आतीं.

एक बार सूनी मां को लेकर हरिद्वार गयी थी. वहां मां बड़ी खुश और व्यस्त रहतीं. मुंह अंधेरे स्नान के बाद वे इस मंदिर से उस मंदिर पैदल जाती रहतीं. हरिद्वार उनका देखा-भाला था इसलिए सूनी को सोते से न जगाकर वे कई बार अकेले निकल जातीं. एक दिन सूनी धर्मशाला के चबूतरे पर बैठी पढ़ रही थी कि खी-खी की आवाज सुनकर उसने सिर ऊपर उठाया. धर्मशाला की मुंडेर पर एक बंदर बैठा गुस्से में खोंखिया रहा था. बंदर नीचे कुएं के पास आया, उसने इधर-उधर पानी टटोला. फिर वह हैंडपंप की तरफ कूद गया. वहां भी पानी नहीं था. बंदर फिर खोंखियाने लगा. सूनी ने उसकी दिक्कत समझी और पास जाकर हैंडपंप चला दिया. बंदर ने अपना मुंह पानी की बहती धार के नीचे लगा दिया और देर तक पानी पीता रहा. सूनी फिर पढ़ने बैठ गयी. इसके बाद वह बंदर जब-जब आता और अगर सूनी वहां होती तो पहले ही नल के नीचे मुंह खोलकर बैठ जाता. बंदर को पानी पिलाकर सूनी को बड़ा संतोष मिलता. दस दिन बाद जब उनके जाने का वक्त आया, सूनी ने मां से कहा, "मां हम लोग बंदर को भी ले चलें?"

"छिः" मां ने कहा, "इस गंदगी को कहां उठाए फिरेगी. बंदर किस काम का जानवर. बंदर जात को न डर न तमीज, फेंक इसे."

सूनी चुप हो गयी. वह मां से बहस नहीं करना चाहती थी. लेकिन कुछ महीने बाद जब वे दुबारा वहां गयीं तो सूनी को यह जानकर बेहद तकलीफ हुई कि उस बंदर को मदारी पकड़ कर ले गये. उसे लगा कि उस दिन अगर उसने बंदर को साथ ले लिया होता तो वह बच सकता था. सूनी ने एक कार्यक्रम में देखा था मदारी बंदरों को कितनी तकलीफें देते हैं.

बंदर तो महज एक प्रसंग था. असली कष्ट सूनी को मां की संवेदनहीनता से हुआ था. सूनी के मन में मां की एक पारंपरिक तस्वीर थी. मां के इस पारंपरिक रूप में उसके जेहन में एक त्यागमयी, करुणाशील और कोमल हृदय की स्त्री आती थी. लेकिन न जाने कितनी बार सूनी को अपनी मां ठीक इसके विपरीत लगी थी. जिस तरह वह घर की महरी को झिड़क देतीं, रिश्तेदारों को कड़वी चिट्ठियां लिखवातीं और छोटी-छोटी बातों में झूठ बोल देतीं, सूनी बेहद आहत हो जाती. जब वह विरोध करती मां अपना सबसे अचूक अस्त्र आंखों के रास्ते निकालतीं. और आंचल से पोंछ लेतीं. सूनी सब समझते हुए भी हारने और माफी मांगने में अपनी खैर समझती.

सही समय पर उसकी शादी न होने के पीछे भी मां की बड़ी अहम भूमिका थी. जब भी किसी ने सूनी में जरा ज्यादा दिलचस्पी ली और घर आना-जाना शुरू किया, मां ने अपनी शर्तें बताकर उसे इतना डरा दिया कि वह तभी भाग खड़ा हुआ. मां का कहना था कि वे सूनी के लिए ऐसा वर चाहती हैं जो उन्हीं के साथ आकर रहे, कभी ऊंची आवाज में न बोले, मां के लिए सेवा-भाव रखे और सूनी और मां के बीच में दीवार बनने की कोशिश न करे. कई बार तो यही समझ नहीं आता था कि मां वर सूनी के लिए खोज रही हैं या अपने लिए. सूनी को बड़ा बुरा लगता पर मां की खिलाफत का हश्र वह जानती थी, इसलिए चुप रहती. उसे लगता उसके सारे इरादों पर मां एक लाल बत्ती की तरह टिकी हुई हैं. इनके रहते उनसे मुक्त होना उसके बस की बात न थी.

अब अंततः जब सूनी वाकई सूनी रह गयी थी, उसने पाया एक-एक कर उसके सारे कुलीग शादी कर चुके थे. उसकी ज्यादातर दोस्तियां परिवारों से थीं. वहां प्रेम या विवाह की गुंजायश नहीं थी. सूनी विवाह को लेकर स्वयं सक्रिय होना हास्यास्पद मानती थी. पैंतीस की वह हो चुकी थी और अकेले जीने की काफी अभ्यस्त भी. ऐसे में कुछ बड़े ही दार्शनिक किस्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताब, कंघी और गंजे

तालस्तोय

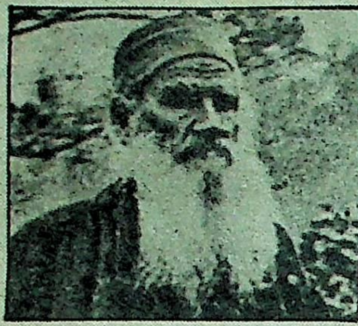

राह से गुजरते दो मुसाफिरों को एक किताब पड़ी दिखायी दी. किताब देखते ही दोनों इस बात पर तकरार करने लगे कि किताब कौन लेगा!

ऐन इसी वक्त एक और राहगीर वहां आ पहुंचा. उसने दोनों को इस हालत में देखकर कहा, "भाई, यह बताओ, तुम दोनों में पढ़ना कौन जानता है?"

"पढ़ना तो किसी को नहीं आता." दोनों ने एक साथ जवाब दिया.

"फिर तुम इस किताब के लिए तकरार क्यों कर रहे हो...! तुम्हारी लड़ाई तो ठीक उन गंजों जैसी है जो कंघी हथियाने के लिए पुरजोर कोशिशों में लगे थे... जबकि कंघी फिराने के लिए उनके सिर पर बाल एक भी नहीं था." □

के प्रम उसके व्यक्तित्व में विकसित होने लगे थे. जैसे किसी साल उसे लायब्रेरी के एक खास कोने से लगाव हो जाता और वह वहीं बैठकर पढ़ती किसी साल कोई छात्रा उसे बेहद जहीन लगती और उस पर वह अपनी सारी शक्ति और समय खर्च कर पढ़ाती. किसी साल उसे घर के पास की कोई खास सड़क अच्छी लगने लगती. और तो और अपनी कालोनी में सामने के मकान का एक बेरोजगार नौजवान, जिसका नाम भी उसे नहीं मालूम था, उसे अच्छा लगने लगा था. वह रोज सुबह उसे अपने कमरे को ताला लगाकर फाइल हाथ में लेकर निकलते देखती और रोज शाम वापस आते भी. उसकी सुबह और शाम की चाल में काफी अंतर होता. कई बार ऐसा हुआ कि जिस वक्त सूनी लौटी उसी वक्त वह नौजवान भी लौटा. सुनंदा को अच्छा लगा. लेकिन ऐसे लमहे बहुत थोड़े थे. अक्सर समय के विस्तार और व्यूह के आगे वह अपने को परास्त खड़ा देखा करती और सोचती इस निराकार शत्रु से वह कैसा सलूक करे.

गर्मियों की छुट्टियों में सुनदा बाहर घूमने जाना चाहती थी पर कोई साथी नहीं मिल रहा था. उसकी उम्र की सभी महिलाएं घर गृहस्थी वाली थीं. उससे छोटी-उम्र की कुलीग अपनी चुहल में उसे शरीक करने में संकोच करती थीं. मई में लायब्रेरी खुली रही. सुनंदा ग्यारह बजे तक लायब्रेरी पहुंच जाती. कई पढ़ाकू किस्म के छात्र लायब्रेरी आबाद किये रहते. कई छात्राएं सुनंदा को घेर लेतीं और वह उन्हीं के साथ कैंटीन हो आती. पर जून आते-आते लायब्रेरी में भी छुट्टियां हो गयीं. सुनंदा की यह व्यस्तता भी अब समाप्त हो गयी. एक रात अपनी छोटी-सी रसोई में खाने के नाम पर मैगी पकाकर सुनंदा कमरे में आयी तो उसने पाया उसके बिस्तर पर एक बड़ा-सा कत्थई रंग का काक्रोच आराम से बीचों-बीच पड़ा है. काक्रोच निश्चल था पर उसकी मूछें सचल थीं. एक क्षण सूनी को हंसी आयी. उसके बिस्तर का यही हश्र होना था. एक अकेला बिस्तर, एक अकेला तकिया, एक अकेला कंबल कितना मनहूस होता है. क्यों जी, क्या सुहागरात मनाने आये हो तुम? मन ही मन सूनी ने कहा. फिर बिस्तर देखते-देखते उसे रुलाई आ गयी. उसे लगा यह भद्दा कत्थई कीड़ा उसकी नियति है, उसका भविष्य, उसका वर्तमान. सुनंदा ने अपने हाथ की प्लेट की तरफ देखा. मैगी उसे केंचुओं से भरी प्लेट लगी. वह घबराकर प्लेट रसोई में पटक आयी. काक्रोच और केंचुए, रात में यही जीव रह गये उसका साथ देने के लिये? उस रात बिना कुछ खाये देर तक सूनी बिस्तर पर पड़े-पड़े सोचती रही. इंसान कब कैसे अपनी जिंदगी का गलत नक्शा खींच लेता है, एक मंजिल से निकलते हुए दूसरी मंजिल में पड़ जाता है. उसके साथ भी यही हुआ था.

जब वह इंटरमीडिएट में थी, वह नहीं जानती थी उसे क्या बनना है. तब पिता जिंदा थे. भाई युनिवर्सिटी में एम.कॉम. के फाइनल में था. मां तब खुश और हंसमुख थी. सूनी हंसती-खिलखिलाती इंटर पास कर गयी. उसकी प्रथम श्रेणी से प्रेरित हो पिता ने उसे शहर के सबसे अच्छे कॉलेज में बी.ए. में प्रवेश दिला दिया. यहां एक से एक बुलंद हौसले और इरादेवाली लड़कियां थीं. किसी से पीछे न रहने की होड़ में सुनंदा के हौसले भी बुलंद हुए. उन दिनों उसे अपनी प्राध्यापिकाओं का जीवन बहुत आकर्षक लगता था. रोज उनका नयी कीमती साड़ियां पहनकर क्लास में आना, अपनी वक्तृता से छात्रों को उद्वेलित करना और खाली समय में स्टाफरूम से उनके खिलखिलाने का स्वर, सब मिलाकर सुनंदा के लिए एक स्वप्न-जाल की रचना करते. उसे लगता जीवन में अगर वह कुछ बनना चाहती है तो बस यही. इसी एक लक्ष्य की ओर वह बढ़ती गयी थी.

एम.ए. पूरा होते न होते उसके घर का नक्शा एकदम बदल गया. पिता यकायक हार्टअटैक में चल बसे और मां को एक बदहवास तनाव में छोड़ गये. भाई उसी वर्ष इंग्लैंड के एक प्रतिष्ठान में नौकरी पाकर चला गया. सुनंदा जीवन की समस्याओं के बीचों-बीच अकेली खड़ी रह गयी. पिता के चले जाने के बाद मां की बच्चों से अपेक्षाएं बहुत बढ़ गयी थीं. वे अपना अधिकतम भार सूनी पर डालकर भी अपने को हमेशा निरीह और निराश्रित दिखातीं. भाई घर की समस्याओं से बड़े आश्चर्यजनक ढंग से तटस्थ होता गया था, वह कभी-कभार खत भेजता और कभी-कभार पच्चीस-पचास पाउंड. इस सारे संघर्ष में भी सूनी ने रिसर्च किसी तरह पूरी की. मां की भूमिका इस दौरान निगेटिव ही रही. उनके लिए अपना वर्तमान ही महत्वपूर्ण था, सूनी को वह अपनी नर्स या नौकरानी की तरह मानती थीं. कभी उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरकर नहीं पूछा, "तुझे क्या चाहिए?" उनके प्यार का स्रोत ही मानो शुष्क हो गया था.

अब सुनंदा को करवटों के बीच यह खयाल आ रहा था कि अवसर आने का भी एक मौसम होता है. उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण मौका रिसर्च के दौरान आया था. उस वर्ष एम.ए. में एक लड़का आया था गंभीर शुक्ला. उन दोनों की पहचान लायब्रेरी में ही फली-फूली और दोस्ती में बदल गयी. हालांकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंभीर सूनी से डेढ़ साल छोटा था, इसका कोई फर्क उनकी दोस्ती पर नहीं पड़ा था. काफी पास आ जाने के बाद एक दिन गंभीर उसके घर आया. पहली मुलाकात में ही मां ने उससे जैसा बर्ताव किया, वह मानो चौकन्ना हो गया. उसने बाद में सूनी से कहा, "तुम्हारी मां न्यूरॉटिक लगती हैं. इन्हें किसी क्लिनिक में क्यों नहीं डाल देतीं?" सुनंदा को बहुत बुरा लगा था यह सुनना. यों वह खुद मां के रवैये से क्षुब्ध रहती लेकिन गंभीर से ऐसा बेरहम कमेंट उसे बुरा लगा. उस एक दिन ने उनकी दोस्ती के शेष दिनों को जैसे पीछे खींच लिया. अंततः एक बात ऐसी हो गयी जिसने हमेशा के लिए उन दोनों को विमुख कर दिया.

एक सेमिनार के सिलसिले में सुनंदा और गंभीर दोनों को इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाना था. उन्होंने बड़ी मेहनत से अपने पेपर लिखे और साथ जाने की योजना बनायी. मां को जब सुनंदा ने बताया, पहले तो उन्होंने उसे हतोत्साहित किया, "क्या करेगी जाकर इतनी दूर." जब सुनंदा नहीं मानी तो वे खुद साथ चलने को आमादा हो गयीं, "तू अपनी मीटिंग करना, मैं संगम नहा लूंगी," उन्होंने कहा.

इस अकाट्य सुझाव की कोई काट नहीं ढूंढ पायी सुनंदा.

वह गंभीर से भी खुलकर नहीं बता पायी कि मां उसके साथ चलेंगी.

यात्रा की रात जब वह मां को लेकर स्टेशन पहुंची, गंभीर का चेहरा उन दोनों को देखकर बेहद तन गया. मां का आरक्षण नहीं था. वे गंभीर की बर्थ पर लेट गयीं. गंभीर को अगले डिब्बे में जाना पड़ा. उसके चेहरे पर झुंझलाहट और खिंचाव था.

वापसी में उन तीनों का एक साथ ही आरक्षण था. मां और गंभीर के बीच अनबोला तनाव रहा. रात बीतने के बाद सुबह गाड़ी के रुकते ही मां ने शोर मचा दिया, "मेरे चार सौ रुपये कहां गये?" बहुत ढूंढा गया, ऊपर-नीचे यात्रियों से पूछा गया पर मां की तसल्ली नहीं हुई. वे कहने लगीं, "जरूर रात में किसी ने निकाल लिये, मैं तो ब्लाउज में रखकर सोयी थी."

जब यह चख-चख चल रही थी गंभीर ने इसमें कोई हिस्सा नहीं लिया और जल्द ही एक औपचारिक-सा नमस्कार कर चला गया. मां ने स्कूटर पर घर लौटते वक्त मुनादी कर दी, "रुपये तेरे उसी छोकरे ने निकाले हैं, बाकी तो सब शरीफ लग रहे थे. उसी को पता था बुढ़िया के पास रकम होगी."

"तुम तो बस मां ऐसा बतंगड़ बनाती हो, वह तुम्हारे चार सौ रुपल्ली का क्या करेगा. वह कोई चोर है?"

"तुझे क्या पता. अकेली औरत को सब लूटना चाहते हैं, मैं ऐसे लड़कों को अच्छी तरह जानती हूं, कहीं तुझे फांस लिया तो मुझे तो एक पंखिया थमाकर बाहर कर देगा."

सुनंदा को मां के शक्कीपन पर बहुत गुस्सा आया. गंभीर से अलग दरार पड़ गयी. अब उसकी कंपनी में उसके चेहरे पर ऊब के लक्षण आने लगे. एक दिन उसने साफ कह दिया, "मुझे बुद्धिजीवी लड़कियां बड़ी नागवार लगती हैं, उनसे अगर साबुन की भी बात करो तो पहले उसकी हिस्ट्री बताने लगती हैं. जीवन इतना बोर नहीं है जितना तुम इंटैलेक्चुअल्स ने बताना है."

सुनंदा आहत हुई और पीछे हट गयी. मां ने चैन की सांस ली. बाद के वर्षों में वे रुपये खोनेवाली घटना को नमक-मिर्च लगाकर सुनाती रहीं. इसी तरह मां ने हर अविवाहित मित्र के साथ सलूक किया. उन्होंने अपनी सुरक्षा की फिक्र में सूनी के जीवन को अकेला कर डाला.

अब सुनंदा को मां याद नहीं आती थी. संबंध की ऊष्मा उनके व्यवहार ने सुखा डाली. जीवन में सभी संबंधों के प्रति वह सशंकित रहने लगी.

जाड़ों की धूप में कॉलेज के लॉन में बैठना बहुत प्रिय लगता था. सूनी अपनी कुलीग के संग बैठी थी. उसकी कुलीग बुनाई जैसे कामों में भी लगी थीं. तभी नीम के पेड़ से एक गिलहरी उतरी और ऊन में उलझकर पलट गयी. एक नन्हीं हलचल मची. सूनी ने बड़े प्यार से गिलहरी के पांव ऊन से आजाद किये कि वह चपल गति से उड़न-छू हो गयी. सूनी को लगा उसने एक सार्थक काम किया. जीव-जंतुओं के प्रति उसकी चेतना हमेशा सजग रही थी, अब वह और ज्यादा हो गयी.

न मालूम वह वही गिलहरी थी या और, अब वह बरामदे तक में चक्कर काटने लगी थी. एक दिन सूनी ने उसे अपने आंचल में पकड़ लिया और सहलाया. फिर तो यह क्रम बन गया. अब जब सूनी लॉन में बैठती गिलहरी आकर उसके पैरों को गुदगुदा देती. कोई साथी प्राध्यापिका उसे देखती ही "श" कह देती तो गिलहरी फौरन भाग खड़ी होती लेकिन सूनी को अकेले देखकर वह देर तक खेलती.

जब दो बड़े रचनाकार मिलते हैं...

वरिष्ठतम कथाकार जैनेंद्र जी से ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि-कथाकार 'अज्ञेय' द्वारा की गयी लंबी बातचीत जो अपने आप में एक धरोहर है.

इस धरोहर के साथ ही जैनेंद्र जी पर केंद्रित ऐसी सामग्री जो 'सारिका' ही उपलब्ध करा सकती है...

जैनेंद्र कुमार विशेषांक

सारिका

जनवरी, 1989

अपनी प्रति अभी से बुक करा लें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे ज्यादा खुशनसीब और कौन होगा!

जिंदा रहने की स्वाभाविक लालसा मेरे भीतर भी होनी चाहिए. मैं इस पर आवरण नहीं रखना चाहता. पर मेरा बना रहना एक बात पर निर्भर करता है... मैं कारा या परतंत्रता में नहीं रहना चाहता. मेरा नाम भारतीय इनकलाब की निशानी बन चुका है क्रांतिकारी दल के त्याग और आदर्श मुझे एक बड़ा आकार दे चुके हैं. इतना बड़ा आकार कि जीवित रहते उससे बड़ा आकार बना पाना नामुमकिन है.

इस समय लोग मेरी कमजोरियों से अधिक वाकिफ नहीं हैं. फांसी से बच जाने पर वे निश्चित ही सामने आ जायेंगी... और इनकलाब की निशानी अपनी चमक खो बैठेगी, हो सकता है कि खत्म हो जाए! वीरता के साथ खुशी-खुशी फांसी के तख्ते पर चढ़ते ही मुल्क की माताएं यह आकांक्षा पालने लगेंगी कि काश उनका बच्चा भी भगत सिंह बने! ऐसे में मुल्क के लिए बलिवान हो जाने वालों की तादाद इतनी हो जाएगी कि साम्राज्यवाद की समूची ताकतें भी इनकलाब को रोक न सकेंगी.

यह भी एक विचार आता है कि मुल्क और इंसानियत की खातिर जो कुछ मैं करना चाहता था उसका छोटा-सा हिस्सा भी मैं नहीं कर सका. आजादी से रह पाता तो संभवतय यह सब और अपनी इच्छाएं पूरी कर सका होता. सिवा इसके और कोई लालसा मेरे मन में फांसी से बचने को नहीं हुई. मुझसे ज्यादा खुशनसीब कौन होगा. बेचैनी से आखिरी इम्तेहान का इंतजार है... मेरा मन है कि यह और करीब आ जाये! □

(फांसी से एक दिन पहले (22 मार्च, 1931) सेंट्रल जेल के बंदी क्रांतिकारियों के संदेश का उत्तर देते हुए भगत सिंह)

धीरे-धीरे सुनंदा उसे घर लाने लगी. बड़े मजे से उसके पर्स के सहारे लटककर वह रिक्शे में आ जाती. सुनंदा के घर में अखरोट रहने लगे, एक कटोरी में चुग्गा, दूसरी में पानी. सूनी ने उसे नाम भी दे डाला– 'कट्टो'. कट्टो अपनी झबरी दुम उठाकर जैसे पिछवाड़े से आदाब फरमाती.

जीवन का एक स्पंदन था जो घर में झंकृत होने लगा था. दिलचस्पी की एक हल्की शुरुआत. पड़ोस के फ्लैट के बच्चे कभी-कभी झांकने आते, "सूनी दीदी, अपनी कट्टो दिखा दो." एक कटोरी में मलायम-सी गद्दी रखकर सूनी ने कट्टो का बिस्तर बना दिया था. अब कट्टो रात में बाहर नहीं भागती, अपनी टोकरी में सो जाती, सुबह जैसे ही सूनी नहाकर कॉलेज के लिए तैयार होती, वह पर्स पकड़कर लटक जाती. बरसात में पेड़ों के नीचे काफी कुकुरमुत्ते उग आये थे. कुछ बड़े थे तो कुछ छोटे-छोटे. कट्टो कुकुरमत्तों की तलाश में भागती रहती. लगता तो ऐसा था उसे सूनी का टाइमटेबिल याद है. छुट्टी की घंटी बजते ही वह स्टाफरूम में दौड़ी आती और सूनी के पर्स के सहारे लटक जाती. सहेलियों के मजाक करने पर सूनी ने स्वयं कट्टो को नया नाम दे दिया था– 'जीवनसाथी'. शादी और परिवार से अघाई अधेड़ लेक्चरर कहतीं, "यह तुमने अच्छा जीवनसाथी ढूंढ निकाला, न कोई झंझट न कोई बंधन."

सूनी कट्टो ही क्यों जीव-मात्र में मानो विश्व का कोमल रूप देखती थी. पहले के वर्षों की उग्रता अब तक सौम्यता में परिमार्जित हो गयी थी. वह अपना हृदय करुणा से भरा महसूस करती. माली जिस तरह एक-एक पौधे को सींचता, पोसता, वह ध्यान से देखती और सोचती, जरूरी नहीं कि मनुष्य सिर्फ अपने बच्चे को पालकर बड़ा करे. पेड़-पौधे, फूल-फल किसी को भी पालापोसा जा सकता है. उसके बड़े होने पर कम खुशी नहीं होती.

रविवार की दोपहर सूनी ने एक अच्छी कन्नड़ फिल्म देखी, उसके बाद उसी फिल्म की मूलकथा 'घटश्राद्ध' पढ़ते-पढ़ते वह अलसा गयी. कट्टो भी कहीं गमलों के बीच में दुबकी पड़ी थी. जब सूनी की आंख खुली, शाम पूरी तरह झुक गयी थी. कमरे में हल्का अंधेरा था. बिजली जलायी, चाय बनायी और थोड़ी-सी चाय एक तश्तरी में डाल कट्टो के लिए ठंडी करने रख दी. तभी सुनंदा की नजर अपने बिस्तर पर गयी.

"आह." उसकी चीख निकल गयी. बिस्तर पर कट्टो बेजान पड़ी थी. सूनी ने उसे उलटा-पुलटा. उसकी झबरी दुम बिल्कुल लुंज हो चुकी थी, आंखें छोटी रतियों की तरह निस्पंद थीं. सूनी ने साड़ी का पल्लू देखा, उस पर हमेशा की तरह कट्टो के रोयें चिपके थे. उसकी समझ में काफी कुछ आ गया. उसे सोता देख कट्टो जरूर उसके पास सरक आयी होगी. कुछ देर खेलकर वह वहीं सटकर सोयी होगी. सूनी की करवट में उसकी कोमल गर्दन दब गयी होगी. नन्हीं-सी जान निकलते देर क्या लगी होगी. सुनंदा फूट-फूटकर रोयी. उसे लगा उससे शिशु-हत्या हो गयी है. कमरा मनहूस हो उठा. बहुत देर तक निश्चल बैठी रही. नीचे के फ्लैट से काम करने के बाद उसकी नौकरानी शीला कमरे में आयी तो उसने पाया सूनी एक सफेद रूमाल में कट्टो को लपेट रही है.

"मर गयी आपकी कट्टो!" शीला ने कहा. एक आघात की तरह लगा शब्द 'मरना.'

"मैंने ऐसा जानबूझकर नहीं किया. यह अपने-आप दब गयी, मुझे सच कोई होश नहीं था." सूनी बार-बार अपना आंचल झाड़ रही थी.

"नहीं दीदी आप क्यों मारतीं इसे. चलिये इसे नीचे मिट्टी में दबा दें."

वे दोनों उस सफेद रूमाल को थामकर नीचे आयीं. सामने तिकोने पार्क में दो पेड़ थे. अंधेरा हो चुका था. शीला ने एक छोटा-सा गड्ढा बनाया, पतला, एक फुट के करीब और उथला. सूनी ने झुककर उसे कुछ गहरा किया, आहिस्ते से उसने रूमाल समेत गिलहरी को गड्ढे में लिटा दिया. एक क्षण जैसे वह प्रार्थना में झुकी रही. शीला ने धीरे से गड्ढा मिट्टी से ढक दिया.

पता नहीं, यह सुनंदा की कल्पना थी या सच, दूर कहीं शोक धुन-सी बजती सुनाई दे रही थी. ऊपर जाते हुए उसे लग रहा था वह वाकई एक शवयात्रा से लौट रही है. आज वह सचमुच सूनी थी. □

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरैवेति-चरैवेति

इंदू झा, लखनऊ

बचपन के सपने ना जाने क्या-क्या थे? नवीं कक्षा में थी तभी स्व. महादेवी वर्मा की 'यामा' की पंक्तियों 'मैं नीर भरी दुख की बदली...' ने साहित्य प्रेम को अंकुरित किया. लिखने की इच्छा प्रबल हुई, लिखने लगी. अकस्मात् 15 वर्ष की आयु में ही सन् 1977 में विवाह बंधन में बांध दी गयी. भारतीय संस्कार, मैथिल परिवेश ने मुझे शिक्षा के क्षेत्र से तोड़कर बहू, पत्नी और फिर मां का क्षेत्र प्रदान किया. फलस्वरूप छोटी-सी उम्र में खट्ठे-मीठे अनुभव, सांसारिक विसंगतियां और अपनी रुचियों का हनन होते देखना, कुंठा को जन्म देने लगी. मैं साहित्य प्रेम की दीवानगी में दर्द भरी कविताओं का सृजन करने लगी. तब से आज तक लिखती आ रही हूं, कहानियां-कवितायें. कहीं नारी का, कहीं पुरुष का, कहीं वृद्धों का तो कहीं मासूमों का शोषण और हृदयहीनता की बढ़ती रफ्तार, दौड़ती हुई जिंदगी, अपने में ही कैद इंसानियत जो दूसरों का हमदर्द नहीं हो सकती. कितने अनुभव बिखरे पड़े हैं इर्द-गिर्द. गृहस्थी की उलझनें, समयाभाव, शिक्षोपार्जन की कमी, सभी बाधक बनते हैं परंतु "संसार आशा से ही अनुप्राणित है." पति से यह प्रोत्साहन पाकर मैं पुनः रचनात्मक पथ पर चल पड़ती हूं. कानों में जैसे उद्घोषित होने लगता है चरैवेति-चरैवेति.

इंदू झा

अनुपमा भोंसले

विजय कुमार केशरी

निर्मला राजकिशोर

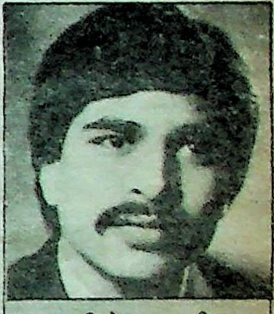
विनेश भारती

विसंगतियां प्रेरित करती हैं

अनुपमा भोंसले, तिल्दा, रायपुर

मेरी जिंदगी में कुछ क्षण ऐसे आयें जब मैं अपने मानसिक अंतर्द्वंद्व को लिखकर ही कम कर पायी. बाद में पाया कि आसपास के वातावरण से कुंठित मन सिर्फ साहित्य से ही जुड़कर अपने अस्तित्व की पहचान कर पाता है. इसके बाद मैंने जो कुछ रचा वह मात्र आत्मतुष्टि का साधन मात्र न होकर प्रेरणादायक भी बना. जिंदगी की इस छोटी-सी अवधि में मैंने अनेक विसंगतियों को देखा और झेला है. लेकिन कहीं कुछ ऐसा है जिसे या तो मैं समझ नहीं पा रही या अनुभवों की कमी मुझे पांव नहीं धरने दे रही. व्यथित मन इन विसंगतियों के प्रति प्रत्यक्षतः आक्रोश प्रकट करने में असमर्थ है तभी बेचारी निरीह कलम को मेरे तनाव तथा व्यग्रता का शिकार होना पड़ता है.

अनुभव के बिना संभव नहीं

विजय कुमार केशरी, पूर्णिया

अचानक आसपास घटी घटनायें मानस-पटल पर छा जाती हैं, हृदय तार को झंकृत कर जाती हैं, चाहने लगता हूं कि क्यों न इस घटना के परिप्रेक्ष्य में एक कहानी का ताना-बाना बुना जाये. कहानी-रूप देने के लिये जिस काल्पनिकता की, चरित्रों को उभारने की आवश्यकता होती है जिससे कथा रोचक बन सके. और उसमें सरलता और सहजता भी बनी रहे. इन तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए मस्तिष्क में कहानी की रूपरेखा खींच डालता हूं. परंतु लिखते वक्त वे सभी कल्पनायें उसी रूप में नहीं उतर पाती हैं लगता है या तो भाषा के दृष्टिकोण से काफी सस्ती रचनाप्रक्रिया ने जन्म ले लिया है या मेरा स्वयं परिभाषित कथ्य कहीं खो सा गया है. बस वह कहानी आत्मसंतुष्टि के अभाव में अपने पास तक ही सीमित रह जाती है. आशा है कालांतर में मेरी परिपक्व मानसिकता, कहानी प्रस्तुतिकरण का सही ढंग जानकर तमाम सामाजिक समस्याओं को उभारने में सहयोग करेगी.

अन्याय के विरुद्ध

निर्मला राजकिशोर, सिकंदराबाद

कुछ लड़ाइयां हाथों से कुछेक जुबान से अन्य कई बुद्धि से लड़ी जाती हैं. सभी का मकसद होता है किसी अन्याय के विरुद्ध अपनी जगह बनाना. अपने अंदर उबलते हुए विद्रोह को व्यक्त कर पाना. शायद मैं भी इसीलिए लेखनी उठाना चाहती हूं. जो कुछ अनचाहा घटित हो रहा है अखबारों की सुर्खियों में या न्यायालयों की दहलीज पर, जला दी जाती हैं एक और बेबस औरत ब्याह की कीमत न जुटा पाने पर.

मैं सच लिखना चाहती हूं वह सच जो खरीदा न जा सके. जिसका हर शब्द किसी पीड़ित व्यक्ति को एक क्षण भी राहत दिला सके. हर तरफ से स्वार्थ की एक गंध जो तेजाब की माफिक इंसान के ईमान, धर्म, इंसानियत की चिंदी-चिंदी करके गांधी के मुंह पर उछाल रही है. मैं उस गंध को अपनी सांस में रोकना चाहती हूं. उसी तेजाब से लोलुपता सत्ता, भ्रष्टाचार, अन्याय को काट देना चाहती हूं. पर ये सब नहीं लिख पाती. क्योंकि मैं कायर हूं. मैं इस समाज से डरकर इसके मुंह को नोचने में डरती हूं अंदर के दावानल को थपकियां देकर सुला देती हूं.

लेखन विवशता है

विनेश भारती, बंबई

लिखना आदत या शौक नहीं. पर कभी-कभी विवशता-सी बन जाती. ये क्या है और क्या होना चाहिए? इन्हीं जटिलताओं के बीच भटकता मेरा मैं जैसे कागजों पर उतर पड़ना चाहता है.

ये जिंदगी किसी रंगमंच से कम नहीं. नाटकों के पात्रों की तरह की जिंदगी में आदमी के अनेक संग-रिश्ते बनते रहते हैं और अपनी भूमिका का अभिनय कर समय के साथ ही खत्म होते जाते हैं. लेकिन कुछ रिश्ते जब खत्म होते हैं तो खलनायक अंदाज से. और छोड़ जाते हैं एक घुटन-भरा एहसास. इन्हीं बनते-बिगड़ते रिश्तों ने अपना पात्र निभाते-निभाते न जाने कितनी कहानियां जेहन में भर दी हैं. लेकिन जब भी अपनी बात कागजों पर कहने की कोशिश करता हूं तो लगता है कि जो कुछ भी लिख पाया हूं शायद मेरा आक्रोश है. किसी रिश्ते के प्रति और एक रिश्ते की लाश पाता हूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1933, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
प्रमुख कृतियां : 'दूसरे चेहरे', 'केवल पिता', 'आहत वापसी' (कहानी संग्रह), 'लौटते हुए', 'कई अंधेरों के पार' (उपन्यास)
संपर्क : एफ/ई-7 नया कविनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

□ से.रा. यात्री

रूबजी में

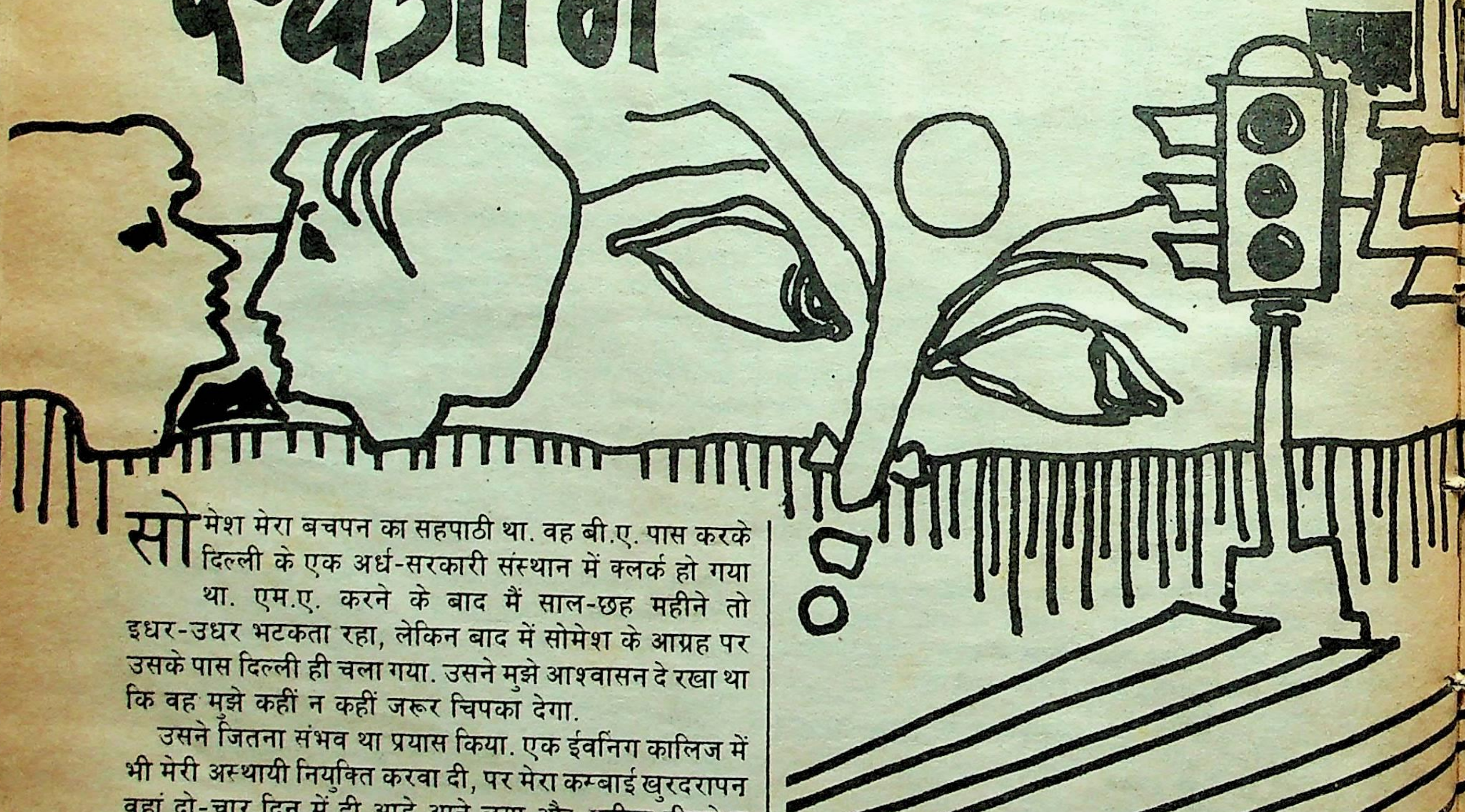

सोमेश मेरा बचपन का सहपाठी था. वह बी.ए. पास करके दिल्ली के एक अर्ध-सरकारी संस्थान में क्लर्क हो गया था. एम.ए. करने के बाद मैं साल-छह महीने तो इधर-उधर भटकता रहा, लेकिन बाद में सोमेश के आग्रह पर उसके पास दिल्ली ही चला गया. उसने मुझे आश्वासन दे रखा था कि वह मुझे कहीं न कहीं जरूर चिपका देगा.

उसने जितना संभव था प्रयास किया. एक ईवनिंग कालिज में भी मेरी अस्थायी नियुक्ति करवा दी, पर मेरा कम्बाई खुरदरापन वहां दो-चार दिन में ही आड़े आने लगा और महीना बीतते न बीतते प्रिंसिपल ने चालीस रुपये मेरे हाथ पर रखकर दोनों हाथ जोड़ दिये.

मेरी इस असफलता को उसने बहुत सामान्य भाव से लिया और इंद्रपुरी में ही, जहां वह रहता था रेडियो पर काम करनेवाले एक सज्जन गुप्ताजी के यहां ले गया. यह सज्जन ब्रजभाषा प्रोग्राम देखते थे. उन्हें सोमेश ने भैयाजी नाम से संबोधित किया और मेरा परिचय देकर कुछ काम देने की बात कही. वह बहुत ही भले आदमी थे. पति-पत्नी दोनों में ही ब्रज की मस्ती कूट-कूटकर भरी हुई थी. सोमेश का अनुरोध उन्होंने तत्काल स्वीकार कर लिया और अगले दिन आकाशवाणी पहुंचने के लिए कह दिया.

अगली सुबह मैं सोमेश के साथ उसके दफ्तर चला गया. मुझे अपनी विभागीय लायब्रेरी में बिठाकर वह जाते-जाते बोला, ''तुम यहां बैठ कर कुछ पढ़ो, मैं लंच से पहले ही आ जाऊंगा और तुम्हारे साथ भैयाजी के पास चलूंगा.''

सोमेश सवा बारह बजे आकर बोला, ''मैंने सैक्शन अधिकारी से दो घंटे की छुट्टी ले ली है. तुम्हें भैयाजी के पास छोड़कर मैं आराम से लौट आऊंगा.''

दफ्तर से थोड़ी दूर चलकर हमें बस मिल गयी. बस पार्लियामेंट स्ट्रीट की दिशा में ही जा रही थी इसलिए हमें बीच में कहीं उतरना भी नहीं पड़ा.

मैं सोमेश के साथ, सहमते हुए उस लंबी-चौड़ी तीन-तल्ला इमारत में घुसा. उसके पीछे-पीछे गोल दायरे में फैले शांत किंतु रौबीले बरांडों में कमरे के बाहर स्टैंड पर नामीय पट पढ़ते हुए मैं आगे बढ़ता रहा. वहां कमरों के बाहर जितनी भी तख्तियां लगी थीं मैं उन सभी नामों से परिचित था पर मैंने अपने रूबरू किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कभी नहीं देखा था.

पता नहीं मैं और सोमेश कब 'ब्रज माधुरी कक्ष' में पहुंच गये. पर वहां गुप्ताजी उर्फ 'भैयाजी' का कहीं पता नहीं था. कोई दूसरा आदमी भी वहां दिखाई नहीं पड़ा जिससे भैयाजी का अता-पता पूछा जा सकता. सोमेश बोला, ''चलो कैंटीन में चलते हैं. तुम्हें भी तो भूख लग आयी होगी. पेट में कुछ डाल लो, नहीं तो तुम्हारी आवाज कमजोर आयेगी. हो सकता है भैयाजी भी वहीं नजर आ जायें.''

दीवारों पर जगह-जगह गोल घड़ियों में सरकती सुइयों को देखते हुए मैं भीतर से आतंक अनुभव कर रहा था. शायद उस भवन में समय को महत्वपूर्ण बनाकर इतनी बार रेखांकित किया गया था कि वहां पहुंचनेवाला आदमी समय की मूल्यवत्ता को

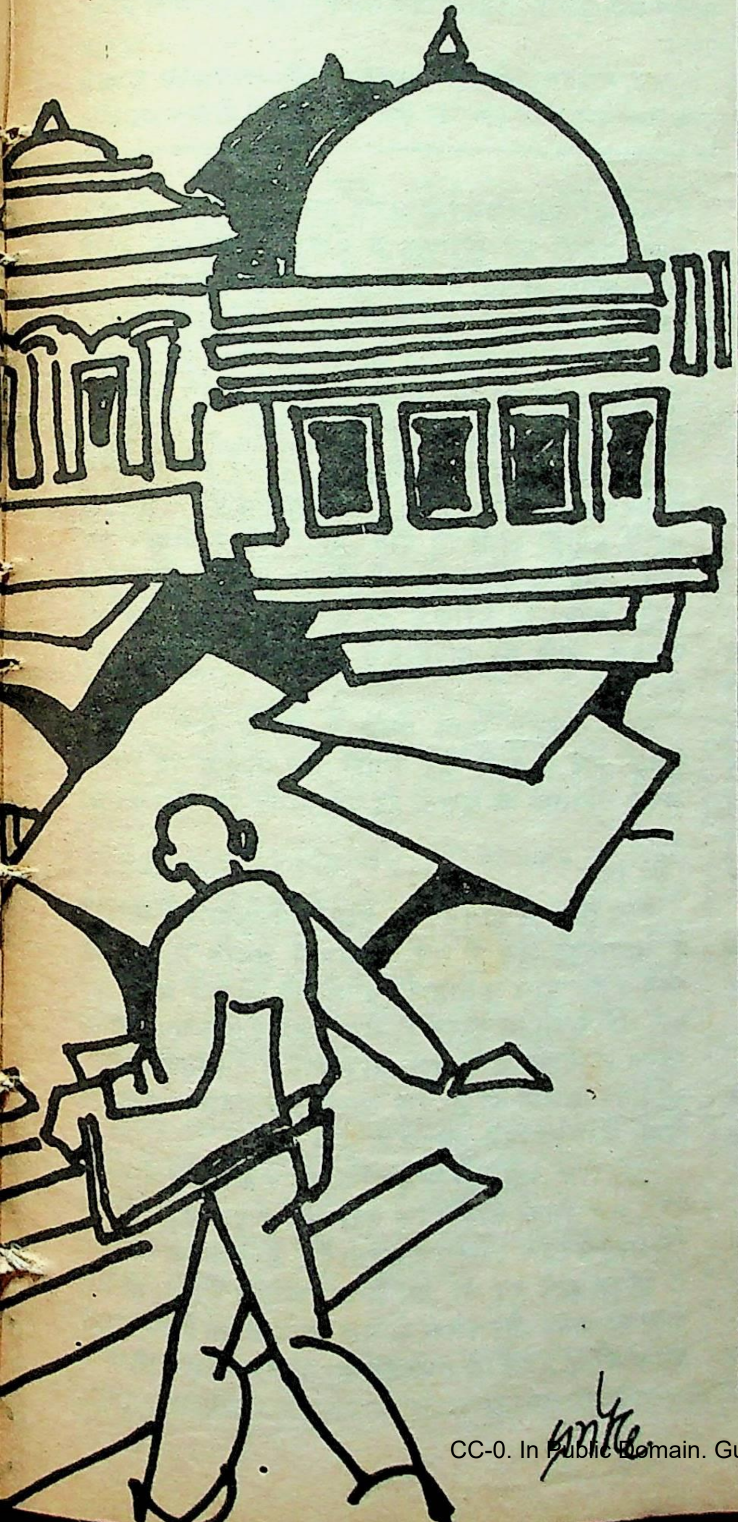

भीतर से स्वीकार करना सीख जाये. वहां क्षण-क्षण का हिसाब था और अपना क्षण देनेवालों को पूरा मूल्य चुकाया जाता था.

मैं सोमेश के साथ, लंबा गलियारा, जो काफी वक्राकार था, पार करते हुए भवन से बाहर आ गया और कैंटीन की तरफ चल दिया. कैंटीन में बेशुमार भीड़ थी और वहां जगह की भारी कमी थी. तरह-तरह के लिबास और हुलियों के लोग इधर-उधर आ-जा रहे थे और कान पड़ी आवाज सुनायी नहीं देती थी. उन प्राणियों के चेहरों पर कैसी भी उत्सुकता-आवेश अथवा घबराहट नजर नहीं आती थी. इधर मैं घबराते हुए अधमरा हो रहा था.

ज्यों-त्यों करके सोमेश ने मुझे एक खाली कुर्सी पर स्थापित किया और काउंटर से कूपन लेने चला गया. वह विचित्र कौशल से दो प्याले चाय और दो समोसे लेकर आया. पर अभी तक और कुर्सी कहीं खाली नहीं हो पायी थी. उसने मेज के कोने पर चाय और समोसे रखते हुए कहा, ''अब तो यहीं खा-पी लें. तुम्हारा प्रोग्राम जल्दी ही हो गया तो मेरे साथ ही वापस चले चलना. दफ्तर में तो मेरा लंच बाक्स रखा ही है. बाकी वहीं चलकर खा लेंगे.''

मैं कुछ बोलता इससे पहले ही स्टुडियो की बत्ती बुझ गयी. भैयाजी मुझ से फुसफुसाकर बोले, ''मेरो इसारो पाते ई बोलन लागियो—डाक-गाड़ी की अस्पीड में मत बोलियो-नेंक आस्ते आस्ते हां.''

चाय पीकर जब मैं और सोमेश फिर उसी भवन में दाखिल हुए तो सवा बज रहा था. सोमेश बोला, ''भैयाजी शायद स्टुडियो में हैं. चलो पहले उनके कमरे में देखते हैं.''

भैयाजी के कमरे में पहुंचे तो वह अब तक भी नहीं लौटे थे. सोमेश मुझे वहीं छोड़कर कहीं पूछताछ करने चला गया. मैंने अपने भीतर एक विचित्र खालीपन अनुभव किया. मैं ठीक से जानता भी नहीं था कि वहां उस भवन— कमरे या कि स्टुडियो में मेरी क्या उपयोगिता हो सकती थी. लोग वहां किसी न किसी तैयारी के साथ ही आते होंगे पर मेरे पास भरपूर हौल दिल के अलावा कोई ऐसी उल्लेखनीय पूंजी नहीं थी कि वहां आत्मविश्वास के साथ बैठा रह सकूं.

दसेक मिनट बाद सोमेश हाथ में एक पुर्जा लिये कमरे में दाखिल हुआ और व्यस्तता से बोला, ''भैयाजी तीन नंबर के स्टुडियो में हैं. चलो तुम्हें उनके पास छोड़ देता हूं.'' यह कहने के बाद उसने दीवार घड़ी पर नजर डालकर कहा, ''पौने दो बज रहे हैं. मुझे दफ्तर भी जाना है.''

स्टुडियो में जाने के लिए एक परिचय-पत्र भी बनवाना पड़ा तब कहीं जाकर हमें स्टुडियो में घुसने की इजाजत मिली. जब मैं उधर जा रहा था तो मैंने स्टुडियो के दरवाजों के ऊपर दीवार पर महात्मा गांधी के सूत्र वाक्य न केवल उभरे हुए बल्कि प्रकाश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगमगाते देखे. मुझे यह देखकर बड़ी सांत्वना मिली कि अपने महात्मा गांधी को प्रचार प्रसार के केंद्र में कितनी अच्छी तरह पहचाना जा रहा है.

द्वार पर मुस्तैद खड़े गार्डों को सोमेश ने परिचय पत्र दिखाया और मुझे लेकर भीतर दाखिल हो गया. पूरे गोल दायरे में गलियारे के दोनों तरफ स्टुडियो थे और उन पर नंबर पड़े थे. कहीं-कहीं बार खुले थे तो बाद्यों के स्वर उभरकर कानों में पड़ रहे थे. वहां की सफाई और भव्यता दर्शनीय थी.

भारी द्वार धकेलकर सोमेश तीन नंबर के स्टुडियो में घुसा. मैं भी लपककर अंदर हो गया. वहां खासी गहमा-गहमी थी. कई लड़के-लड़कियां ब्रजभाषा में बोलकर रिहर्सल कर रहे थे. लेकिन उनके लिबास और शक्ल-सूरत में कतई ऐसा नहीं लगता था कि उन्होंने उस भाषा का स्टुडियो से बाहर क़भी भी इस्तेमाल किया होगा. ले-देकर महज एक आदमी अपनी सूरत-शक्ल और पहनावे से देहाती लगता था. उसके पीठ तक फैले तेल में सराबोर बाल हठात ध्यान आकर्षित करते थे. उसकी धोती सफेद थी जिसे उसने चुन्नटदार ढंग से बांध रखा था. कुरता घुटनों तक फैला और जोगिया रंग का था. हमारे गांवों में उन दिनों सारंगी बजाकर भीख मांगनेवाले जोगी वैसा ही लिबास धारण करते थे. आधुनिक वेशभूषा में सजे उन लड़के-लड़कियों को देखकर मैं हैरान होता रहा और यह समझने की कोशिश करता रहा कि वह वहां ब्रजभाषा में क्या करने वाले हैं.

इसी क्षण भैया जी स्टुडियो का भारी-भरकम दरवाजा धकेलकर भीतर आये और मेरी और सोमेशजी की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले, "तो आप लोग आ गये?"

उन्होंने हमें उत्तर देने का अवसर नहीं दिया. सब की ओर व्यस्तता से देखकर बोले, "तो चलो आप लोग अपनी-अपनी स्क्रिप्ट संभालो और काम शुरू करो." इसके बाद उन्होंने अपनी कलाई घड़ी देखकर कहा, "तीन बजे हमें स्टुडियो खाली करना पड़ेगा."

नाटक में भाग लेनेवालों ने जल्दी-जल्दी अपने हाथ में थामे पन्ने उलटने-पलटने शुरू कर दिये. एक क्षण में ही सारा माहौल

सागर-कन्याएं

खलील जिब्रान

सूर्योदय (पूर्व) के समीपस्थ द्वीपों को सागर की गहनतम गहराई आवृत्त किए हैं. लंबे सुनहले बालों वाली सागर-कन्याओं से घिरा एक युवक का मृत शरीर मोतियों पर पड़ा था. संगीतमय माधुर्य के साथ आपस में वार्तालाप करती हुई वे कन्याएं अपनी नीलाभ पैनी दृष्टि से टकटकी लगाकर उस लाश को देख रही थीं. गहराइयों द्वारा सुने गये तथा लहरों द्वारा सागर-तट पर संप्रेषित यह वार्तालाप मंद वायु द्वारा मुझ तक पहुंचा.

उन सागर-कन्याओं में से एक ने कहा, "यह वही मानव है जिसका प्रवेश उस दिन हमारे सागर-संसार में हुआ था और उसके प्रवेश काल में हमारी जलधि ज्वारोद्वेलित थी."

दूसरी बोली, "जलधि ज्वारोद्वेलित नहीं थी. दृढ़ता-पूर्वक अपने को सुर-संतान कहने वाला मानव लौह-युद्ध कर रहा था और इस लौह-युद्ध के फलस्वरूप उसका लहू इस हद तक प्रवाहित हुआ कि सागर के जल का रंग लोहित हो गया. यह व्यक्ति मानव-युद्ध का शिकार है."

पूर्ण साहस के साथ तीसरी ने कहा, "युद्ध के विषय में मुझे कुछ नहीं मालूम, परंतु मुझे इतना मालूम है कि भूमि को विजित करने के बाद मानव की प्रवृत्ति आक्रामक हो गयी और अब वह सागर-विजय हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ है. अपने विलक्षण विषय-चिंतन के कारण उसका सागर पर पहुंचना हुआ. उसकी इस लोलुपता से हमारे प्रचंड समुद्र-देवता वरुण कुपित हो गए. वरुण के क्रोध को शांत करने के लिए (अर्थात् उन्हें प्रसन्न करने के लिए) मनुष्यों ने उन्हें उपहारों एवं वसिरानों का अहर्य देना प्रारंभ कर दिया, और हमारे बीच आज जो यह मृत-शरीर है, हमारे महान तथा उग्र वरुण देवता को मानव द्वारा समर्पित सद्यः उपहार है."

चौथी ने दृढ़तापूर्वक स्वीकारा, "हमारे वरुण देवता कितने महान हैं, परंतु उनका हृदय कितना कठोर है. मगर मैं सागर-सम्राज्ञी होती तो ऐसे उपहार को अस्वीकार कर देती... अब आओ, हम लोगों को इस भुगतान (बंदी का उद्धार मूल्य) का परीक्षण करना चाहिए. हम लोग भी संभवतः अपने को मानव-वंश के सदृश प्रकाशित कर सकती हैं."

सागर-कन्याएं मृतक युवक के निकट गयीं. उन्होंने उसकी जेबें तलाशीं और ऊपरी जेब में एक पत्र मिला. अपनी सहेलियों को सुनाती हुई एक सागर-कन्या ने पत्र को पढ़ा :

"मेरे प्रिय,

मध्य रात्रि का आगमन पुनः हुआ है. मेरे प्रवाहित आंसुओं के अतिरिक्त मुझ में धैर्य का सर्वथा अभाव है. युद्ध से रक्त-रंजत भूमि से तुम्हारी वापसी की जो मुझे आशा है, यही मेरी खुशी का कारण है. अपनी जुदाई के समय तुम्हारे व्यक्त शब्दोद्वार को मैं भूल नहीं सकता हूं—'प्रत्येक व्यक्ति को अपने आंसुओं का ही एक आलंबन है जिसका प्रत्यर्पण किसी न किसी दिन अवश्य होता है.

"मेरे प्रिय, मुझे नहीं मालूम कि मुझे क्या कहना चाहिए, परंतु मुझे इसका ज्ञान है कि मेरी आत्मा इस चर्म-चीरक (शरीर) में स्वतः निस्सरण करती है... मेरी आत्मा विघटन से पीड़ित होते हुए भी, प्रेम से आश्वासित हुई है जो प्रेम पीड़ा को आनंद और क्लेश को सुख प्रदान करता है और यही प्रेम हमारे दो हृदयों को एकीभूत करता है. जब हम लोगों नें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मप्रधान हो उठा. मैंने लड़के-लड़कियों को ब्रजभाषा में संवाद बोलते सुना तो मैं चकित रह गया.

भैयाजी मुझे और सोमेश को एक तरफ ले गये और बोले, "मैं इनके लैया कट्रेक्ट फारम मंगावत हूं अबई."

मैं उनका मुंह देखता रह गया. जरा देर पहले वह अच्छी-खासी शहराती भाषा बोल रहे थे पर अपने काम में लगते ही वह भी बाकी सब की तरह ब्रजभाषा बोलने लगे.

इसके बाद वह मेरी ओर मुखातिब हुए, "तो लल्ला, मेई सुनो तन्नक. या नाटिका को एक आहिस नाय आयो. सो मनसुका को डायलोग तुम कू बोलनो परैगो. कुल्ल जमा आधा मिट को कसालो है. तुम कू पच्चीस रुपैया को चैक मिल जायगो."

मनसुखा का डायलॉग बोलने की बात सुनकर मैं एकदम उखड़ गया. न तो मैंने ब्रजभाषा पहले कभी बोली थी और न कोई संवाद बोलकर देखा था.

गुप्ता जी उर्फ भैयाजी का प्रस्ताव सुनकर मैंने बेचैनी महसूस करते हुए इधर-उधर देखा. मुझे लगा कि मुझे पच्चीस रुपये मिलने की बात सुनकर सोमेश बहुत प्रसन्न और संतुष्ट है. वह मेरे कंधे पर हाथ रख कर सरपरस्ती के अंदाज में बोला, "लो भई हो गया बिसमिल्ला, अब तुम मनसुखा का संवाद बोलो मैं तो चलूं. लंच का टाइम तो निकल गया यहीं."

दरवाजे से बाहर जाते-जाते सोमेश मेरी ओर मुड़ा और बोला, "यहां का काम खत्म करके जी में आये तो घर चले जाना. नहीं तो मेरी तरफ चले आना."

मैं अभी तक मनसुखा का संवाद बोलने की बात तय नहीं कर पाया था कि सोमेश ने गुप्ताजी से कहा, "भैयाजी, आप इसका चैक अटेस्ट कर देना जिससे कि यह इसे आज ही कैश करा ले."

गुप्ताजी का चश्मा नाक के बांस पर नीचे लटक आया था. वह नीचे ही नीचे देखते हुए बोले, "फिकन्नाय लल्ला. वाय मैं कराय दंगो."

लगता था भैयाजी दिल्ली की आम बोलचाल की भाषा स्टुडियो में आकर पूरी तरह भूल गये थे. वह पूरी तरह ब्रज की बोली में रम गये थे.

जाते-जाते सोमेश ने गुप्ता जी से पूछा, "तो मैं चलूं. भैयाजी."

"लल्ला, तुम निसा खातर है के जावो," फिर मेरी और संकेत करके बोले, "जे आवत रगे."

सोमेश चला गया तो भैयाजी ने इधर-उधर फैले कागजों में से एक कागज ढूंढकर निकाला और मेरी ओर बढ़ाकर बोले, "लेओ भैया पढ़ि लेवो तिहारो डॉलोग दो-ढाई लाइनन को है— नेक सुद्ध ते बोलियों."

मैंने कागज ले लिया और टाइप होने के बावजूद लाल पैंसिल से लिखे उस संवाद को पढ़ने की चेष्टा करने लगा जो मेरे लिए किसी अरबी-फारसी से कम नहीं था.

गुप्ताजी अपने दाहिने बैठी एक आधुनिका से बोले, "लल्ली नेक तू ललता को डॉलोग तो बोल."

गुप्ताजी ने अपनी आंखें एक कागज पर केंद्रित कर दीं और लल्ली इतराकर खड़ी हो गयी. उसने मुस्कराकर इधर-उधर देखा और ठस्से से बोली, "कन्हाई मोंय तिहारी जे छेर-छार ना भावे, जे नखरा राधा कू दिखाय करो."

गुप्ताजी ने स्क्रिप्ट से आंखें हटाकर लड़की का चेहरा देखा और उसे आत्मविश्वास से लैस देखकर बोले, "ठीक ई है पर जामे नेंक गुस्सो बी तो उभन्नो चइये."

अपने हाथ के कागज पर मैंने नजर डालते हुए पाया कि उस पर अनेक पात्रों के संवाद भी टंकित हैं. मनसुखा का डायलाग मैंने मन ही मन दोहराया तो मेरे भीतर इतनी अटक पैदा हो गयी कि लगने लगा मैं मुखर रूप से कुछ नहीं बोल पाऊंगा. वह भाषा मेरे लिए पूरी तरह से बेगानी और अपरिचित-सी थी.

मुझे अजीब-सी अनुभूति हुई. मैं सोचने लगा कि थोड़े से रुपयों की खातिर मुझे अपने स्वभाव के विरुद्ध एक ऐसा काम करना पड़ेगा जिसमें न मेरी कोई गति थी न रुचि. लेकिन साथ ही यह ख्याल भी आया कि मुझे या मेरे जैसे लाखों युवकों को इस देश में अपनी रुचि का काम करने का अवसर ही कब मिलता है. हमारे लिए मुदर्रिसी क्लर्की को छोड़कर बाकी बचता ही क्या है? मेरे हाथ में थमा कागज मेरी लक्ष्य विहीन यात्रा का नमूना था.

मुझे सोच में डूबे देखकर भैयाजी ने शब्दों का टहोका दिया, "हां तो लल्ला, तुम नेंक अपनो डालोग बोल के दिखइयो."

उस दिन का चिंतन किया, जिस दिन सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर के सशक्त श्वास से हम दोनों के हृदय एकाकार हुए थे, तभी युद्ध की विकराल ज्वाला प्रज्वलित हुई और इस युद्ध-ज्वाला को और भी प्रज्वलित, नेताओं ने अपने वक्तव्य (भाषण) की आहुति देकर की और तुमने अपना कर्तव्य समझकर उस युद्ध का अनुगमन किया.

"यह कैसा कर्त्तव्य है कि दो प्रेमियों को पृथक करता है, स्त्रियों के अहिवात को वैधव्य में परिवर्तित कर देता है तथा बच्चों को यतीम बनाता है? यह कैसी देशभक्ति है कि युद्धों को उत्तेजित करती है और तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए राज्यों का विनाश करती है? यह कैसा कर्त्तव्य है कि आततायियों के यश हेतु निरीह व्यक्तियों को मरण-वरण हेतु आमंत्रित करता है जिन निरीह व्यक्तियों पर न समर्थ और न वंशागत अभिजात्यों की कृपा-दृष्टि ही पड़ती है. अगर कर्त्तव्य राष्ट्रों की संधि को भंग करता है तथा देशभक्ति प्रजा के शांतिमय जीवन में विघ्न डालती है, तब हम यह कहेंगे कि— 'कर्त्तव्य और देशभक्ति को शांति मिले.'

"नहीं, नहीं, मेरे प्रिय! मेरे शब्दों का ख्याल मत करो! अपने देश के प्रति बहादुर और वफादार बनो.... प्रेम में अंधा बनकर तथा जादुई और एकाकीपन से विकसित होकर मेरी (कुमारी) बातों पर ध्यान मत दो.... अगर मेरे इस जीवन में तुम्हें प्राप्त करने में प्रेम असमर्थ रहेगा, तब पुनर्जन्म में हम लोगों को प्रेम निश्चित रूप से प्राप्त होगा.

तुम्हारा सदैव"

सागर-कन्याओं ने पत्र पढ़कर उसे उस मृतक युवक की जेबी में पुनः रख दिया. मौन-स्तब्ध होकर सव्यथा वे सभी कन्याएं तैरती हुई उस स्थान से दूर चली गयीं और एकत्रित हुईं. उनमें से एक ने कहा, "वरुण देवता के संगदिल से कहीं अधिक प्रस्तर मानव का हृदय है." □

अनुवाद : हरिप्रसाद नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने मनसुखा का डायलोग [illegible] बोला, ''...गुपाल मेरी दाव देओ... तिहारो जे ई तो बुरो सुभाव है के अपनी बिरिया नाट जाय कत्तो. तुमन्ने जमना में नोंद फेंक दई हेते—तुमई ढूंढके लावो.''

मेरी उखड़ती आवाज को लक्ष्य करके वहां एकत्र लड़के-लड़कियां भैयाजी का चेहरा देखने लगे.

गुप्ताजी ने अपने सिर पर अटकी गांधी टोपी को ढंग से जमाते हुए मेरे कान में कहा, ''ज्या में नेंक रिस को भाव होनो चइये लल्ला. थोरो फिलो बी लावो.''

वहां इकट्ठे लोगों में एक सुगबुगाहट दिखाई पड़ी. वे सब शायद आपस में परिचित थे. हो सकता है पहले भी साथ-साथ नाटक-नाटिकाओं में पार्ट करते रहे हों. पर मैं तो उनके बीच पूरी तरह अजनबी था.

गुप्ताजी ने लंबे बालों वाले से कहा, ''परसा नेंक तू भैया कू बोलवे की परेक्टीस तो करवाय दे. उत कूं कुन्ने में चलो जा इंके संग.'' इसके बाद वह अपनी धोती संभालते हुए जाने लगे. वह जाते-जाते बोले, **''रियरसल कत्ते रइयो—मैं अंबई आवत ऊं.''**

मैं एक विचित्र दबसट में पड़ गया. मेरे लेखे यह काम ऐसा था जैसे किसी अनाड़ी को सर्कस में करतब दिखाने के लिए धकेल दिया जाय.

मैं परसा के साथ उठकर एक कोने में चला गया. उसने मेरे हाथ से कागज ले लिया और मिनमिनाकर मनसुखा का डायलॉग पढ़ने लगा. उसके पढ़ने के ढंग से साफ मालूम होता था कि वह बहुत मालूमी पढ़ा लिखा आदमी था.

इसके बाद परसा ने उस संवाद को मन ही मन दुहराया और मुझसे बोला, ''ज्याय न्यौं बोलनो चइये.''

मैंने परसा के बताये हुए ढंग पर ही बोलने की कोशिश की. इतनी देर में भैयाजी लपक-झपक करते आये और झटके से बोले, ''बई अब सुरूआत कद्दओ नाय तो स्टुडियो छीन जायगो हम लोगन तें.''

तुरत-फुरत हम सब एक बड़ी अंडाकार मेज के चारों तरफ खड़े हो गये. बीच में तीन-चार माइक थे. उन्होंने हमें सतर्क किया, ''नेंक माइकन को खियाल रखियो.'' इसके बाद उन्होंने कांच की दीवार की ओर संकेत किया और स्टुडियो की बत्ती जल उठी.

सबसे पहले ललता ने डायलाग बोला. फिर किसी और ने. इसके तुरंत बाद गुप्ताजी ने मेरी और उंगली उठा दी.

मैं कुछ बोलता इससे पहले ही स्टुडियो की बत्ती बुझ गयी. भैयाजी मुझ से फुसफुसा कर बोले, ''मेरो इसारो पाते ई बोलन लागियो— डाक-गाड़ी की अस्पीड में मत बोलियो— नेंक आस्ते आस्ते हां.''

फिर बत्ती जली तो मैं मुंह खोलने ही जा रहा था कि उन्होंने ललता की ओर संकेत कर दिया. ललता रटंतू तोते की मानिंद अपना संवाद उगलने लगी. इससे मैं एकदम गड़बड़ा गया और मुझे कागज पर लिखा डायलाग खोजने में दिक्कत होने लगी. ललता का संवाद खत्म होते ही कोई और बोलने लगा.

गुप्ताजी ने मेरी ओर आंखें उठाईं और मुझे तैयार रहने का इशारा किया. उनकी उंगली उठते ही मैं ताबड़-तोड़ कागज पर लिखी इबारत एक सांस में पढ़ गया और यह हिदायत पूरी तरह से भूल गया कि मुझे यानि मनसुखा को अपना डायलॉग एकदम आस्ते-आस्ते पढ़ना था.

अपने संवाद बोलकर मैं तो पूरी तरह अवसन्न हो गया. मुझे उस नाटक या नाटिका की समाप्ति का पता तब चला जब बत्ती बुझ गयी और स्टुडियो में चेंचें शुरू हो गयी.

मुझे पता नहीं चला कि मेरे बोलने से भैयाजी अथवा दूसरे सहयोगियों पर क्या प्रभाव पड़ा लेकिन प्रकट रूप में सबने मेरी प्रशंसा ही की.

गुप्ताजी बाद में सारे कलाकारों को लेकर ड्यूटी-रूम में पहुंचे और चैक दिलवाने लगे. लेकिन जब उन्होंने मेरा नाम लिया तो वहां कोई चैक तैयार नहीं था. मेरा कंट्रैक्ट फार्म अभी तक भरा ही नहीं गया था.

वह मुझे अपने साथ अपने कमरे ले गये और कुर्सी की ओर संकेत करके बोले, ''का बताऊं भैया लपर-झपर में तिहारो कंटैक्ट फारम ससरो रै ई गयो.'' इसके बाद उन्होंने एक-दो जगह कंटैक्ट फार्म पर मेरे दस्तखत करवाये और बोले, ''कल्ल-परसों **में चैक बन जायेगो—दुपैरी में आय के ले जइयो काई बखत.''**

पता नहीं क्यों यह सारा कुछ मुझे घोर अपमानित करनेवाला किस्सा मालूम होने लगा. मेरे भीतर का खालीपन और भी बढ़ गया. वह चुपचाप मेरा कंटैक्ट फार्म भरते रहे.

वह कुर्सी से उठते हुए बोले, ''तो फेर चलो चाह तो पीवें.''

कैंटीन की ओर जाते हुए उन्होंने एक चपरासी के हाथ में मेरा कंटैक्ट फार्म थमाते हुए कहा, ''दलपत नेंक याये जनेसर बाबू कूं पकरा दइयो. मेरो नाम ले दइयो.''

इस वक्त भी कैंटीन में वही सुबह जैसी गहमा-गहमी थी. लोग बोल रहे थे. सुन कोई किसी की नहीं रहा था. भैयाजी सोमेश की तरह की काउंटर पर गये और थोड़ी देर बाद हाथों में चाय के प्याले और पकौड़ियों की प्लेट थामे मेरी ओर आते दिखाई पड़े. उनकी धोती के चुन्नट फर्श पर लिथड़ रहे थे. आंखों पर से चश्मा हटकर नाक की चोंच पर अटक गया था और टोपी टेढ़ी टुपिया की धज में बदल गयी थी.

चाय खत्म करके भैयाजी ने बाहर निकलते हुए पूछा, ''पान को सौख हैं का?''

मैंने सिर हिलाकर इंकार कर दिया तो वह गेट की ओर बढ़ते हुए बोले, ''तो फेर अइयो सोम के संग चाये अकेले— काऊ और नाटक में बी थोरो-सो काम मिल जायेगो.''

गेट से निकलते ही पनवाड़ी की दूकान थी. वह उधर चले तो **उनके कई परिचित मिल गये. वह मेरी ओर हाथ हिलाकर बोले,** ''तो ठीक है— फिर कभी आना— चैक तो मैं बनवा ही दूंगा दो-चार रोज में.''

मैं आश्चर्यचकित होकर गुप्ताजी का चेहरा देखता रह गया. जैसे कोई एवजी में आया हुआ आदमी यकायक गुम हो गया हो. मैं थोड़ी ही देर में यह सत्य पूरी तरह विस्मृत कर बैठा था कि गुप्ताजी इस माया नगरी से बाहर की दुनिया के आदमी नहीं हैं. **उनकी नरम रसीली भाषा का मायादर्पण लुप्त हो चुका था.** धूल चाटती धोती और सिर के एक ओर खिसकती टोपी के बावजूद इस बीच महानगर का लोक व्यवहार उन पर पूरी तरह हावी हो गया था.

मैं यानी मनसुखा महानगर के फुटपाथ पर बढ़ चला. सारा कुछ पहले जैसा-ही था, लेकिन भीतर का खालीपन और बाहर रेंगती असंप्रक्ति का कोई ओर-छोर नहीं था.

मैं पैदल ही सोमेश के दफ्तर की ओर चल पड़ा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

महाराज मनु का काव्यादर्श

अब तक तो कुछ कथाकार धर्म संकट में फंसे थे, अब कवि लोग भी धर्म संकट में फंस गये लगते हैं. संकट है कि दूरदर्शन पर कविता पढ़ें या न पढ़ें? शेक्सपीयर के हैमलेट बने हुए हैं, "करें कि न करें?"

जबसे साहित्य में चतुर्वर्णाश्रम की पुनर्स्थापना हुई है, तब से यह धर्म संकट और गहरा गया है. साहित्य में आधुनिक एक मनु महाराज ने इस वर्णाश्रम व्यवस्था को एक नयी व्याख्या दी है. कुछ ही दिन पहले उन्होंने दूरदर्शन महा निदेशक भास्कर घोष को एक कड़ा पत्र लिखा जिसमें वर्णव्यवस्था का कट्टरता के साथ पालन न किये जाने पर गहरा रोष व्यक्त किया था. यह प्रसंग था दिल्ली दूरदर्शन केंद्र द्वारा एक कविता गोष्ठी कराये जाने का. उसमें मंचों पर कविता पाठ करने वाले कवि भी थे. मनु महाराज को इस पर सख्त ऐतराज था कि इन भाड़े के टट्टुओं (?) के बीच इन गैर कवियों के बीच, उन्हें बुलाने की जुर्रत किसकी हुई? साहित्य की अलकापुरी के यक्ष का विरह. यों विघ्न को प्राप्त हुआ. क्रोध तो आता ही, सो आया. इन 'भाड़े के टट्टुओं' के बीच, इन तुकबदों के बीच, इन विदूषकों के के बीच उन्हें बुलाना? तौहीन की हद है. तो वे न गये. महानिदेशक को बोला कि देख लो! मैं भी तेरी टक्कर का अफसर हूं. साहित्यकार हूं. सर्वाधिक संवेदनशील मुख्यमंत्री का सर्वाधिक संवेदनशील अफसर हूं. तुम्हारी जुर्रत कैसे हुई मुझे बुलाने की?

कवि सम्मेलन हो गया. उसमें निर्मला गर्ग से लेकर त्रिनेत्र जोशी तक सब कवि थे. बीस-पच्चीस कवियों की छटा का वर्णन करने के लिए यह स्थान अत्यंत कम है. मगर उसमें नयी कविता के गिरिजा कुमार माथुर जैसे वरिष्ठ कवि भी थे और सर्वेश्वर, महादेवी, अज्ञेय की रिकार्डिंग भी थी. यानी समकालीन कविता के सब रंग और सब अंदाज जुटाए गये थे वहां. यही उसका दोष था. चारों वर्णों को अगल-बग़ल यों. किस शास्त्र के अनुसार बिठाया जा सकता है? चतुर्वर्णाश्रम की पुनर्स्थापना में तल्लीन मनु को इस पर घोर आपत्ति थी. मगर उस त्रिनेश जोशी को क्या कहते जो वर्ण व्यवस्था का कायल न हुआ और बे-झिझक निर्मला गर्ग के साथ काव्य पाठ कर आया? यह पतन था. इसे रोकना था.

सो कुछ दिन बाद मनु महाराज गाव तकिया लगाये, डबल चित्र लिए लगभग शाश्वत मुस्कान सहित डिब्बे पर दिखे. वहां तमाम वे कवि थे जिनकी शक्ल तक मनु महाराज को पसंद नहीं थी. ये भी सब वर्णव्यवस्था के खिलाफ रहने वाले थे. अरुण कमल, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, असद जैदी, विष्णु नागर, कुमार विकल, विष्णु खरे और इनके कई अग्रज भी वहां थे. फिर भी मनु महाराज बेहद खुश से दिखते थे. ऐसा क्यों? इसमें मुस्कान मारने लायक क्या था? आखिर किस मजाक पर खुश रहे होंगे मनु महाराज? वही अजित कुमार यहां भी थे जो उन भाड़े के टट्टुओं के दिल्ली में संयोजक थे. फिर सर्वोपरि कवयित्री प्रभा ठाकुर भी थीं वहां. वही सभी वर्ण यहां भी थे. तब तकलीफ क्या थी जो दिल्ली में सालती रही और जयपुरी रंग में 'मुसकान' बन गयी.

दरअसल, जयपुर दिल्ली का जवाब देने के लिए जाया गया था. मनु महाराज दिखाना चाहते थे कि समकालीन कविता का असली संपादन संयोजन क्या होता है? मगर इन वर्ण विरोधी कवियों ने उन्हें संयोजन करने ही नहीं दिया. शाश्वत मुस्कान इसीलिए विराजी रही.

मगर मनु महाराज ठहरे मनु महाराज. इन शिशुओं से हार कैसे मान जायें? इस दूरदर्शन के प्रति भी तो उनका कुछ कर्त्तव्य है न! सो फिर पहुंचे लखनऊ. यहां उन्हें वर्णाश्रम के प्रदर्शन का पूरा मौका था. अपने द्विजत्व को वे संयोजित कर सकते थे. उन्होंने वही किया. अंततः मनु महाराज अपनी व्याख्या में कामयाब हो जाते, मगर यहां भी इब्बार रब्बी और अरुण कमल मौजूद.

यह वर्णन गंभीर नहीं है. हो भी नहीं सकता. कुछ स्थितियों में मजाक छिपे होते हैं. कुछ स्थितियां मात्र मजाक हुआ करती हैं. मनु महाराज की वर्ण प्रियता ऐसी ही स्थिति है. दिल्ली के दूरदर्शन पर जुटे कवियों के बीच बैठने से बदबू आती मनु महाराज को. जो कवि ही नहीं उनके बीच कवियों के कवि और प्रायोजक मनु कैसे बैठते? कैसे जिंदा रहते विश्व कविता तक? अपनी शुद्धता बनाये रखने के लिए बदबू से दूर तो रहना ही होगा. अब जरा उस नाक पर बलि-बलि जाइये जिन्हें त्रिनेत्र जोशी से दुर्गंध आती है मगर प्रभा ठाकुर या गगन गिल की कविता में से सुगंध? दिल्ली में अजित कुमार शूद्र हो जाते हैं और जयपुर पहुंचते ही कंठी डोरा पहनकर नाथद्वारा से लौटे ब्राहमण.

मैं इन्हें साहित्य में वर्णवाद की पुनर्स्थापना कहता हूं. मनु महाराज उसे पहले भोपाल में स्थापित करते रहे. मगर इस वक्त के सबसे बड़े धनुर्धारी क्षत्रिय ने इस वर्णवाद को त्याग दिया. तब से विचलित हुए वे अलख जगाते घूम रहे हैं. कुछ दिनों तक उनके वर्णवाद के व्यामोह में बहुत से कवि आ गये थे, अब वे भी सचेत हो गये हैं.

दूरदर्शन पर कविता होगी तो यह ब्राहमणवाद बहुत दिनों तक टिका नहीं रह सकता और न मनु महाराज की मुस्कान बहुत दिनों तक टिकी रह सकती है. दूरदर्शन सबसे बड़ी सांस्कृतिक मथानी है. या तो आप उस तक जाइये नहीं, उससे विराग रखिए (यद्यपि तब भी उसकी सफेदी की चमकार से आप बच नहीं सकते) या फिर अपने ब्राहमणवाद का इलाज कीजिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

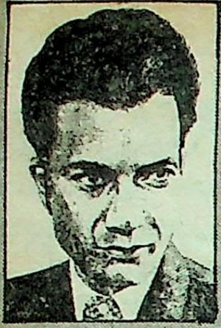

जन्म : 14 फरवरी, 1939 देहरादून.
प्रमुख कृतियां : 'चीफ के बाप की मौत', 'तपती हुई जमीन', 'समुद्र और पुल' (कहानी संग्रह) 'चिड़िया की आंख' (नाटक) और (उपन्यास)
संपर्क : 153, डोभाल वाला, देहरादून-248 001

□ सुभाष पंत

इंतजार

मुरली ने कमरे में झांका. पिता उसी तरह लेटे थे और मां सिर झुकाये उनके पैंदवाने बैठी थी. पिता की इकहरी सांस चल रही थी. धीमे-धीमे. बहुत गौर से देखने पर उनका सीना आहिस्ता-आहिस्ता हिलता हुआ महसूस होता था, जो इस बात का सबूत था कि उनकी जिंदगी का कच्चा धागा कहीं अटका हुआ है. अभी टूटा नहीं है.

''मां, क्या तुम रात भर ऐसे ही बैठी रहीं?'' मुरली ने पूछा, ''कुछ देर सो जातीं... हमें जगा दिया होता.''

मां ने तनिक-सा सिर उठाया और उसके चेहरे की झुर्रियां थरथराने लगीं, ''जरूरत पड़ी तो तुम्हें ही आवाज दूंगी. और कौन है मेरा.''

मां रोज यही कहती थी लेकिन किसी को जगाती नहीं थी दरअसल पिता की इस अंतिम यात्रा में उनका आखरी हद तक साथ देना चाहती थी.

''पिताजी को रात भी कतई होश नहीं आया?''

''नहीं,'' उसकी आंखें डबडबा आयीं, ''जब तक होश था तुम्हें ही याद करते रहते थे—मुरली और बहू-बच्चे नहीं आये. कैसा संजोग है, तुम आये और इनका होश जाता रहा. एक बार इन्हें होश आ जाता... और तुम्हें जी भरके देख लेते...'' और कोरों से आंसुओं के कतरे फिसलने लगे.

''धीरज रखो मां, सब ठीक हो जायेगा.'' उसने कहा लेकिन अगले ही क्षण उसे अपने शब्दों के खोखलेपन का एहसास हो गया और वह घर की झिरती हुई दीवारें देखने लगा.

मां ने बात संभाल ली, ''बच्चे उठ गये क्या?''

''शायद उठ गये हों.''

''चाय बना देती हूं.''

''तुम रहने दो, मंजु बना लेगी.''

''दो दिन के लिए तो आयी है बहू. उसे तो यहां का ढंग भी नहीं आयेगा.'' मां घुटनों पर हाथ रखकर खड़ी हुई और रसवाड़े की ओर चली गयी.

मुरली को लगा जैसे वह इस घर का बेटा नहीं, मेहमान हो. इस बात से उसे परेशानी-सी हुई और शर्मिंदगी भी. वह कुर्सी खींचकर पिता की बगल में बैठ गया. वे एकदम शांत थे. कहीं कोई हरकत नहीं. सिर्फ इकहरी सांस चल रही थी जिसे बहुत गौर से देखने पर ही महसूस किया जा सकता था. चारों ओर बहुत ठंडे किस्म की शांति व्याप्त थी जो आत्मा पर कोहरे की तरह छा रही थी. मृत्यु पूर्व की खामोशी और मृत्यु की खामोश दस्तक. वह एकदम ऊब गया या फिर डर गया और पिता को उसी अवस्था में छोड़कर बाहर निकल गया. मंजु नहाकर निकली थी और बाल सुखाने के लिए धूप का इंतजार कर रही थी. मंजु को देखकर उसे थोड़ी राहत मिली जैसे घटाटोप अंधियारे में रोशनी की एक फांक हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने इशारे से पूछा, "पिता जी का क्या हाल है?"

मुरली ने भी उसी तरह जवाब दिया, "बस वैसा ही है."

मंजु के चेहरे पर अनिश्चय और चिंता की रेखाएं गहरी हो गयीं.

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है." वह फुसफुसाया.

"लेकिन हम कर भी क्या सकते हैं सिवाय इंतजार के..." मंजु ने कहा और बाल झटकने लगी.

"मुझे तो छुट्टी भी सिर्फ पंद्रह दिन की मिली है, वह भी बड़ी मुश्किल से. चार दिन बीत गये हैं."

तभी चाय के गिलास थामे मां आ गयी. उसके हाथ डगमगा रहे थे और आंखें गहरायी में धंसी हुई थीं.

चाय पीते हुए मंजु ने कहा, "बच्चों की पढ़ाई का बहुत हर्ज हो रहा है. इम्तहान सिर पर हैं."

"सो तो है ही... बच्चों को अपनी किताबें लेकर आना चाहिए था."

"किताबें तो वे लेकर ही आये हैं लेकिन ऐसे माहौल में पढ़ाई कैसे हो सकती है?"

"उन्हें शहर में अकेले भी नहीं छोड़ा जा सकता था." मुरली ने कहा और खाली गिलास मंजु के हाथ में पकड़ा दिया.

"तुम बाहर जा रहे हो क्या?"

"थोड़ा घूम आऊं."

"जल्दी लौट आना... कहीं तुम्हारे पीछे..."

"जल्दी ही लौटूंगा." उसने कहा और बाहर निकल आया.

यूं उसकी तबीयत घूमने की नहीं थी लेकिन वह बुरी तरह ऊबा हुआ था और उसका खयाल था कि बाहर निकलकर उसकी ऊब कुछ कम हो सकती है. हालांकि हवा बहुत ताजी थी, मुद्दत से जिसका स्वाद उसने नहीं चखा था, लेकिन उसकी ऊब में कोई कमी नहीं आयी. चौक उसे बहुत उखड़ा और उदास दिखाई पड़ा. समय की आंधी में वे लोग बिखर चुके थे जो इस चौक को जिंदा रखते थे. अब जो इस चौक के वारिस थे उनमें न वह हौसला था और न वह उत्साह. उसने अपने उन दोस्तों को याद करने की कोशिश की जिनके साथ इस चौक पर खेलते हुए उसने अपना बचपन गुजारा था... उसे कुछ याद नहीं आया. जब भी वह कोई चेहरा याद करने की कोशिश करता तो उसके दिमाग में फैक्टरी की धुआं उगलती चिमनियां कौंधने लगतीं.

चौक से निकलकर वह उस सड़क पर चलने लगा जो मंदिर और जोहड़ की ओर जाती है. एकाएक उसे अपने ऊपर भी शक होने लगा कि सड़क पर चलता वह वही है. या उसकी जगह ब्वायलर की ओर जाती कोयले से लदी ट्राली है.

जोहड़ का पानी सूख गया था और उसकी तलहटी में जमा

बिरादरी के घरों में जल्दी-जल्दी खाना पकाया जा रहा था, पता नहीं किस छिन मृत्यु की सूचना आ जाये. वे मृत्यु समाचार सुनने से पहले खाने से फारिग हो जाना चाहते थे.

कीचड़ तिड़क गया था. कभी यह जोहड़ पानी से लबालब भरा होता था जिस पर कमल खिले होते थे. जोहड़ से सटा मंदिर भी उसे बहुत उदास दिखाई पड़ा. उसके कंगूरे पर जहां कभी कपोत इतराया करते वहां एक कठवा बैठा था, जिसकी वजह से सारा वातावरण अजीब-सी मनहूसियत से भरा हुआ था.

जब वह वापस लौटा, उस वक्त दिन सांप के फन-सा फैल गया था. नीलांबर काका सहन में बैठे बीड़ी का सुट्टा लगा रहे थे और उसका इंतजार कर रहे थे. वे अपने जमाने के उस्ताद पहलवान थे. मुरली ने लड़कपन में कुछ दिन अखाड़े में कुश्ती के दांव-पेंच सीखे थे. बहुत हसरत से. वे दांव-पेंच जिंदगी की लड़ाई में बहुत भोंथरे सिद्ध हुए थे. न वे नीलांबर काका के कुछ काम आ सके थे और न उसके.

काका उसे देखकर हड़बड़ाकर खड़े हो गये.

उनके इस तरह खड़े हो जाने से वह हतप्रभ रह गया.

"पाय लागूं काका." उसने कहा और उनके पांवों पर झुकने का नाटक किया.

"जीते रहो, ईश्वर तुम्हें लंबी उमर दे," उन्होंने आशीर्वाद दिया.

"बैठिये न काका."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काका चारपाई पर बैठ गये. "सुना था, तुम आये हो... पहले आता पर बाई के इस दरद ने तो मुझे तोड़कर रख दिया है."

"तो तुम्हें भी बाई ने घेर लिया काका?"

काका कुछ और भी कहना चाहते थे पर इन दिनों वे बोलते हुए भी थकने लगे थे.

"और सुनाओ काका, घर के क्या हाल हैं."

"बस क्या हाल होने... कभी जीने का कोई मकसद था. अब तो जीना ही मकसद बन गया है. परमेश्वर जो दिन न दिखा दे." उनकी सांस फूलने लगी.

"दीनू, रग्घु कैसे हैं?"

"दीनू आबकारी में काम कर रहा है. देखो भई, हम तो जिंदगी भर नसाखोरी के खिलाफ लड़े, अब अपनी औलाद ही आबकारी में सराब बेच रही है."

"और रग्घु क्या कर रहा है?"

"उसकी पूछो ई मत... सांड की तरह दिन भर घूमता रहता है. करे भी क्या? काम-धाम तो कोई हियां है नहीं. भई तुम ही उसके लिए सहर में कोई काम ढूंढ़ दो. तुम्हारी फैक्ट्री में मजूर-वजूर की जगह निकलती रहती होगी. मजूर भी लग जायेगा फैक्ट्री में तो आदमी बन जायेगा. बड़ा एहसान होगा."

सहसा मुरली के सामने फैक्ट्री के दैत्याकार ब्वायलर, उनमें कोयला झोंकते हाथ और ब्वायलर की आंच में तपे चेहरे उभर आये जो दूर से ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे आग में दहकते हुए अंगारे हों.

फिर भी आदमी शहर की ओर ही दौड़ना चाहता है.

उसने काका की ओर देखा. उनकी आंखों में आशा की लौ कांप रही थी. उसमें इतना हौसला नहीं आया कि वह काका को बता सके कि असलियत क्या है.

"ठीक है काका, मैं खयाल रखूंगा," उसने कहा.

काका बहुत भयभीत हो गये और उनकी आंखें नम हो गयीं. "अच्छा, अब चलता हूं," उन्होंने कहा. वे घुटनों पर हाथ रखकर खड़े हुए और धीमे-धीमे चलने लगे. दरवाजे पर पहुंचकर रुके, मुड़े और फिर बोले, "भइया, तुम पर ही भरोसा है."

मुरली ने सिर हिलाया और आश्वस्त होकर चले गये.

उनके जाने के बाद वह भी पिता के कमरे में चला गया. वे अब भी उसी तरह लेटे थे. उसी हालत में. वह कुछ देर बैठा पिता को देखता रहा. फिर उठा और अलमारी टटोलने लगा. कोई किताब या पुरानी पत्रिका मिल जाये तो उसे पढ़ते हुए वक्त काटना आसान हो जायेगा. मंजु आंवले सुखा रही थी, जिन्हें वापसी मे शहर ले जा सके.

उसका गला सूखने लगा तो उसने मंजु को पानी के लिए आवाज दी.

वह पानी लेकर आयी और बोली, "हमारी वजह से मांजी को बहुत तंगी हो रही है."

यह बात वह खुद भी महसूस कर रहा था. चार-पांच सदस्यों का बोझ कुछ कम तो नहीं होता.

"मांजी आज कुछ बेच रही थीं..."

उसे लगा जैसे सहसा किसी ने उसके सीने में घूंसा मार दिया है.

"आपको पैसों का इंतजाम करके चलना चाहिए था."

"कोशिश तो की थी लेकिन सिर्फ चार सौ का ही इंतज़ाम हो सका था. वह भी किस-किस के सामने गिड़गिड़ाकर. नौकरी में तो ऐसा कोई लोन बचा नहीं है जो मैंने न ले रखा हो. फंड से कर्ज लेकर तुम्हारी बीमारी पर... सोसायटी से लोन लेकर बच्चों के इम्तिहान की फीसें. इस लोन से यह... उस लोन से वह... पता नहीं यह गाड़ी कैसे खिंच रही है. हर आनेवाला दिन ज्यादा तकलीफ का दिन साबित होता है..."

"फिर भी..."

"तुम भी मेरी परेशानी नहीं समझ सकतीं... चार सौ रुपयों का मैंने कैसे इंतजाम, किया यह मेरी आत्मा ही जानती है. फिर तुम सब यहां आने को तैया`र हो गये. डेढ़ सौ रुपये तो आने के किराये में ही फुक गया. इतना ही जाने के लिए चाहिए. तार से तो ऐसा लग रहा था कि हम शायद ही पिता जी के जिंदा रहते पहुंच पायेंगे. मुझे क्या मालूम था कि स्थिति ऐसी हो जायेगी... वाकई मां भी क्या करे, उसकी आमदनी का कोई जरिया नहीं है... और

पहाड़ी-औरत

नरेंद्र प्रताप सिंह

धारचूला स्वास्थ्य केंद्र पर एक दिन कुछ लोग एक औरत डोली में डालकर ले आये. पूछने पर पता चला घास काटते समय वह गिर गयी थी. उसकी कमर में बेहद दर्द था, दोनों पैर बिल्कुल काम नहीं कर रहे थे. परीक्षण के बाद मुझे लगा--उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गयी थी या खिसक गयी थी. मैंने उन्हें समझाया, "आप इसे जिला अस्पताल पिथौरागढ़ ले जाइये. वहां एक्सरे करना पड़ेगा." पर वे बार-बार कहते रहे, "साहब, इलाज आप ही कर दीजिए." मैंने उसे भर्ती कर दिया.

एक हफ्ते बाद उसकी आदमी मेरे पास आकर बोला, "हमें इसे ले जाना मांगता है." मैंने पास जिला अस्पताल ले जाने के लिए कह रहे हैं मैंने सोचा जिला अस्पताल ले जाने के लिए कह रहे हैं मैंने कहा ठीक है--मैं जिला के लिए चिठ्ठी लिख देता हूं. पर वह मुझे रोककर बोला, "नहीं साहब आप दवा लिख दो, हम घर जायेगा.

मैंने समझाया, "इसमें दवा फायदा नहीं करेगी, पिथौरागढ़ ले जाओ, वहीं कुछ हो सकेगा." मैंने उसे अपने साथियों से फिर पूछकर आने को कहा.

थोड़ी देर में वह फिर आकर कहने लगा, "साहब वो कहती है आपकी दवा से फायदा है. आप दवा लिख दो, हम थोड़े दिन बाद आपको फिर दिखा देंगे.

आखिर मैंने दवा लिख दी. जब से चले गये तो मैंने अपने कंपाउंडर सिरोला से कहा, "वैसे तो पहाड़ पर औरतों की कद्र कम होती है. पर ये बेचारे इसकी खूब सेवा कर रहे हैं."

आखिर वह बोला, "कहां साहब, आप नहीं जानते ये आपस में क्या कह रहे थे.

उसकी बात सुनकर मैं सकते में आ गया. उसने बताया, "वो कह रहे थे औरत ही तो है. अब तो पैर काम पर नहीं रहे. पैसा खर्चने से पता नहीं कितना ठीक है. बेकार में उस पर क्यों पैसा बर्बाद करें. घर ले चलते हैं, थोड़े दिनों में खुद ही मर जायेगी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं... ये चार सौ रुपये उतारने के लिए ओवरटाइम करना पड़ेगी. और जिस समय मैं ब्वायलर के सामने खड़ा होता हूं, उस समय मैं आदमी नहीं होता... बस एक धधकता हुआ अंगारा होता हूं... सिर्फ एक अंगारा...''

मंजु ने कुछ कहने के लिए अपने होंठ फड़फड़ाये फिर पता नहीं क्या सोचकर अपने को जज्ब कर लिया और उठकर सहन में चली गयी. मुरली उसी तरह औचक सन्नाटे में भरा खड़ा रह गया.

''खाना खा ले बेटा.'' मां थी. लेकिन बोल वह नहीं रही थी, उसकी झुर्रियां बोल रही थीं.

''इच्छा नहीं है मां.'' उसने कहा.

''ऐसे दिल छोटा नहीं करते बेटा.'' झुर्रियां फिर हिलने लगीं, ''चल, तुम्हारे बहाने चौका-चूल्हा कर लेती हूं. नहीं तो कई-कई दिन चूल्हा भी नहीं जलता. ये तो इस हालत में हैं... अपने लिए, कौन टंटा करे.''

वह चुपचाप रसोई में आकर पटरी पर बैठ गया.

मां ने खाना परसा तो वह चुपचाप खाने लगा. वह कौर चबाता, उसे निगलने की कोशिश करता तो कौर गले में फूल जाता. वह अपराध बोध से भरा हुआ था. वह खाना छोड़कर वैसे ही उठ जाना चाहता था लेकिन मां की आंखें एकटक उसी पर टिकी हुई थीं. आंखें, जिनकी पुतलियां ममता के समुद्र में तैर रही थीं. सहसा उसे याद आया—जब वह छोटा था तो पिता इसी पटरी पर बैठकर उसे अपने हाथ से खाना खिलाया करते थे.

वह खाना खाकर सहन में आया. मंजु चुपचाप बैठी कुछ सोच रही थी.

''मंजु सुनो, पैसों की तो जरूरत होगी ही. तुम्हारे पास कुछ हो तो...''

''मेरे पास अंगूठी है. वह तुम ले सकते हो. लेकिन थोड़ा इंतजार कर लेना ठीक होगा. वैसे तुम्हारी मर्जी...''

''मुरली को लगा, मंजु ठीक ही कह रही है. पिता के क्रिया-कर्म में पैसे की जरूरत पड़ेगी. रुपया अगर अभी हाथ में आ गया तो खर्च ही जायेगा.

वह सहन में बिछी चारपाई पर लेट गया. उसने सोने की कोशिश की पर उसे नींद नहीं आयी. बस ऐसे ही आंख मूंदे लेटा रहा.

''अरे तू ऐसे ही लेट गया, बिछावन तो बिछवा लेता.'' मां थी. वह बिछावन लिये उसके सिरहाने खड़ी थी.

''नहीं मां, कोई जरूरत नहीं. मैं तो वैसे ही...''

लेकिन मां नहीं मानी तो बिछावन बिछाने लगी. उसने बिस्तर लगा दिया तो वह फिर चुपचाप लेट गया और शाम ढले तक वैसे ही लेटा रहा.

मंजु चाय लेकर आयी तब भी वह लेटा हुआ था.

''तुम तो बहुत देर से लेटे हो. तबीयत तो ठीक है. उठो, चाय तो पी लो.''

वह हड़बड़ाकर बैठ गया. उसका चेहरा अजनबी-सा दिखाई पड़ रहा था. ''एक बात बताओ मंजु,'' उसने कहा, उसकी आवाज इतनी ठंडी थी जैसे किसी अंधे कुएं की अतल गहराई से निकली आवाज हो. सन्नाटे से भरी. ''आखिर हम इतने कमीने क्यों हो गये हैं?''

मंजु इस अप्रत्याशित प्रश्न का कोई जवाब नहीं दे पायी. उसकी आंखें झुक गयीं.

सुबह से ही सब सन्नाटे से भरे हुए थे. शाम पिरथी चौधरी आये थे. पिता की हालत देखकर उन्होंने भविष्यवाणी कर दी थी कि अगला रोज मंगलवार बहुत कड़ा दिन है, पिता उसे झेल नहीं पायेंगे. सारा घर बहुत सुबह ही जाग गया था. पंडित को सूचना भिजवा दी गयी थी. भोला पांडे को भी अगम वाणी हो गयी थी, उसने भी तहसील से छुट्टी ले ली थी और अपने औजारों के बक्से में से आरी निकाल ली थी. गांव के लगभग सभी मुर्दों ने उसकी आरी से कटे बांसों पर अंतिम यात्रा की थी. बिहारी और जगधारी को भी रोक लिया गया था. वे मृतकों की अर्थी बनाने के विशेषज्ञ थे और उन्हें इस बात का गर्व भी था. जिगर में दर्द के बावजूद मंगल सैन भी पहुंच गये थे. उन्होंने कफन और अग्नि विसर्जन में काम आनेवाली चीजों की फेहरिश्त तैयार करवा दी थी. गांव के लोगों ने हल-बैल नहीं जोड़े थे और उनके कान चौकन्ने होकर इंतजार कर रहे थे. बिरादरी के घरों में जल्दी-जलदी खाना पकाया जा रहा था, पता नहीं किस छिन मृत्यु की सूचना आ जाये. वे मृत्यु समाचार सुनने से पहले खाने से फारिग हो जाना चाहते थे.

औरतें धीरे-धीरे जमा हो रही थीं और बालिश्त भर घूंघट काढ़े बतिया रही थीं. मां की हालत बहुत दयनीय थी. पिता को उससे छीन लिया गया था और वह कातर आंखों से लोगों के चेहरों पर मृत्यु का समाचार पढ़ रही थी. तुलसी और गंगाजल की बुग्गी सिरहाने रख दी गयी थी और सुमरु परधान पिता की नब्ज थामे हुए थे. सबकी निगाहें उस पर टिकी हुई थीं जैसे जीवन की बागडोर वे ही थामे हुए हों.

सुबह से दिन-चढ़ आया और फिर ढलने भी लगा. पिता की हालत में कोई परिवर्तन नहीं आया. लोगों का उत्साह फीका पड़ने लगा और वे बहाने बनाकर वापिस लौटने लगे. पिता मृत्यु की सारी संभावनाओं को नकारते हुए उसी डोर पर झूलते रहे जिस पर वे कई दिनों से झूल रहे थे.

उसी दिन नहीं, अगले दिन भी पिता उसी तरह झेलते चले गये. आस-पड़ोस और गांव के लोग सामान्य जिंदगी की ओर लौट गये. मुरली की छुट्टियां भी खत्म हो गयीं. उसके बच्चों का भी गांव घूमने का उत्साह पस्त पड़ चुका था. वे अब वापस जाना चाहते थे. उन्हें अपने शहर, पढ़ाई और साथियों की याद सता रही थी. मां भी गृहस्थी पर पड़े अतिरिक्त बोझ से टूटती जा रही थी. आखिर मुरली ने शहर वापस लौटने का फैसला ले लिया. दरअसल वापस लौटने के अलावा और कोई चारा ही नहीं रह गया था.

स्टेशन जाने के लिए तांगा आ गया और बच्चे अपना सामान लिये उस पर लद गये. मंजु ने मां के पैर छुए और मुरली ने मां का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, ''मां, तुम फिकर मत करना, मैं जल्दी ही आऊंगा. कोई बात होगी तो लिख देना.''

मां ने कोई जवाब नहीं दिया. उसकी आंखें डबडबा रही थीं.

तांगा चला तो वह एकटक उसे निहारती रही, जब तक वह एक धब्बे में नहीं बदल गया.

फिर वह भारी मन से वापस लौट आयी. घर एकदम सूना था. और भांय-भांय कर रहा था. वह उनके पैरों में आकर बैठ गयी और सहसा बहुत देर का थमा ज्वार अपनी सीमाएं तोड़ गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शीशे की दीवार', 'कैदखाना' व 'रेलछाया' सहित पांच कथा-संग्रह. 'लौटते चरण', 'युद्धरत', व 'कठपुतली' सहित बारह उपन्यास.
संप्रति : सचिव : डाक सेवा बोर्ड, संचार मंत्रालय
संपर्क : १, जावरप्लेस, नई दिल्ली-११०००१

□ रमेश गुप्त

न जाने कितने वर्षों से वह गुड्स ट्रेन का चालक बना लोहे की पटरियों पर अपनी जिंदगी की गाड़ी को ढोता रहा है. इधर कुछ दिनों से उसे यह अनुभूति कुतरने लगी है जैसे उसकी खुद की जिंदगी एक मालगाड़ी बन गयी है– बिना यात्रियों के, पीड़ा के माल का भार ढोती हुई.

यह बदलाव अभी कुछ वर्ष पूर्व ही उसकी जिंदगी में आया था. इतनी तेजी से सब कुछ हुआ कि वह संज्ञाशून्य, हतप्रभ-सा ताकता रह गया– सामने तेज चाल से उड़ती, रनथू मेल की तरह. सुखिया के जमाने में उसकी जिंदगी की गाड़ी राजधानी की रफ्तार से दौड़ती थी. पर अब? धीमी चाल से रेंगती, जीवन की भयावह त्रासदी-सी लंबी, यात्री विहीन, अकेलेपन के गुरुभार को ढोती, किसी लल्लूपंजू असिस्टेंट मास्टर द्वारा एक अनाम स्टेशन पर लूप लाइन पर डाल दी गयी है. मेल और पैसेंजर गाड़ियां दोनों दिशाओं से आ-जा रही हैं. पर वह अटका पड़ा है, बिना सिगनल के.

सुबह ढाई बजे उसकी ड्यूटी थी. वह डेढ़ बजे का ऐलार्म लगाकर सोया था. पर उसकी नींद ऐलार्म बजने से पूर्व ही खुल गयी. सुखिया उसका ऐलार्म थी. उसके जाने के बाद उसे कभी गहरी नींद नहीं आयी. वह उठा. हाथ मुंह धोये. ठंडेपानी से. जनवरी की कड़ाके की सर्दी के बावजूद. सुखिया होती तो उसके जागने से पहले चिलमची में गर्म पानी और प्याले में भाप उड़ती चाय तैयार कर लेती, मलाई मार के.

उसे आलस आता है. गर्म पानी बिना गुजारा हो जाता है. चाय जरूरी है. उसने चाय बनायी. पी. नित्य कर्म से निपटकर कपड़े पहने. खिड़की को थोड़ा-सा खोल बाहर के तापक्रम का जायजा लिया. हड्डियों को कंपकंपानेवाली सर्दी. उसने अपना ओवरकोट पहन लिया. काफी गंदा हो गया है. कोहनियों से फट गया है. फिर भी गर्म तो है ही. मंकी कैप सिर पर लगा ली. शंकर छाप दंत मंजन के टाट के थैले में उसने एक जोड़ी कपड़े, तौलिया और एक जासूसी उपन्यास ठूंस लिया. टिफिन?

सुखिया के जमाने में सफर का साथी टिफिन कैरियर होता था. कभी आलू के परांठे और पांच साल पुराना नींबू का अचार. किसी दिन दम आलू और दाल की कचौड़ी. तीज-त्यौहार पर मीठा हलवा और गुजराती चिवड़े. वह उसके खाने की तारीफ करता तो बीमारी से पीले पड़े सुखिया के चेहरे पर सूर्योदय की लालिमा बिखर जाती थी.

पर अब? स्टेशन पर बिकनेवाले सड़े तेल में तले समोसे या चमड़े की तरह चीचड़ पूड़ियों और अल्लमगल्लम सब्जी खाकर गुजारा करना पड़ता है. अक्सर उसे पेट की शिकायत रहती है. गैस. कब्ज. दस्त. एकदम ऐसे ही कि कई बार रनथू आगरा से दिल्ली. कभी एक छोटे से स्टेशन पर अटके खड़े हो और सवारी गाड़ियां दौड़ती चली जा रही हैं– अंगूठा दिखाती, मुंह चिढ़ाती.

रेडियो के ऊपर रखी अपनी तीनों की संयुक्त फोटो को देखकर उसका कलेजा दरक गया. बीच में वह. अगल-बगल सुखिया और सुनीता. काश, सुखिया के बाद सुनीता बन पाती उसकी जिंदगी की मालगाड़ी की गार्ड! बड़े मियां सो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह!

उसने ओवरकोट के कॉलर को ऊंचा करके विषाद और कटुता की भावना के आक्रमण से बचाव की असफल चेष्टा की. जाफरी के जालीदार दरवाजे में ताला लगाकर वह बाहर निकला.

मालगाड़ी का सफर

चारों तरफ कुहासे का सागर लहरा रहा था. मृतप्राय सन्नाटा खून को जमा देने वाली ठिठुरन. पूरी रेलवे कालोनी सोयी पड़ी थी सिर्फ दो तीन क्वार्टरों में बत्ती जल रही थी. ये लोग भी ड्यूटी पर जाने वाले होंगे या शायद वापस आये होंगे?

वह लोकोशेड की तरफ चल पड़ा. नीरव, सूनी, बर्फीली रात में भी कीड़ों का बेतरतीब संगीत गूंज रहा था. उसे सुखिया पर क्रोध आ रहा था. ऐसी भी क्या जल्दी पड़ी थी जाने की? कोई ट्रेन छूटी जा रही थी? अरे, वह तो गुड्स ट्रेन ड्राइवर की पत्नी थी? ट्रेन को रुकवा लेता. पर उसने तो अकेले ही जाना था. चली गयी कंबख्त ने कभी बताया ही नहीं कि अपने गर्भ में वह कौन-सा कैंसर पाल रही है! सोलह-सोलह दिन तक रक्त की धाराएं बहती रहतीं. कुछ नहीं कहती. पूरे जीवट से सह लेती रक्तपात को. पर अंत में उसे रेलवे अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा. पूरा यूटरस कैंसरग्रस्त हो चुका था. ऑपरेशन हुआ. मेज पर ही दम तोड़ दिया उसने.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑपरेशन थियेटर में जाने से पूर्व वह उससे कह गयी थी "अगर मुझे कुछ हो जाये तो सुनीता को मेरी जगह मत सौंपना उसे उसके घर भेज देना."

सुनीता की शादी उसके सामने ही तय हो गयी थी. लड़का टी.टी. था. झांसी में. धर्म के एक हजार. ऊपर के दो हजार अलग. मथुरा के श्याम चौबे भाई ने यह रिश्ता बताया था. लड़के के पिता झांसी में रहते थे. एक बस चलाते थे— झांसी खजुराहो के बीच.

अक्षय तीज की तारीख तय हुई थी. पर सुखिया के जाने के कारण लड़के वालों ने दो महीने के लिए तारीख आगे बढ़ा दी. 22 अक्तूबर को सुनीता भी चली गयी अपने घर. कितना अकेला पड़ गया था वह. तीन कमरों के क्वार्टर में अतृप्त प्रेत-सा वह एकाकी छटपटाता. उसकी जिंदगी की मालगाड़ी किसी वे-साइड स्टेशन पर रोक दी गयी थी. वहां न कोई मेल रुकती, न पैसेंजर. न पानी का इंतजाम. न कोई चाय, पान, बीड़ीवाला. चारों तरफ एक अभिशप्त, अपशकुनभरा सन्नाटा खिंचा था चारों ओर. शाश्वत लाल बत्ती. अपने लौहरथ के द्वार पर वह सिगनल डाउन होने की

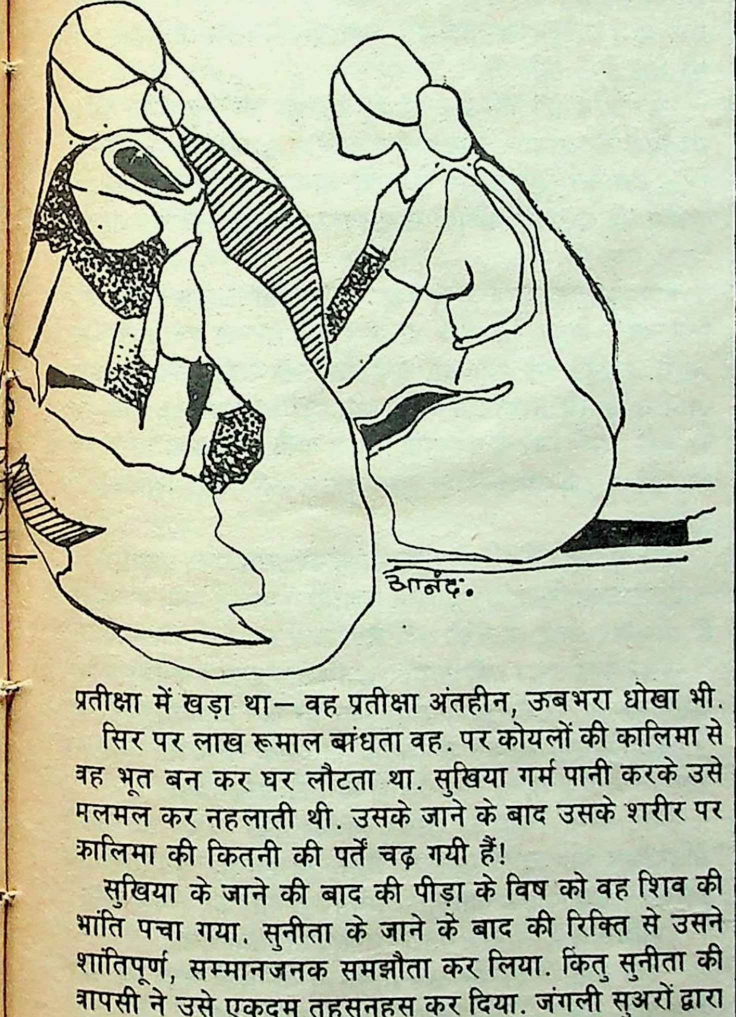

प्रतीक्षा में खड़ा था— वह प्रतीक्षा अंतहीन, ऊबभरा धोखा भी.

सिर पर लाख रूमाल बांधता वह. पर कोयलों की कालिमा से वह भूत बन कर घर लौटता था. सुखिया गर्म पानी करके उसे मलमल कर नहलाती थी. उसके जाने के बाद उसके शरीर पर कालिमा की कितनी की पर्तें चढ़ गयी हैं!

सुखिया के जाने की बाद की पीड़ा के विष को वह शिव की भांति पचा गया. सुनीता के जाने के बाद की रिक्ति से उसने शांतिपूर्ण, सम्मानजनक समझौता कर लिया. किंतु सुनीता की वापसी ने उसे एकदम तहसनहस कर दिया. जंगली सुअरों द्वारा रौंदी गयी खेती की भांति.

उस दिन अट्ठावन डिब्बों के रैक को खींचकर वह नागपुर से झांसी लाया था. वहां से ड्यूटी ऑफ करके उसने जी.टी. पकड़ ली. सुबह करीब पांच बजे वह घर पहुंचा तो थकान से उसकी नस-नस चटक रही थी. कटी पतंग-सा वह पलंग पर पसर गया. जैसे ही उसकी आंख लगी, दरवाजे पर दस्तक हुई.

भ्रम हुआ है उसे, उसने सोचा. वह चारपाई पर पड़ा रहा. तीसरी बार जाफरी के दरवाजे जोर से भडभड़ाये तो वह उठा. दरवाजा खोला. सामने था एक दुखद आश्चर्य. यह वास्तविकता थी या कोई दुःस्वप्न? वह सुनीता थी अथवा उसका कंकाल? तीन चार महीने में ही वह अस्थिपंजर मात्र रह गयी थी.

"सुनीता, तू... इस समय... अकेली?"

वह अंदर आ गयी. दीवाल से सहारा लगाए, सिर झुकाए, वह सलीब पर लटके ईसा-सी मौजूद थी. उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी. सुनीता के पास उसके हर प्रश्न का एक ही उत्तर था. पांव के नीचे पिचे, आहत केंचुए जैसा छटपटाता मौन. उसके सूखे होंठों में कंपन होता. गले की उभरी हड्डियों में सिहरन होती. रोती आंखों में अभिव्यक्ति की कोशिश उजागर होती. इस सारे अथक प्रयास के बावजूद उसकी अनमापी व्यथा को वाणी नहीं मिल पाती.

कई दिन तक वह सुनीता को कुरेदता रहा. पर कुछ पल्ले नहीं पड़ा. सिर्फ सुनीता की आंखों से ढुलके कुछ अश्रुकणों के. ठीक है.

> **उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि प्वांइटमैन ने कौन-सा कांटा घुमाया है और पता नहीं उसकी गाड़ी किस पटरी पर, कौन से स्टेशन की ओर दौड़ती जा रही है...?**

वह सुनीता के पति कौशल से पता करेगा. सुनीता के मामले में तो उसकी गाड़ी ठप्प हो गयी थी. एकदम कैंसिल ट्रिप की तरह. रैक साईडिंग में लगा दिया गया था.

अगली बार जब वह झांसी गया था तो उसे आधे घंटे का स्टॉप मिला था. उसने गाड़ी अपने असिस्टेंट को सौंपी. एस.एम. के पास गया कौशनल के घर जाने की इजाजत लेने. आधा घंटा ज्यादा भी लग गया तो क्या होगा! रेलवे अधिकारी जानते हैं कि जब शिवमूर्ति का मूड आता है तो भाप के इस दैत्य को वह ऐसे दाबता है कि झांसी और भोपाल के बीच आधा घंटा क्या, एक घंटा मेकअप कर लेता है, बस सिगनल बराबर मिलते रहने चाहिए.

एस.एम. से छुट्टी लेकर वह जैसे ही बाहर निकला, श्याम चौबे मिल गया. विचौलिया. कौशल का दोस्त. उसी से पता चल गया सारा रहस्य. कौशल दब्बू है. उसके मां-बाप कमीने हैं. उन लोगों ने सुनीता को दस दिन तक भूखा-प्यासा एक कमरे में बंद करके रखा. वे उसे मारकर, कौशल की दूसरी शादी करना चाहते थे. मौका पाकर सुनीता निकल भागी.

क्रोध और पीड़ा की मिलीजुली अनुभूति से उसके मस्तिष्क की शिराएं तन गयीं. वह बिगड़ा, "यह किस जन्म का बदला लिया श्याम? कहां फंसवा दिया मेरी इकलौती बेटी को?"

"अंकिल! मुझे नहीं मालूम था कि वे लोग इतने कमीने हैं."

वायलर के पानी की तरह उबलता हुआ वह इंजिन में लौट आया. खलासी को उसने हुक्म दिया कि भट्टी में और कोयले डाले.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

तकिया

सुनील हर्बोला

उसने अपने तकिये पर बेलबूटे काढ़ लिये, "उन्होंने लिख डाला अपने तकिये पर इसका नाम." कारण बतलाया गया– 'इससे संबंध मजबूत होते हैं, प्रेम बढ़ता है.' उन्होंने भावावेश में कल रात भींच डाला तकिये को अपने सीने में पूरी ताकत से, यहां तक कि बेचारे का दम घुट गया, आंखें बाहर को उबल पड़ीं."

उसने क्रोध में आकर घूंसे मारे तकिये की पीठ पर और शरीर पर यत्र-तत्र नाखून चुभोये दांत गड़ाये.

उन्होंने अस्त्र बनाकर दुश्मन पर दे फेंका तकिया.

उसने तकिये की ढाल बना ली और छिपा लिया खुद को उसकी आड़ में सुरक्षित.

उन्होंने सिर रखकर तकिये के पेट पर पुल बनाए कई ख्वाबों के, और बनाते-बिगाड़ते रहे कई ताने-बाने....

बेचारा तकिया...

उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया.

किसी को इतना वक्त ही नहीं मिला.

गोया वो तकिया न हुआ आम नागरिक हो गया. □

भट्टी धधक रही थी. लाल लपटें बाहर तक लपक रही थीं. टंकी का पानी उबल रहा था. भाप मचल रही थी. उसका संपूर्ण अस्तित्व इंजिन बन चुका था. आवेग की भाप ऊर्जा बन उसे, उन सबको रौंदने के लिए उकसा रही थी. तिस पर भी निष्क्रियता, कुछ न कर पाने की असमर्थता.

पूरी शक्ति लगाकर उसने रेगुलेटर को खोल दिया. उसकी माल गाड़ी पटरियों को रौंदती हुई, जख्मी शेर-सी चीत्कार करती भागी जा रही थी. लोहे की ऊंची सीट पर वह जमा था. उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, केवल सुनीता के निर्जीव, रस निचुड़े मुख के अतिरिक्त.

जिंदगी की गाड़ी फिर उसी पुराने ढर्रे पर आ गयी थी. वह ड्यूटी करने जाता. लौटकर घर आता. सुखिया की अनुपस्थिति. सुनीता की उपस्थिति. दोनों स्थितियां उसे समान रूप से कोंचतीं.

सुनीता के होठों से चिपका शाश्वत मौन. आंखों में डेरा डाले स्थायी गीलापन. एक अव्यक्त छटपटाहट. बहुत कुछ घट रहा था अंदर ही अंदर.

पर बाहर भी बहुत कुछ अप्रिय घट रहा था. जितने मुंह उतनी बातें. कपूर साहब की बीवी कहती फिरती थी– सुनीता चरित्रहीन है. तभी तो उसके मियां ने उसे घर से निकाल दिया. बारह नंबर वाले गोस्वामी जी ने अफवाह उड़ा दी कि कौशल तो पहले से ही शादीशुदा था, शिवमूर्ति ने व्यर्थ में अपनी लड़की को नरक में झोंक दिया. अड़ोस-पड़ोस की महिलाएं ताने कसतीं. ससुराल में निभाना पड़ता है. यह थोड़े ही कि सा-ससुर ने कुछ कहा और घर छोड़ के भाग लिये. पीहर में तो राजामहाराजाओं की लड़की भी नहीं खपती.

मौहल्ले के आवारा लड़कों की भी पौ बाहर हो गयी थीं. उनके डर से सुनीता घर के बाहर नहीं निकलती. वह सुनीता की अनकही व्यथा का प्रत्यक्षदर्शी था. ऐसे कैसे रनथ्रू चलेगी गाड़ी? कहीं तो 'हाल्ट' करना ही होगा.

वह कोई दूरगामी निर्णय करने की सोच ही रहा था कि एक बार फिर उसकी जिंदगी की गाड़ी पटरी से उतर गयी. पड़ोस की लड़कियां जबर्दस्ती सुनीता को रामलीला दिखाने ले गयीं. रावण फुंक गया. रात को वे लौटीं तो सुनीता उनके साथ नहीं थी. कहने लगीं, वह भीड़ में बिछुड़ गयी.

सुनीता ऐसी गायब हुई कि उसका कोई पता ही नहीं चला. कितना तलाश किया उसने! अखबारों, रेडियो और टी.वी. पर गुमशुदा का विज्ञापन दिया. पर कोई सफलता नहीं मिली.

किसी के साथ भाग गयी? या आत्महत्या कर ली उसने? पड़ोसियों की शंका में उठी उंगलियां. मित्रों की उपहासभरी पूछताछ. सब कुछ इतना क्रूर और निर्मम था कि भट्टी का स्टापर खोलने के बाद भी, लपटों के रू-ब-रू वह कांपता रहता था. घर एक अभिशप्त कब्रिस्तान बन चुका था. दीवाल पर चढ़ाई चंपा की बेल सूख गयी थी.

लोकोशेड से आती रोशनी की शहतीर. शंटिंग करते इंजिन की सीटी की आवाज. भाप निकलने की सूंसूं. लोहे की पटरियों का भिच दब कर कूंकूं क्रंदन. ये सारी आवाजें जानी पहचानी थीं. अतीत की धूलभरी गलियों से गुजरता हुआ आखिर वह स्टेशन पहुंच गया था.

न जाने कितने वर्षों के बाद आज पहली बार वह अपने अंदर से निकलकर बाहर आ गया था और एक तटस्थ दर्शक-सा वह अपने आपको देख रहा था. बीते दिनों की उड़ी धूल ने उसकी दृष्टि के सामने अस्पष्टता का धुंधला पर्दा अवश्य टांक दिया था, पर वही अपनी जिंदगी की दुर्घटनाग्रस्त गाड़ी का मलवा स्पष्ट देख पा रहा था. काफी विनाश हुआ था, उसकी चतुर ड्राइवरी के बावजूद.

जैसे ही वह हाजिरी के रजिस्टर में दस्तखत कर, एस.एम. के आफिस के बाहर आया, रामधन खलासी ने पूछा, "क्या हालचाल हैं अंकिल? आज तो बड़ी सर्दी है!"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया. एक नंबर प्लेटफार्म जनशून्य था. उसने दूर तक दृष्टि पसारी. सात नंबर पर उसकी गाड़ी खड़ी थी.

"डिवीजनल आफिस से आपके लिए एक लैटर है," कहकर रामधन ने एक पीला लंबा लिफाफा उसे थमा दिया.

उसने पीला लिफाफा खोला. संदेश पढ़ा. प्रथम प्रतिक्रिया अतिरंजित थी. व्यक्त नहीं की. सिर्फ बुदबुदाया, 'बूढ़े तोतों को पढ़ायेंगे.. ऊंह.. देखा जाएगा.. नागपुर से लौटकर, मिल लूंगा.'

"क्या बात है?" रामधन ने उत्सुकतापूर्वक पूछा.

"कुछ नहीं," कहकर उसने स्टेशन की बड़ी घड़ी की ओर देखा और बोला, "चलो. डिपार्चर टाइम हो गया."

वे दोनों लोकोशेड की ओर बढ़ गये. उसने अनुराग भरी दृष्टि से अपने मित्र 'गुंजन' को देखा. फिर वह ऊपर चढ़ा. भाप चैक की. पानी स्तर और कोयले का स्टॉक जांचा. ब्रेक, इंजेक्टर्स तथा डेंपर्स की परीक्षा की. वह संतुष्ट हो गया. उसका साथी 'गुंजन' यात्रा के लिए चुस्त-दुरुस्त था. वह अपनी लोहे की सीट पर जम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया. खलासी भट्टी में कोयले झोंक रहा था.

असिस्टैंट ने सिगनल होने की सूचना दी तो यंत्रवत उसने सीटी के लीवर से बंधी डोरी खींच ली. एक लंबी सीटी बजी. गार्ड ने भी हरी बत्ती हिला दी. उसने एक संक्षिप्त-सी सीटी बजायी, हैंड ब्रेक को मुक्त किया और साथ ही रेगुलेटर को ऊपर उठा दिया. रैक्स की खटरपटर का तेज स्वर उठा और रात की नीरवता भंग हो गयी. आउटर से निकलते ही मालगाड़ी ने तेज रफ्तार पकड़ ली. साथ ही उसकी जिंदगी की उलटी हुई गाड़ी के मलबे से उसका कीमती सामान निकल आया.

एक सुबह वह जम्मू से गाड़ी लेकर लौटा था. वह घर पहुंचा तो देखा, बाहर, जाफरी से पीठ टिकाए सुनीता बैठी है. उसकी गोद में सात-आठ महीने का एक मरियल-सा बच्चा भी था. वह फ्रीज शाट-सा अचल रह गया.

उसने ताला खोला. सुनीता को अंदर किया. पीछे-पीछे वह था. बच्चे को चारपाई पर लिटा, उससे लिपट, सुनीता बुक्का मारकर रो पड़ी. एकदम जंगली जानवरों से संत्रस्त मृगशावक-सी.

"तू कहां चली गयी थी? कहां रही इतने दिन? किसका पाप लेकर आयी है तू?" उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी.

सुनीता के पास कोई उत्तर नहीं था. उसके प्रश्न सुनीता के आंसुओं की बाढ़ और हिचकियों के झंझावात में खो गये.

सलीब पर टांके जाने की वह एक और शुरुआत थी. सबकी नजरों में सुनीता कुलटा और कलंकिनी बन चुकी थी उसने अपनी चरित्रहीन बेटी को आश्रय देकर जनमत की अवमानना की थी. हरेक यही कहता— पाप की गठरी को लेकर बाप की छाती पर मूंग दलने से तो अच्छा था, कहीं कुआं जमुना में कूद जाती कुलच्छनी!

दहकते अंगारों से ये शब्द उसके अंतर को दग्ध करते. मूक साक्षी बने रहना उसकी नियति थी. गाड़ी को दबाकर चलाए रखना उसकी कला थी.

"इसका बाप कहां है, सुनीता?" जब मौका मिलता, वह यह प्रश्न पूछ लेता.

एक दिन सुनीता थोड़ी सामान्य थी. उसने अपना प्रश्न दोहराया तो उसके चेहरे पर घृणा के भाव तैर गये. वह बोली, "बापू, रामलीला मैदान में रावण फुंक रहा था. उधर, गिरजाघर से सटे कब्रिस्तान में दसमुखा एक और रावण मेरी पवित्रता की सीता का हरण कर रहा था. हां, वह एक सामूहिक कुकृत्य था. कई थे. किसकिस का नाम लूं? उससे क्या बनेगा? ऐसे कुकर्मियों का न नाम होता है, न हुलिया?"

"पर इत्ते दिन तक तू रही कहां?"

"खोटे सिक्के-सी एक हाथ से दूसरे हाथ में फिसलती रही..."

उसके सामने जीवंत पीड़ा उघड़ी पड़ी थी. बाप का घर ही ऐसी जगह होती है जहां जिंदगी की तमाम कटुताओं, पीड़ाओं और अपमानों को मुंह छिपाने की जगह मिल जाती है.

आगे कुछ करने के लिए बचा ही क्या था? अक्सर ही ऐसा होता है कि जिंदगी जो कुछ विषाक्त कड़वाहट देती है, उसे अंजुली में भरकर, गले के नीचे गटकने के अलावा और कोई चारा नहीं होता.

"ग्वालियर आउटर पर लाल सिगनल है!" असिस्टैंट ने कहा तो यंत्रवत् उसके हाथ ब्रेक पर पहुंच गये. गाड़ी की रफ्तार धीमी हो गयी. आउटर के पास पहुंच गाड़ी रुक गयी. देर तक खड़ी रही.

उसकी जिंदगी की गाड़ी भी तो वर्षों तक उसी आउटर पर खड़ी रही. वह सुनीता के बच्चे को देखता, उसके अंतर में वात्सल्य रस का संचार होता. उसे गोद में लेते ही उसे बड़ी लिजलिजी-सी अनुभूति होती. हरा सिगनल हुआ. उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी. पर एक बार पटरी पर फिर से चढ़ी उसकी जिंदगी की गाड़ी दूसरी या तीसरी बार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी. नियति का आतंकवाद. फिशप्लेटें निकाल दीं. गाड़ी उधर से गुजरी और उलट गयी. हेगमी के रंगीले दिनों में सुनीता अपने बच्चे को ले, के.के. ऐक्सप्रेस के सामने कूद गयी. कैसी विनाश की होली खेली थी कम्बख्त ने!

ग्वालियर पर एक घंटे रुकने के बाद वह अपने अगले सफर पर रवाना हो गया.

अगले दिन नागपुर से लौटता हुआ. वह झांसी पर रुका. दो घंटे का स्टाप था. इंजिन से निकालकर वह सीधा डिवीजनल सुपरिंटेंडेंट के दफ्तर में पहुंच गया.

सौभाग्यवश साहब मौजूद थे. वह बोला, "सर, यह कैसा आर्डर है? अब इस उम्र में डीजल इंजिन चला पाऊंगा मैं?"

"इसीलिए तुम्हें तीन हफ्ते की ट्रेनिंग के लिए बड़ोदरा भेजा जा रहा है. अब कोयलों की जगह बिजली तथा डीजल के इंजिन प्रयोग में लाये जायेंगे. समझे!"

वह सोचने लगा— भाप का इंजिन! दैत्य-सा शक्तिशाली होता है! उसके सामने डीजल या बिजली के इंजिन खिलौने हैं!

"साहब, मैं इस टेनिंग पर नहीं जा सकूंगा," उसने शांत स्वर में कहा.

"शिवमूर्ति, तुम्हें बीस तारीख को रेलवे स्टॉफ कालिज में रिपोर्ट करना है. भाप का इंजिन आउट आफ डेट हो चुका है. अब हमें नयी टैक्नोलोजी को प्रयोग में लाना होगा."

सुपरिंटेंडेंट के निर्णायक स्वर ने उसे निरस्त्र कर दिया. लाचार-सा वह उनके कमरे से बाहर आ गया. उनका प्यारा 'गुंजन' 'आउट आफ डेट' हो चुका है तो वह कौन सा 'अप टू डेट' है? अब गुंजन भी बिगड़ जायेगा.

करीब एक बजे रात वह आगरा पहुंचा. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि पाइंटमैन ने कौन-सा कांटा घुमाया है और पता नहीं, उसकी गाड़ी किस पटरी पर, कौन से स्टेशन की ओर दौड़ती जा रही है? सर्पदंश से आहत-सा, वह सोच रहा था— वह इंजिन में सवार तो है. पर चालक वह नहीं, कोई और है. शायद यह चालक लापरवाह है. न पटरी की चिंता, न सिगनल की परवाह.

वह घर पहुंचा. कोयले की कालिमा से आवृत वह, बिना नहाए धोए, बिना रोटी खाए, चारपाई पर पसर गया. वह बड़ोदरा नहीं जायेगा, उसने फैसला कर लिया. मालगाड़ी का सफर कितना त्रासद होता है, बड़ी शिद्दत से उसने महसूस किया. भारहीन, उन्मुक्त-सा वह सो गया— गहरी नींद में.

अगले दिन सुबह-चटकीली धूप खिली. बर्तन मांजने वाली मांजी आयी. दरवाजा खटखटाया. कोई उत्तर नहीं मिला. पड़ोस में काम करने चली गयी. एक घंटे बाद लौटी. फिर दरवाजे पर दस्तक दी. इस बार भी कोई उत्तर नहीं निकला.

माई ने पड़ोसियों को सूचना दी. आशंका से आक्रांत पड़ोसियों ने दरवाजा तोड़ डाला. वे अंदर गये. शिवमूर्ति पलंग पर पड़ा गहरी नींद में सो रहा था. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ सुनील श्रीवास्तव

पापा

''पापा! पापा! ....''
कानों में कोयल की कूक महसूस होती है.

नन्हें-नन्हें लबों पर थिरकते मासूम मुस्कान के बीच से निकले इस दो अक्षर के बोल सुनने के लिए मन कितना समय से तरस रहा था.

मैं खो जाता हूं, अपनी डेढ़ वर्ष की बेटी कीशू की मासूम छवि की कल्पना में—उस कल्पना में स्पष्ट दिख रहे निर्दोष आंखों की पुतली में.

इस पुतली में किसकी छवि कैद है? स्नेहासिक्त आंखें, मुस्कराते होंठ, अंक में लेने को आतुर फैले हुए दो हाथ—ये मैं हूं.

ओह, यह लड़की भी अजंता की गुफा में चित्रित राजकुमारी जैसी ही है, लेकिन उस राजकुमारी जैसे मुख पर दुख, शोक, करुणा, निराशा की स्पष्ट छाया दिखती है... कैसी है यह लड़की...?

कीशू बेटे, डेढ़ महीने के अंतराल के बावजूद यह छाया तुम्हारी आंखों में समायी हुई है? जरा भी धूमिल नहीं हुई है यह? इन डेढ़ महीनों में तुम मुझे सारे घर में ढूंढती रही होगी, तुम्हारी आंखें जिस ओर भी उठती रही होंगी, मेरी ही आशा में. हर लम्हा तुम्हारे लब 'पापा' कहने का प्रयत्न करते रहे होंगे—लेकिन लब से फुसफुसाहट ही निकलती रही होगी और तब तुम झुंझलाकर उस एक अक्षर के शब्द बोल पड़ती रही होगी—जिसे तुम काफी पहले से बोलने में समर्थ थी-''मां!''

और फिर परसों तुम्हारे होंठ अपने प्रयत्न में सफल हो गये होंगे. 'पापा'-तुम्हारे लब से यह शब्द निकला होगा और इसे सुनकर अमिता झूम उठी होगी—''मेरी बेटी, मेरी लाड़ली कीशू, आज तूने 'पापा' कहा. 'पापा' की याद है तुझे! डेढ़ सौ मील दूर बैठे तेरे पापा भी हर समय तुझे ही याद करते रहते हैं.

देख, यह ढेर सारी चिट्ठियां— कीशू, कीशू, कीशू, कीशू................ हर जगह यही भरा रहता है.''

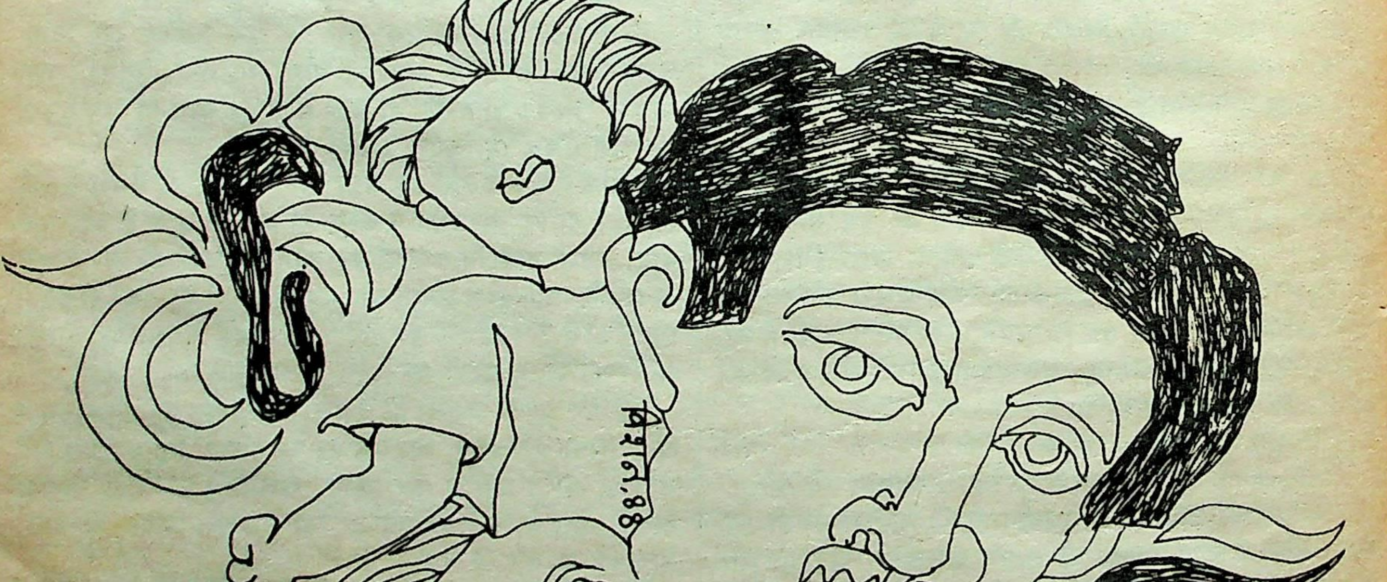

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कीशू, कीशू, कीशू............" के स्वर मेरे होंठों से निकलने लगते हैं. मेरा स्वप्न भंग हो जाता है. मेरे सामने आज आया अमिता का पत्र पड़ा है.

यह स्वप्न हो सकता है, लेकिन कानों में गूंजे 'पापा' के मधुर बोल स्वप्न के स्वर कतई नहीं हो सकते. डेढ़ सौ मील दूर से निकली हुलास भरी यह पुकार अपनी पूरी मिठास के साथ मेरे कानों में तैर रही है—प्रकृति द्वारा निर्मित बेतार के तार से आयी है क्या ये आवाज?

यह लफ्ज केवल लफ्ज नहीं है—इसका एक जीवंत रूप भी है. मेरे मस्तिष्क की दीवारों से यह शब्द बार-बार आकर टकराता है और हर बार कीशू की नयी-नयी छवियां उत्पन्न करता है. एक-दो-नहीं, हजारों हजार, भिन्न-भिन्न रूपों में. यह रूप मुझे खयालों-ख्वाबों में डुबो देता है, वर्तमान के वजूद को भुला देता है.

"पापा!" तभी कान में एक तीखी आवाज गूंजी.

यह यतिभंग कैसे? सितार की झंकार से निकली मधुर सप्त स्वर लहरियों के बीच यह टूटे साज की बेसुरी आवाज कैसे?

मैंने देखा, एक छोटी-सी अपंग लड़की आयी और कीशू की निर्मल छवियों के मध्य खड़ी हो गयी.

छोटी-सी लड़की और इतना रुखा स्वर—चेहरे पर अबोधता नहीं, आंखों में मासूमियत नहीं.

"पापा!"

मनहूस लबों के बीच से निकले इस दो अक्षर के शब्द में एक झटके से उस कल्पना को झकझोर दिये, जिसे कुछ क्षणों पूर्व इस शब्द ने ही जगाये थे.

"खामोश!" मैं पूरी ताकत से चिल्लाया.

भिखमंगों की जमात में बैठी एक अपंग लड़की पर मैं दया दिखा सकता हूं. उसे अपने घर की देहली भी दिखा सकता हूं, परंतु उस देहली पर खिंची लक्ष्मण-रेखा को पार करने का मंत्र उसे कतई नहीं दे सकता.

तो फिर यह यहां आकर कीशू के बगल में कैसे खड़ी हो गयी और मुझे उन शब्दों से पुकारने लगी जिन्हें कहने का हक केवल कीशू के नन्हे-नन्हें होंठों को है.

कहीं यह लड़की अपने घर का रास्ता भूलकर तो यहां नहीं आ गयी है—मैंने एक क्षण के लिए सोचा. लेकिन नहीं, चंद महीनों पहले खुली उसकी आंखें भले ही झोंपड़ी और भवन के मध्य भेद न स्थापित कर सकती हों, बंद आंखों से भी, केवल हाथ के स्पर्श से ही, वह अपने आत्मीय स्वजनों को लाखों की भीड़ में पहचान सकती है. इसके अलावा उसके चेहरे पर तनिक भी घबराहट न थी, बल्कि मुझे तो उसकी आंखों में वैसी ही निश्चितता की झलक दिखी, जैसे कि बहुत देर तक भुलाये रहने के बाद घर पहुंचने वाले बच्चे की आंखों में रहती है.

"पापा," उसके स्वर में एक विश्वास की झलक दिखी.

उसकी आंखों की निश्चितता व उसके स्वर में छिपे दृढ़ विश्वास ने मुझमें क्रोध की लहरें उत्पन्न कर दीं.

"खामोश लड़की! तेरी निगाहों में न जाने कैसा टोना है, दूर हो जा, नहीं तो तेरी निगाहों का सर्प मेरी कीशू की खुशी को डस लेगा."

जमदग्नि के क्रोध की जैसे पूरी उपेक्षा. उसकी आंखों में जैसे भय के स्थान पर दुख भरा विस्मय उत्पन्न हो गया.

कभी-कभी आंखों से भी शब्द निकलते हैं. मैंने स्पष्ट सुना.

"लेकिन मेरी खुशी को किसने डसा है?"

लेकिन उसके होंठ सिर्फ धीरे से हिलकर 'पापा' ही कह पाये थे.

आंखों के शब्दों ने होंठों के शब्दों की कड़ुवाहट को कुछ धीमा कर दिया.

दिन के तेज प्रकार में चौराहों पर लगी अनाथ बच्चों की भीड़ के समक्ष या संसद के सामने अपने अधिकार मांगते अनाथ बच्चों के जमाव के समक्ष मैं इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न कर सकता हूं, कम से कम उनके क्षीण स्वर में पूछे प्रश्न को मैं अपनी तेज आवाज से उद्घोषित कर चारों दिशाओं में गूंजा सकता हूं, परंतु रात के इस घटाटोप अंधकार और निस्तब्ध एकांत में इस लड़की द्वारा पूछा गया यह निर्दोष प्रश्न समस्त संसार के आगे मुझे अविश्वासी बना देता है.

अत्यंत क्रोध से मैंने उन हाथों से, जिनसे मैं कुछ क्षणों पूर्व ही कीशू को उठाये था, उस लड़की को दूर धकेल दिया.

लड़की दूर जाकर गिर गयी, फिर संभल कर उठी. मैंने घृणा से उसकी आंखों में देखा. हठात् मैं स्तब्ध रह गया. उसकी पथरायी आंखों में जैसे एक प्रश्न जड़ हो गया था, "मैंने ऐसा क्या कह दिया है जिससे तुम इतना रंज हो गये हो. तुम सिर्फ कीशू के पापा ही हो सकते सही, लेकिन क्या तुम्हारा सारा प्यार, सारा स्नेह भी कीशू के इर्द-गिर्द ही संकुचित हो गया है."

पथरायी आखों में स्थिर प्रश्न को मिटाने के लिए उसके मासूम हृदय ने मानो उसके आश्रुग्रंथियों को संकेत किया. लेकिन उसके आंखों से झरते आंसू की बूंदों ने उन प्रश्नों को आंख से मिटाने के स्थान पर उन्हें और भी अधिक स्पष्ट बना दिया. परंतु आंसुओं ने मेरी आंखों को स्वच्छ कर दिया.

मेरे दिल में यह एहसास होता है.

इसके बाल उलझे हैं, क्या इसीलिए कि कभी, किसी ने इसे प्यार से सहलाया नहीं हैं, भाल रुखड़े हैं, क्या इसलिए कि कभी इन पर स्नेहास्पर्श नहीं हुआ है, गाल धंसे हैं क्या इसलिए कि इस पर कभी पप्पी नहीं मिली है, आखें चमकविहीन हैं, क्या इसलिए कि किसी की आंखों में अपने लिए प्यार नहीं देखा है.

हां, इसीलिए.

इसके लब खामोश हैं, क्योंकि इससे कभी मुस्कान नहीं निकली है. जुबां शुष्क है, क्योंकि स्नेह संबोधन के लिए कोई अपना नही है, कान सुन्न हैं, किसी की चुमकार न सुनने के कारण, हाथ बेजान हैं, किसी के गले में झूल न पाने के कारण, पांव टेढ़े हैं, किसी को अपनी ठुमक न दिखा पाने के कारण!!

"ओफ ओह!" मेरे होंठों से निकला.

"पापा." उसके होंठ मानो धीरे से हिले.

"बेटे." मेरे हाथ अनायास उसकी ओर बढ़ गये.

लड़की के होंठों पर किलकारी गूंजी, लेकिन वह तुरंत वापस मुड़ गयी. लेकिन इस वापस मुड़ने मे उसके द्वारा मेरी उपेक्षा न थी क्योंकि जाती हुई लड़की की पदचापों में मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहा था—"मैं कीशू का अधिकार मांगने नहीं आयी थी. तुम्हारी आंखों में हर समय उसके लिए वात्सलयता भरी रहे, मैं तो केवल यह चाहती हूं कि उन्हीं आंखों से कभी एक बार, हमारी ओर भी देख लिया करो—हम उसी से निहाल हो जायेंगे."

ओह यह लड़की भी अजंता की गुफा में चित्रित राजकुमारी जैसी ही है, लेकिन उस राजकुमारी जैसी जिसके मुख पर दुख, शोक, करुणा, निराशा, की स्पष्ट छाया दिखती है.

पता नहीं कौन-सा कलाकार कब आकर अपनी कूची से दुख की इस छाया को खुशी के भावों में परिवर्तित करेगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोके की टट्टी

लाल मिर्च देखने में कैसी खूबसूरत होती है, मगर खाने में कैसी कड़वी. सुरिंदू की भी यही कैफियत थी, देखने में बहुत खुशवजा (परंपरा पर दृढ़), खुशलिबास (चारु वेष), जबान का बहुत मीठा, दोस्तों में बहुत हर दिल अजीज, मगर बला का नफसपरवर (विषय-लोलुप, ऐयाश), बदइख्लाक, शरीर (उपद्रवी). मदरसे की एंट्रेंस जमात में पढ़ता था. सिन (आयु) 16 साल से

प्रेमचंद के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की खोज का कार्य तब आरंभ हुआ, जब मैंने 'प्रेमचंद विश्वकोश' पर काम शुरू किया. उस समय तक अमृतराय द्वारा खोजे गए अप्राप्य साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं. उन पुस्तकों में 'गुप्तधन' नाम से दो खंडों में प्रकाशित पुस्तक भी थी, जिसमें प्रेमचंद की 56 अज्ञात एवं अप्राप्य कहानियां संकलित थीं. इन कहानियों के बाद मैंने यह कल्पना नहीं की थी कि प्रेमचंद की कुछ कहानियां अमृतराय की दृष्टि से भी ओझल रह जायेंगी, परंतु जब मैंने खोज का काम पूर्ण किया तब तक मेरे हाथ में प्रेमचंद की 30 अज्ञात कहानियां आ चुकी थीं. इन कहानियों में से ही एक कहानी 'धोके की टट्टी' यहां प्रस्तुत की जा रही है.

प्रेमचंद की यह कहानी 'धोके की टट्टी' हिंदी पाठकों के लिए सर्वथा नयी कहानी है, क्योंकि इसका प्रकाशन उर्दू में हुआ था और प्रेमचंद ने इसका हिंदी रूप प्रकाशित किया या नहीं, इसका कोई प्रमाण अब उपलब्ध नहीं है. प्रेमचंद की बहुत-सी ऐसी कहानियां हैं जो केवल उर्दू में ही प्रकाशित हुई थीं. यह कहानी भी इसी प्रकार की हो सकती है कि प्रेमचंद को इसका हिंदी रूप तैयार करने का समय न मिला हो या उन्होंने इसका हिंदी पाठ तैयार करना उचित ही न समझा हो. बहरहाल, यह कहानी उर्दू की मासिक पत्रिका 'अदीब' के नवंबर, 1912 के अंक में प्रकाशित हुई थी और यहां इस उर्दू कहानी का हिंदी लिप्यंतर प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे कहानी के मूल पाठ को बनाये रखा जा सके.

कहानी कला की दृष्टि से चाहे उल्लेखनीय न हो, परंतु अपनी विषय-वस्तु के कारण यह ऐतिहासिक महत्व रखती है. कहानी इसका प्रमाण है कि स्कूल एवं कॉलेजों में लफंगों, शोहदों का छात्र वर्ग में प्रवेश हो गया था और वे यूनियन बनाकर अध्यापकों तथा परीक्षा-प्रणाली को भ्रष्ट करके अपने अनुकूल बना चुके थे. उस समय के छात्रों में शराब, जुआ, वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयां घर कर चुकी थीं और ऐसे छात्र अपने प्रेम-जाल में रोहिणी जैसी शिक्षिता को भी फंसाने में सफल हो गये थे. प्रस्तुत कहानी उस समय की युवा पीढ़ी तथा शिक्षा प्रणाली की अनजानी कहानी प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में रख देती है. आज देश के स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में जो यूनियनबाजी, छात्र एवं अध्यापकों का पतन, परीक्षा-प्रणाली में भ्रष्टाचार, छात्रों में शराब, जुआ आदि की जो भयावह बुराइयां दिखायी देती हैं, उसके इतिहास तथा उसके कारणों को जाने-समझने के लिए इस कहानी को आधार बनाया जा सकता है. □

प्रस्तुति : कमलकिशोर गोयनका

जियादा न थी, मगर मिजाज में अभी से आवारगी का दखल हो चला था. शराब की लज्जतों (मजे, लुत्फ) से जबान मानूस) (भयमुक्त) हो चुकी थी और घर के संदूक खोलकर रुपये चुरा लेना तो एक मामूली बात थी. वाल्देन समझा-बुझाकर हार गये, स्कूल मास्टरों ने मारपीट, जुर्माना, सब कुछ अजमा देखा, मगर सुरिंदू ने जो रविश (चाल-चलन, आचार-व्यवहार) अख्तियार की थी, उसमें जरा भी न मुड़ा. शहर में कहीं बरात आये, कहीं नाच हो, कहीं ऐशो-तरब (भोग-विलास एवं आनंद) की महफिल सजे, सुरिंदू का वहां पहुंचना शर्ती अम्र (अनिवार्य कार्य) था. उसे कभी किसी ने किताब पढ़ते न देखा, मगर ताज्जुब यह था कि वह हर साल इम्तिहान में कामयाब हो जाता था. इसका राज वजज (अतिरिक्त) उसके खास दोस्तों के और कोई न जानता था. हां, इम्तिहान के दिनों में वह हेडमास्टर और दीगर मास्टरों के मुलाजिमों से जियादा रब्तोजब्त (मित्रता) कर लेता. आम वाल्देन उस वक्त तक लड़कों की तरफ से मायूस नहीं होते, जब तक वो एक ही दर्जे में बराबर फेल न हों. सुरिंदू ये नौबत नहीं आने देता था और इसलिए उसके वालिद, जो एक बहुत मुत्मइन (बेफिक्र) आदमी थे, उससे जियादा बाजपुर्स (पूछताछ) न करते. सुरिंदू में एक बड़ा वस्फ (गुण) यह था कि उसकी निगाह इंसान के कमजोर हिस्से पर बहुत जल्द आ पहुंचती थी और इस वस्फ से उसका बहुत काम निकलता. कोई स्कूल मास्टर ऐसा न था, जिसके दाग और धब्बे उस पर रोशन न हों. इस गुर ने उसे एंट्रेंस तक निभाहा. यहां तक कि एंट्रेंस का सालाना इम्तिहान आया, सुरिंदू ने उस मौके के लिए बड़े एहतिमाम (प्रबंध) किये थे. सब स्कूल मास्टर उसके खैर अंदेश (शुभचिंतक) बन गये थे. कामयाबी की सब सूरतें उसके मुआफिक (अनुकूल) थीं. मगर ऐन उस वक्त जबकि उसकी दुज्दीदी निगाहें (चुराई गई नजरें) दौड़-दौड़कर बरसों का काम लम्हों में पूरा किये देती थीं, एक गरजती हुई आवाज उसके कान में आयी, "सुरिंदू, कलम रख दो. तुम्हें अब लिखने की इजाजत नहीं है." सुरिंदू ने माथा पीट लिया. यह हेडमास्टर साहब थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इश्तहारी मुज्रिम गिरफ्तार हो गया और उसका नाम स्कूल से खारिज कर दिया गया.

सुरिंद्र के लिए अब वजज (अतिरिक्त) इसके और कोई चारा न था कि कहीं और तालीम का सिलसिला कायम करे, मगर इस हादिसे ने उसके दिल पर कोई इस्लाह बख्श (सुधारपूर्ण) असर नहीं पैदा किया. इसने तो मुंह मांगी मुराद पायी. उसे अब नयी दुनिया देखने का, नयी दिलचस्पियों के लुत्फ उठाने का, नये दोस्तों की सोहबत का मौका हाथ आया. किसी दूसरी सूरत में ये आरज़ुएं मुश्किल से पूरी होतीं. अब वो खुद-ब-खुद उसके रूबरू दस्तबस्ता (हाथ बांधे हुए) खड़ी थीं. वह जिस वक्त मदरसे से चला, उसका चेहरा कुछ तमतमाया हुआ था, मगर ये गुस्सा बहुत जल्द ठंडा हो गया. खुश होकर कहा, "मुल्क के खुदा तंगनेस्त (ईश्वर की सृष्टि इतनी संकुचित नहीं है)." लेकिन अब कलकत्ता यूनिवर्सिटी में दाखिला गैर-मुम्किन था और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में कोई सूरत न निकली, इसलिए सीधा लाहौर जा पहुंचा और वहां एक मदरसे में शरीक हो गया. क्रिकेट का जबरदस्त खिलाड़ी, फुटबॉल में मुशाक (सिद्धहस्त), शक्लो-सूरत का जेंटलमैन, फराखदिल (दिल खोलकर खर्च करने वाला), बुलंद हौसला. ऐसा तालिबे इल्म (विद्यार्थी) जहां जाये, उसे दोस्तों की कमी न रहेगी. लाहौर में बहुत जल्द दोस्तों की काफी तादाद हो गयी. और फिर वही चहचहे और कहकहे उड़ने लगे, मगर जरा एतिआत के साथ, शर्म का पर्दा रखे हुए. सुबह को बागों की सैर, शाम को क्रिकेट और फुटबॉल. रात को रिंदी-ओ-मेनोशी (शराब के दौर), फिर तरन्नुम परवाजियों के मश्गले (वेश्या-नृत्यों में तल्लीनता). कभी-कभी इन्हीं अश्गाल (धंधों) में रातें गुजर जातीं, मगर ये सब आजादियां और मस्तियां चंद वर्जिदा (अभ्यस्त) मोत्तमद (विश्वासी) अहबाब (मित्रों) तक महदूद थीं, वरना आमतौर पर ये हजरत बहुत फिरिश्ता सिफत (दैवीय गुण संपन्न), मोहतात (संभलकर चलने वाला), हलीम-ओ-सलीम (सहनशील एवं शांतिप्रिय) मशहूर थे. यहां तक कि कॉलेज के 'प्रिंसिपल मि. काटन, जब कि लड़कियों के मदरसे का मुआइना करने जाते तो कभी-कभी, सुरिंद्र को अपनी इम्दाद के लिए साथ ले जाते. मुबारक होता वो दिन जब बांका, सजीला सुरिंद्र लड़कियों के मदरसे में दाखिल होता. हेड मिस्ट्रेस मिस गुप्ता का मुस्कराकर उससे हाथ मिलाना, आह! उस कफे बलोरीन (नर्म हथेलियों) का उसके हाथ में आना, आंखों में नशे के एक तूफान का आना था. उसका दिल उमंग से फूल उठता और दिल की फरहत (प्रसन्नता) और शिगुफ्तगी (खिलावट) उसकी सूरते जेबा (मनोरम आकृति) का रंग और भी चोखा कर देती. फिर ये एक कुदरती बात थी कि मिस गुप्ता को उसकी होनेवाली बीवी पर रश्क आता.

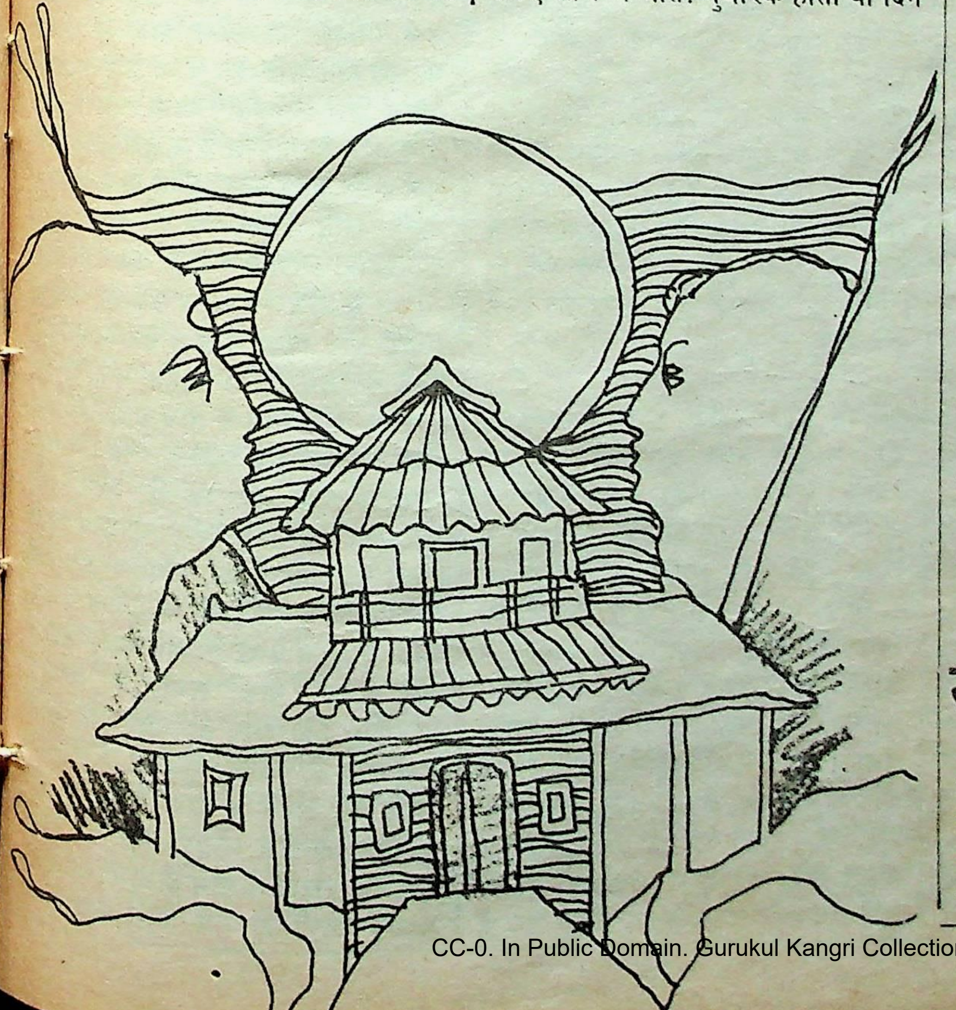

एक दिन सुरिंद्र कॉलेज से आ रहा था कि कलकत्ता के एक पुराने रफीक (दोस्त) से आंखें चार हुईं. ये बाबू हरिमोहन थे. उन्हें देखते ही सुरिंद्र का खून सर्द हो गया. हरिमोहन उसकी नाहमवारियों (आशिष्टताओं, उजड्डपन) के करिश्मे अपनी आंखों से देख चुके थे. बहुत घबराया, मगर तपाक से बढ़कर सलाम किया और खैरोआफियत पूछीं. हरिमोहन ने उसे सिर से पैर तक बगौर देखा. खाका वही था, मगर रंग नया. कुछ इधर-उधर की बातें हुईं. जब अलेहदा होने लगे तो सुरिंद्र ने बहुत मिन्नत-आमेज लहजे में कहा, "भाई साहब, जिसे खुदा ने खराब बनाया है, वह कभी अच्छा नहीं हो सकता. मैंने बहुत कोशिश की कि नेकबख्त बन जाऊं, मगर ना बन सका. हां, नेकबाजी की शोहरत हासिल कर ली. यहां बजज आपके कोई दूसरा मेरे हालात से वाकिफ नहीं है. इसलिए मुझ गरीब पर नजरे इनायत रखियेगा. आप चाहें तो बात की बात में मेरा रंग फीका कर सकते हैं. मैं बिल्कुल आपके बस में हूं, मगर मुझे आप पर भरोसा है. आपको मैं हमेशा अपना बुजुर्ग और खैरअंदेश समझता रहा हूं."

सुरिंद्र की बारीक निगाहें हरिमोहन के कमजोर हिस्से पर जा पहुंची. उनके चेहरे पर हमदर्दाना (सहानुभूतिपूर्ण) मुस्कराहट नजर आयी. बोले, "मुझे तुम हमेशा अपना दोस्त समझना."

सुरिंद्र ने लाहौर में एक बड़ा काम सर अंजाम दिया. उसने एक 'यंगमैन यूनियन' कायम कर ली और खुद उसका सेक्रेटरी बन बैठा. इस यूनियन के मकासद (उद्देश्य) बहुत आला थे— नौजवानों के आदाब-ओ-इख्लाक की तहजीब, इल्मी और अमली तरक्की,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्तिफाके बाहमी (पारस्परिक एकता और मैत्री) की इशाअत (प्रचार-प्रसार) बगैरा. मेंबरों को कुछ माहवारी चंदा देना पड़ता और अज रुए हल्फ (शपथ के अनुसार) इकरार करना पड़ता कि मैं इस यूनियन के किसी मेंबर को किसी आफत में देखूंगा तो हर मुमकिन सूरत से उसकी मदद करूंगा. चंदा की रकम से चंद अखबार आते और जो कुछ बचता वो कारेखैर (भलाई के कामों) में सर्फ होता. इस काम में सुरिंद्र को शानदार कामयाबी हासिल हुई. एक माह के अंदर यूनियन में से जियादा मेंबर हो गये. पच्चीस रुपये माहवार चंदा आने लगा. पांच यतीमों और कई बेवाओं की परवरिश होने लगी. इस कामयाबी का सेहरा मिस्टर सेक्रेटरी के सिर था, जिसकी शोहरत दिन दूनी और रात चौगुनी हुई जाती थी. प्रिंसिपल कॉटन उसे पहले ही से मानते थे, अब मुरीद (भक्त) हो गये. शहर में भी यूनियन का चर्चा होने लगा, मगर ये शानदार नाम का यूनियन बजज शोहदों की एक जमात के और कुछ नहीं था. मुख्तलिफ कॉलेजों के जितने औबाश (लंपट लोग, शोहदे), आवारा मिजाज, बदवजा (अशिष्ट शील-स्वभाव), बदकुमाश (दुराचारी), सैलानी तुलबा (विद्यार्थीगण) ये सब इसके मेंबर थे. यूनियन का कमरा उनकी दिलबस्तगियों (मनोरंजन) का अखाड़ा था. यहां वो गाते-बजाते और यहां ही रिंदाना मजलिसें आरास्ता होतीं, क्यूंकि फने-मौसीकी (संगीत-कला) की इशाअत में (प्रचार-प्रसार) भी यूनियन के सारे मेंबर सुरिंद्र को अपना रहबर और पेशवा तस्लीम करते थे. उसने हरेक के दिल में यह बात जमा दी थी कि अगर तुम्हें बिला मेहनत और मशक्कत (कष्ट) के इम्तिहान पास करना चाहते हो तो वजज इसके कोई इलाज नहीं कि यूनियन के रुकन (सदस्य) बन जाओ. सुरिंद्र इम्तहानी पर्चों की सुरागरसानी में यदेतूली (अत्यधिक कुशल) था और यही उसके असर और दबाव का राज था. कॉलेज में सुरिंद्र की वही इज्जत थी जो किसी प्रोफेसर की. शहर में उसके आगे अच्छे-अच्छों के सिर झुक जाते थे, चूंकि कई बार उसे इस माकूला के अमली सबूत देने का मौका मिल चुका था कि इत्तफाक एक जबरदस्त ताकत है.

यूनियन के मेंबरों की जिंदगी वाकई काबिले रश्क थी. इम्तहान के दिन सिर पर आ गये थे. आम तुलबा (छात्रों) पर ख्वाबोखोर (गहरी नींद) हराम हो गया था. रात-की-रात और दिन-के-दिन मशक्क और मुताला (परिश्रम और अध्ययन) के सिवा कोई काम न था. वर्जिश का मैदान, क्लब, लाइब्रेरी सब विराना पड़े हुए थे. हर उम्मीदवार किसी सन्यासी की तरह मुराकबा (समाधि) में बैठा हुआ नजर आता था. जिसे देखिये अपनी कोठरी में समाधि लगाये बैठा है. इस शबानारोज (रात-दिन) की दीदारेजी (आंखों पर जोर डालना, बहुत सोच-विचार) और दिमागसोजी (माथा-पच्ची) ने दर्दे-सर, दर्दे-चश्म (आंखों में दर्द), शिकले हज्म (अपाचनता), बुखार और दीगर अवारिज (अन्य बीमारियां) का एक तूफान बरपा कर दिया है. आंखें फोड़े की तरह दुख रही हैं, मगर किताब हाथ में है. मारे दर्द के सिर फटा जाता है, मगर पेंसिल हाथ से नहीं छूटती. बुखार से बदन तवा हो रहा है, मगर जबान दर्द से मस्त्रूक है. इधर तो ये आफतें थीं, उधर यूनियन के मेंबर चैन की बांसुरी बजाते थे. कभी गाना हो रहा है, कभी चाय-पार्टी, कभी पिकनिक, जिसे देखिये बेगम और बेफिक्र गुल्छर्रे उड़ाता नजर आता है. किसी को इम्तहान की जर्रा बराबर फिक्र नहीं. यहां तक कि इम्तहान के दिन आये और यूनियन के भाग्य जाग उठे. कॉलेज के आम तुलब बमुश्किल बीस फी सदी कामयाब हुए. यूनियन के सो मेंबरों में सिर्फ 25 फेल थे. लोगों को अचंभा हो गया, मगर असल राज किसी की समझ में ना आया. वो सुरिंद्र, जिसने ख्वाब में भी किताब की सूरत न देखी, अव्वल दर्जा में पास हुआ.

इसी अस्ना (बीच) में मिस गुप्ता का तबादला हुआ और मिस रोहिणी सरकार कलकत्ता से उनकी जगह पर मुकर्रर होकर आयीं. रोहिणी हुस्नोअदा में मिस गुप्ता की नेमल बदल (पूर्णतः अनुरूप) थी. उस पर तुर्रा ये कि दोशींजा (कुमारी)/सुरिंद्र ने पहले ही निगाह से अपने शिकार को ताब लिया और रोहिणी भी पहली ही मुलाकात में उसकी मर्दाना वजा (ढंग), शरीफाना बशरा (चेहरा) और दिल फरेब, बेतकल्लफी से हद दर्जा मुतासिर (प्रभावित) हुई. मिस गुप्ता ने उससे सुरिंद्र की बेइंतिहा तारीफें की थीं और इस तज्करा (जिक्र) ने उसके दिल में सुरिंद्र से एक लगाव-सा पैदा कर दिया था. उसने उसे उन तमाम औसाफ-ओ-कमालात (गुणों, खूबियों) से आरास्ता (विभूषित) पाया, जिनका अपने शोहर में मौजूद रहना वो जरूरी समझती थी. सर्वो नमाकूद (ऊंचा कद), छरेरा बदन, मुस्कराता हुआ चेहरा, खुश इख्लाक, खुशबयान (मधुर भावी), गो एक या दो मुलाकातें एक ऐसे अहम मामले में तस्फिया (निर्णय) करने के लिए काफी नहीं हो सकती, मगर सुरिंद्र ने इतने दिनों भाड़ नहीं झोंकी थी. जब से होश संभाला, उसने इसी कूचे की खाक छानी. इसी बहर (ढंग) की ख्वाही की. उसने देख लिया कि मछली चारा कुतरने लगी, अब फंसने में देर नहीं है.

रोहिणी दिनभर सुरिंद्र की तारीफें सुनती. यूनियन के एक सौ मेंबरों में से हरेक शख्स मौका और महल देखकर सुरिंद्र का जिक्रे खैर उससे कर जाता. उनकी बीवियां, बहनें आतीं और उसका बखान करतीं. गर्ज सुबह से शाम तक इस तरह की बातें उसके कान में पड़ती रहतीं. यहां तक कि इन असलीयात ने उस सादा बेलौस लड़की को मोहब्बत से दीवाना बना दिया. ये बशीकरण मंतर अपना काम कर गया. अब रोहिणी को दर्दे-तन्हाई की कसक महसूस होने लगी. हर वक्त अकेलेपन का ख्याल दिल को सताने लगा. मकान और बाग और सैरगाहें सूनी मालूम होने लगीं. गर्ज आंखें आठों पहर सुरिंद्र के इंतजार में रहने लगीं. एक भोला-भाला दिल नुमाइशात (छल कपट) के नजर हो गया.

जब ये मंजिल दुश्वार तय हो गयीं तो मंगनी और ब्याह में क्या देर लगती? ये दोनों मरासम (रस्में) बहुत सादगी और मतानत (संजीदगी) के साथ अदा किये गये. जिस वक्त आचार्य रस्में-निकाह (विवाह-संस्कार) अदा कर रहे थे, सुरिंद्र ऐसा मुताइयन (संजीदा) और मरऊब (दबा हुआ) नजर आता था, गोया वो इस नयी जिंदगी की जुम्मेदारियों के ख्याल से दबा जाता है. जब दुआ-निकाह खत्म हुई तो सारे मज्मा (भीड़, सभा) ने 'आमीन' (तथास्तु) कहा. सिर्फ हरिमोहन की जबान से ये दुआ न निकली. यूनियन के मेंबरों ने शादी की खुशी में एक जबर्दस्त और पुरशोर महफिल सजाई. रात भर हूहक हुआ की. शराब के खुम के खुम (मटके पर मटके) खाली हो गये. खुशकिस्मती से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरिंद्र इसी साल बी.ए. में कामयाब हो गया. यूनियन की हैरत अंग्रेज कामयाबी ने सब को हैरत में डाल दिया. एक मेंबर भी फेल न हुआ.

शादी हो गयी. दोस्तों ने खूब दिल खोलकर मुबारकबाद दी. किंतु खुसूस (मुख्यतः) मिस गुप्ता तो फूली न समायीं. वो देहली से इस तकरीब (विवाह) में शरीक होने के लिए आयीं. हफ्ता भर तक जश्न होते रहे. इसके बाद मियां-बीवी शिमला की सैर को रवाना हुए. यूनियन के मेंबर, गर्ल्स स्कूल का स्टाफ और दीगर अहबाब रुखसत करने के लिए स्टेशन तक आये. इसमें बाबू हरिमोहन भी थे. जब सब लोग रुखसत हो गये और इंजन ने चीखकर गाड़ी खींची तो हरिमोहन ने भी विदाई-मसाफा किया. उनकी आंखों में आंसू और दिल में अफसोसनाक ख्यालात भरे हुए थे. वो वहां खामोश गाड़ी की तरफ टिकटिकी लगाये देर तक खड़े रहे. यहां तक कि वो नजरों से ओझल हो गयी. उनका दिल कहता था कि ये मुसर्रत का सफर नहीं, रंजोगम का सफर है.

महीना भर तक रोहिणी और सुरिंद्र शिमला में रहे और इस महीने भर में उन्हें एक-दूसरे की खू-ब-खू का पूरा तर्जुबा हो गया. शुरू में रोहिणी ने मिस गुप्ता को जो खतूत लिखे, वो इश्क-वो-मुहब्बत के जज्बात से भरे हुए थे. मिस गुप्ता इन खतूत को बार-बार पढ़तीं और रौर (संतुष्ट) ना होतीं, मगर रफ्ता-रफ्ता इन खतूत का रंग अंदो-वो-हसरत (क्लेह और निराशा) की तरफ माइल होने लगा. यहां तक कि आखिरी खत, जिसमें लिखा था, आज हम लोग यहां से लाहौर रवाना हो रहे हैं, बहुत पिलशिकन (हृदय द्रावक) था. उसमें आखिरी अल्फाज ये थे, "प्यारी बहन, मुझे ऐसा खौफ होता है कि इस ख्वाबे-मुसर्रत (आनंद के स्वप्न) से बहुत जल्द बेदार (जागना) पड़ेगा. जिस चीज को मैंने खालिस सोना समझा, वो महज चमकता हुआ पीतल निकला. अफसोस मैंने अपनी मुहब्बत की दीवार बालू पर खड़ी की थी. खुदा करे, मेरे ये सुब्हे गलत हों. खुदा न करे, मेरे ये बशोसे (निराशापूर्ण) शका सही हों, मगर प्यारी बहन, मेरा दिल बार-बार कहता है कि और कुराइन (हालात) उसकी तस्दीक (प्रमाणित) करते हैं कि हस्ती (अस्तित्व) का सर्माया खत्म हो गया. अब बकइया जिंदगी रोने में कटेगी."

मिस गुप्ता इस पुरदर्द खत को पढ़कर बहुत रोयीं. लाहौर में जब मालूम हुआ कि ये लोग वापस आ रहे हैं तो लोगों को ताज्जुब हुआ. दो महीने का सामान करके चले थे और कियास (अनुमान) से कहता था कि वहां की दिल फरेबियों से इतनी जल्दी तबीयत आसूदा (संतुष्ट) न हो, मगर इसके बरअक्स (प्रतिकूल) ये लोग एक ही माह में उक्ता गये. जरूर कोई-न-कोई बात है. आखिर मुकर्रा वक्त आया. अहबाब उनका खैर मकदम करने के लिए स्टेशन पर पहुंचे. गाड़ी आयी और मियां-बीवी उसमें से उतर पड़े. न कपड़ों का बक्स था, न ट्रंक, न बिस्तर. सुरिंद्र की आंखें शराब से सुर्ख हो रही थीं और रोहिणी, आह! वो नौशुगुफ्ता (नया खिला) फूल अब मुझकिर जर्द (पीला) हो गया था. चेहरा ऐसा पसमुर्दा और अफसुर्दा (निचुड़ा हुआ) था, गोया (अतृप्ति और निराशा) की तस्वीर थी. बाद को मालूम हुआ कि सारा असबाब शराब की नजर हुआ और जेवर जुए के. कान के आवेजे (बुंदे) तक न बचे.

लाहौर में आकर रोहिणी तो अपने दर्सोतालीम (शिक्षा देने में) मस्रूफ हुई और सुरिंद्र मएकसी (शराब पीने में) में. यूनियन का शीराजा (संगठन) अब बिखर गया था. इसलिए बजज शराब के दिलबस्तगी (मनोरंजन) का और कोई जरिया बाकी न रहा. अगर कभी रोहिणी समझाने की कोशिश करती तो सुरिंद्र के तेवर बदल जाते. प्रिंसिपल काटन ने ये समझकर कि बेकारी ने उसकी ये गत बना रखी है, उसे अकाउंटेंट के दफ्तर में एक बहुत माकूल जगह दिला दी, मगर जिस शख्स की तहसील का जमाना (हासिल करने का समय) खरमस्तियों (गधे की तरह मस्तियों) में गुजरा हो, वो सुबह से शाम तक दफ्तर में खुश्क कागजों और रूहफूर्सा एदाद (आत्मा को तंग करने वाले हिसाब) के साथ क्यों कर सर मारता. एक रोज हेड क्लर्क ने उसे चंद एदाद (गिनतियों) का मिजान मरत्तब (तैयार) करने का हुक्म दिया. मिजान लाखों तक पहुंचता था. सुरिंद्र एदादा की लामितनाही (अंतहीन) कतारों को देखकर ऐसा घबराया कि दफ्तर से बेतहाशा भागा कि घर पर आकर दम लिया. इसके बाद कई माह तक वो मुख्तलिफ दफातर (दफ्तरों) की खाक छानता रहा, मगर तलून और वहशत (अनिच्छा और मूर्खता) ने कहीं कदम न जमने दिया. यहां तक कि प्रिंसिपल साहब मायूस मायूस हो गये और जुमला दफातर (सभी दफ्तरों) के दरवाजे उसके लिए बंद हो गये.

गरीब, बेकस रोहिणी अब अपने किये पर पछताती थी, मगर दिल पर जो गुजरता खामोशी के साथ झेलती. कभी हर्फे शिकायत जबान पर ना लाती. जब उसने देखा कि सुरिंद्र को समझाने-बुझाने की कोशिश हमेशा सख्त कलामियों (कठोर शब्दों) का बाइस होती है तो किस्मत पर शाकिर (ईश्वर को धन्यवाद देकर) होकर बैठ रही. किस्मत मायूसों की आड़ और बदनसीबों का सहारा है. अखराजात (खर्चों) के बाइस मुलाजिमों को जवाब देना पड़ा.

बेचारी बेजबान औरत दिनभर लड़कियों को पढ़ाती और गिरस्ती का सारा काम करती. इन मुसीबतों ने इसकी सूरत को यहां तक भंसख (बिगाड़) कर दिया था कि बाबू हरिमोहन जब मद्रास से साल भर के बाद लौटे तो उसे मुश्किल से पहचान सके.

इसके बाद मालूम नहीं उन बदनसीबों पर क्या गुजरी. प्रिंसिपल काटन ने आये दिन की हुज्जत-ओ-तकरार से तंग आकर रोहिणी से इस्तीफा ले लिया और खुदा जाने किस-किस देश की खाक छानते हुए बाला आखिर वो काश्मीर पहुंची. वहां से रोहिणी ने मिस गुप्ता को जो खत लिखा वो निहायत दर्दनाक और जिगरदोज था, "बहन, मेरा हाल क्या पूछती हो? अब जिंदगी से जी भर गया. मुझे अपनी कुछ फिक्र नहीं, मगर तुम्हारे बहनोई साहब की हालत निहायत खराब है. खुदा गवाह है, मैं अब भी उनकी परस्तिश (पूजा) करती हूं. मैंने अपना सब कुछ उन पर निछावर कर दिया, मगर हाय! शराब तेरा सत्यानाश हो, हाय! जुआ तेरा बुरा हो. ये दो मर्ज उनकी जान के ग्राहक हो रहे हैं. बस और ज्यादा न कहूंगी. तुमसे कहते शर्म आती है और शर्म की तो इतनी परवाह नहीं, क्योंकि मुद्दत हुई इसे रुखसत कर चुकी, मगर तुम्हें सुनकर रंज होगा. बस यही समझ लो कि तुम्हारी भोली-भाली रोहिणी अब अपने किये पर पछताती और खून के आंसू रोती है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी राजा यूनान के वजीर और रय्यन हकीम की

मछुए ने कहा, सदियों पहले, रूस देश में फॉर्स नाम के शहर में यूनान नाम का राजा रहता था. वह एक अमीर और ताकतवर राजा था, जो एक कुशल योद्धा और सेनापति भी था. सब पड़ोसी राजा उसके मित्र थे. वह यदि चिंतित था, तो अपने कोढ़ के कारण, जिसका इलाज कोई हकीम नहीं कर पाया था.

एक दिन एक अन्य देश का एक नामी हकीम, जिसका नाम रय्यन था, फॉर्स शहर में आया. वह एक ज्ञानी हकीम था, जिसने ग्रीक, लेटिन, फारसी और अरबी भाषाओं में लिखी चिकित्सा-संबंधी पुस्तकों का अध्ययन किया था. वह सब रोगों के बारे में सब कुछ जानता था. उसे मालूम था कि वे रोग कैसे होते हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता था. वह हर प्रकार की वनस्पति के गुण-दोषों से भी परिचित था.

जब उसे राजा यूनान के रोग के बारे में पता चला तो अपने कोढ़ के बारे में नये सिरे से सब जानकारी प्राप्त की, और कीमती वस्त्र धारण कर, राजा यूनान के महल में पहुंचा.

राजा को अदब से सलाम करने के बाद, हकीम यूनानी ने अपना परिचय दिया, और फिर बोला, "हुजूरेआला, मैंने सुना है कि आपको कोढ़ की शिकायत है, और कोई भी हकीम उसे ठीक नहीं कर सका है. आप इजाजत दें, तो मैं आपका रोग बिना किसी पीने वाली दवा और शरीर पर लगाए जाने वाले मलहम के ठीक करूं."

"क्या तुम सफलतापूर्वक मेरा इलाज कर सकोगे? यदि तुम सचमुच मेरे इलाज में सफल हो गये, तो विश्वास मानो कि मैं तुम्हें इतना धन दूंगा कि तुम्हारी सात पीढ़ियां उसके सहारे आराम की जिंदगी बिता सकेंगी. मगर मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम बिना किसी दवा या मलहम के मेरा इलाज कैसे करोगे?"

"यह आप मुझ पर छोड़ दीजिए," हकीम ने बड़ी आजिजी से कहा. "मैं चौबीस घंटे के अंदर खेल-खेल में आपको ठीक कर दूंगा."

"खेल-खेल में? चौबीस घंटे में?"

"जी हां. मैं कल सुबह हाजिर हो जाऊंगा, और आते ही आपका इलाज शुरू कर दूंगा."

राजा यूनान के महल के सामने एक घर किराए पर लेकर हकीम रय्यन ने कई वनस्पतियों के रस निकालकर उसे एक खोखली मुंगरी में भरा, और उसमें एक हैंडिल लगाया. फिर, उसने एक खोखली गेंद में भी रस को ऐसा ठसाठस भरा कि लगता नहीं था कि खोखली गेंद में कुछ भरा गया है. अगले दिन सुबह, वह इन दोनों वस्तुओं को लेकर महल में गया, और राजा से कहा, "मैं जानता हूं कि आपको पोलो का बहुत शौक है. आज आप मेरे कहने से इस हैंडिल लगी मुंगरी और गेंद की मदद से पोलो खेलें, और तब तक खेलते रहें, जब तक आप पसीने से तरबतर न हो जाएं. मुंगरी और गेंद को जब भी पकड़ें, बहुत दबाकर जोर से पकड़ें. जैसे ही आपका पसीना इन दोनों वस्तुओं को छुएगा, आपके शरीर का कोढ़ अपने आप मिटना शुरू हो जायेगा."

राजा ने अपने साथी-खिलाड़ियों के साथ उसी ढंग से पोलो खेली, जैसी हकीम रय्यन ने बतायी थी. वे तब तक पोलो खेलते रहे, जब तक कि पसीने और वनस्पतियों के रस के मिले जुले प्रभाव से उसका कोढ़ दूर होना आरंभ नहीं हो गया.

जब खेल खत्म हुआ, तो हकीम ने कहा, "अब महल में जाते ही, आप सीधे हमाम में पहुंच जाइएगा. वहां जी भर के नहाइए, और बाद में बिना कुछ खाए-पिए सोने के लिए चले जाइएगा. कल सुबह मैं आपके दर्शन करूंगा."

राजा ने वैसा ही किया, जैसा हकीम रय्यन ने करने को कहा था.

जैसे ही वे स्नान करके हमाम से बाहर आने लगे, उन्होंने अपने शरीर की त्वचा को ध्यानपूर्वक देखा. कोढ़ के सब निशान गायब हो गये थे, और उनकी त्वचा एकदम साफ-सुथरी दिखायी दे रही थी. वे खुशी-खुशी सोने गये.

सुबह जब हकीम रय्यन साहब उनसे मिलने गये, तो उन्होंने अपने सिंहासन से उठकर, हकीम साहब को अपने गले लगा लिया, और कहा, "आपने अपना वायदा पूरा किया, अब मैं अपना वायदा पूरा करता हूं."

दुपहर का खाना राजा और हकीम ने एक साथ खाया. इसके बाद, राजा ने भरे दरबार में हकीम साहब का सम्मान किया, और उन्हें अनेक कीमती उपहारों के अलावा दो हजार स्वर्ण-मुद्राएं (दीनार) इनाम में दी. रय्यन खुशी-खुशी अपने निवास-स्थान को लौटे. लौटते समय उन्हें राजा का आदेश मिला था कि वे अगले दिन सुबह भी दरबार में मौजूद रहें.

अगले दिन भी, राजा ने हकीम का बड़े स्नेह और सम्मान से स्वागत किया, उसे अपने बगल में बैठाया, और उसके साथ ही खाना खाया. अपने दरबारियों से राजा ने हकीम रय्यन की बहुत प्रशंसा की, उसे अपना घनिष्ठतम मित्र और शुभचिंतक बताया, और कहा, "मैं हकीम साहब को कितने भी उपहार क्यों न दे दूं, उनके अहसानों का बदला कभी नहीं चुका सकूंगा."

राजा के दरबारियों में एक वजीर ऐसा था, जो दुष्ट प्रकृति और ईर्ष्यालु स्वभाव का था. उसे हकीम रय्यन के सौभाग्य से ईर्ष्या होने लगी. रय्यन के जाने के बाद, वह राजा के पास पहुंचा, और कहने लगा, "हुजूर ए आला! आप जानते ही हैं कि इस नाचीज ने जब भी आपको सलाह दी है, आपके कुशल-मंगल की खातिर दी है. आज चूंकि आपकी जान को और हमारे मुल्क की सुरक्षा को खतरा है, इसलिए आपसे तल्खिए में यह नाचीज कुछ अर्ज करना चाहता है. मौका दें, बंदापरवर!"

राजा ने एकांत का आदेश दिया, और सबके चले जाने के बाद उस वजीर से कहा, "जो कहना चाहते हो, बेखौफ कहो."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वजीर ने राजा के कान भरते हुए कहा, "हुजूर, बेअदबी माफ हो, मगर जिन हकीम साहब पर आप इतने ज्यादा फिदा हो रहे हैं, वे हकीम तो आला दर्जे के हैं, मगर हैं असल में आपके जानी दुश्मन."

"जानी दुश्मन? यह क्या बक रहे हो तुम?"

"बक नहीं रहा हूं, बंदापरवर! हकीकत बयान कर रहा हूं. मुझे अपने जासूसों से पक्की और पूरी तरह विश्वसनीय खबर मिली है कि ये हकीम साहब आपके एक दुश्मन राजा के जासूस हैं. आपका सफल इलाज करके फिलहाल उन्होंने आपका विश्वास जीत लिया है, मगर बाद में मौका देखकर वह आपकी हत्या की कोशिश करेंगे. वह इसी उद्देश्य से यहां आये हैं."

राजा यूनान को अपने वजीर की बातों पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ. उन्होंने कहा, "वजीर, तुम जो कुछ कह रहे हो, ईर्ष्यावश कह रहे हो. तुम्हारी बातें सुनकर मुझे उस बाज की कहानी याद आ गयी, जो मैंने बहुत पहले सुनी थी, और इस वक्त मौजूं बैठ रही है."

सुबह होने वाली थी, इसलिए शहरजाद ने यह कहानी नहीं सुनायी. उसने बस इतना कहा कि बाज की कहानी और भी ज्यादा दिलचस्प है, इस पर शहरयार ने मन ही मन फैसला किया कि वह बिना यह कहानी सुने, शहरजाद की हत्या का आदेश नहीं देगा.

बाज और राजा सिंदबाद की कहानी

अगली रात को शहरजाद ने बाज और राजा सिंदबाद की कहानी इस प्रकार शुरू की:

राजा यूनान के अपने वजीर से कहा, "ईर्ष्या ने तुम्हारी आंखों पर परदा डाल दिया है, और इसलिए तुम भले-बुरे की तमीज नहीं कर पा रहे हो, और एक नेक इंसान को बदइंसान बता रहे हो. तुम चाहते हो कि मैं उसकी हत्या करवा दूं. मगर, उसके बाद क्या होगा, जानते हो? मुझे उसी तरह पछताना पड़ेगा, जैसा राजा सिंदबाद पछताये थे. लगे हाथ सुन लो उनकी भी कहानी. इसी फॉर्स नगर में कभी एक ऐसा राजा राज्य करता था, जिसे शिकार का बड़ा शौक था. राजा के जिसका नाम सिंदबाद था, पास एक बाज था, जो चौबीसों घंटे उसी के साथ रहता था. राजा ने उसे ऐसा प्रशिक्षित किया था कि शिकार के दौरान और अन्य अवसरों पर भी वह राजा के प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को भी तैयार रहता था.

"एक दिन राजा सिंदबाद उस बाज को लेकर एक घाटी में शिकार करने गया. घाटी में उसने जो जाल फैलाये, उसमें चिंकारा (कलपुंछ) जाति का एक पशु फंस गया. राजा ने अपने सभी सहायकों से कहा, "जो इसे जाने देगा, वह जिंदा नहीं बच पायेगा." मगर, संयोग ऐसा हुआ कि चिंकारा स्वयं उन्हें ही चकमा देकर भाग गया. राजा उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे, अपने घोड़े पर बैठकर भागे. अंत में, वे उसे पकड़ने और मारने में सफल हो गये.

"चिंकारा के पीछे भागते-भागते राजा बहुत थक गया था. घोड़ा भी बहुत प्यासा दिखायी दे रहा था. राजा ने जब देखा कि एक वृक्ष से गाढ़ा द्रव नीचे गिर रहा है, तो उसने बाज के गले में पड़े एक प्याले को वृक्ष के नीचे रखकर उस द्रव को जमा करना आरंभ कर दिया. लेकिन, उसे बाज से झपट कर नीचे जमीन पर गिरा दिया. जब बाज ने तीन बार ऐसा किया, तो राजा को बहुत गुस्सा आया, और उसने अपनी तलवार से उसके दोनों पंख काट दिये. तब बाज ने अपना सर उठाकर पेड़ के ऊपरी भाग की ओर राजा का ध्यान आकर्षित किया. वहां एक भयानक दृश्य देखकर वह चकित रह गया. अनेक सांप, एक-दूसरे से लिपटे हुए, अपना जहर नीचे टपका रहे थे, और इसी द्रव को राजा प्याले में जमा करके उसे अपने घोड़े को पिलाने के बाद, स्वयं भी पीना चाहता था. वह घायल बाज को लेकर वापस महल में आया. मगर, महल में आते ही बाज की मृत्यु हो गयी, और राजा पश्चाताप की आग में जलने लगा. उसे पश्चाताप हो रहा था कि जिस स्वामीभक्त बाज ने उसके तथा उसके घोड़े के प्राण बचाने का प्रयास किया, उसने उसे ही मार डाला."

राजा यूनान की यह कहानी सुनकर दुष्ट वजीर ने कहा— "ह प्रतापी राजा! मैंने आपको जो परामर्श दिया, वह आपकी और राज्य की सुरक्षा की खातिर ही दिया. यदि आपको लगता है कि मैंने ऐसा ईर्ष्यावश किया, तो आप मुझे सहर्ष प्राण-दंड दे सकते हैं. लेकिन, तब आपको उसी भांति पछताना पड़ेगा, जिस प्रकार राजा सिंदबाद को बाज को मारने के बाद, पछताना पड़ा था. अतः आप जो कुछ करें, काफी सोचविचार कर ही करें. जहां तक हकीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सवाल है, यकीन मानें, वह आपको धोखा देगा ही.''

कहानी राजकुमार और नरभक्षी दानवी की

और, अपनी बात की समाप्ति कुटिल वजीर ने इन शब्दों में की, ''कहीं ऐसा न हो, अन्नदाता कि आपको मेरी हत्या करवाने के बाद, उसी तरह पछताना पड़े, जिस प्रकार उस धोखेबाज वजीर को पछताना पड़ा था, जिसने एक राजकुमार को हानि पहुंचायी थी.'' और, राजा के अनुरोध पर, उसने यह कहानी सुनायी :

एक रकाजा के पुत्र को शिकार करने का बड़ा शौक था. वह शिकारी कुत्तों को लेकर शिकार करने जाया करता था. राजा ने अपने एक वजीर को यह हुक्म दे रखा था कि जब भी राजकुमार शिकार पर जाये, वह भी उसके साथ जाये, ताकि उसकी देखभाल करता रहे.

एक दिन जब राजकुमार और वजीर दोनों साथ-साथ शिकार के लिए रवाना हुए, तो उन्होंने जंगल में एक विचित्र दृश्य देखा. एक विचित्र जानवर ने उनका रास्ता रोक रखा था. वजीर जानता था कि वह जानवर किस जाति का है, तो भी उसने राजकुमार से कहा, ''बढ़ो, आगे बढ़ो, और इस जानवर को पकड़ो.'' राजकुमार ने, जो घोड़े पर सवार था, उसका पीछा करना आरंभ किया. पीछा करते-करते वह एक रेगिस्तान में पहुंच गया, जहां वह रहस्यमय जानवर न जाने कहां खो गया, या गायब हो गया.

राजकुमार को अब चिंता हुई कि वापस कैसे लौटा जाये. तभी उसने एक सुंदर नवयुवती को एक कोने में बैठे रोते देखा. राजकुमार ने उससे पूछा कि वह कौन है. उसने उत्तर दिया कि वह हिंद के एक राजा की लड़की है. 'मैं एक कारवां के साथ यह रेगिस्तान पार कर रही थी कि मुझे नींद आ गयी, और मैं ऊंट के ऊपर से रेगिस्तान पर गिर पड़ी. अब मैं यहां अकेली और दुखी हूं. मैं नहीं जानती कि मैं कहां जाऊं और कैसे जाऊं.'

राजकुमार ने उसे अपना परिचय देकर, घोड़े पर अपने पीछे सवार होने को कहा. वे दोनों कुछ दूर ही गये थे कि एक खोह को देखकर, नवयुवती ने कहा, ''एक मिनट रुको. मैं इस खोह में पेशाब करके अभी वापस लौटती हूं.'' राजकुमार ने घोड़ा रोक लिया, और नवयुवती खोह के अंदर चली गयी. जब वह काफी देर तक खोह से बाहर नहीं आयी, तो राजकुमार उसे देखने के लिए खोह के अंदर गया, और उसने वहां जो दृश्य देखा, उसने उसे चकित कर दिया.

उसने देखा कि नवयुवती एक नरभक्षी दानवी के रूप में परिवर्तित हो गयी थी, और अपने बच्चों से यहं कह रही थी, ''बच्चो! आज मैं तुम्हारे लिए एक स्वस्थ और जवान नौजवान लायी हूं, उसे खाकर तुम्हें बड़ा मजा आयेगा.'' यह सुनकर, बच्चे चिल्लाने लगे, ''तो फिर जल्दी उसे लेकर आओ, मां! हमें बहुत भूख लगी है. उसे खाकर हम अपनी कई दिनों की भूख मिटायेंगे.''

जब राजकुमार ने नरभक्षी दानवी और उसके बच्चों के बीच हुए वार्तालाप को सुना, तो वह डर के मारे कांपने लगा. उसे विश्वास हो गया कि अब उसकी मौत निकट है, और कोई भी उसे नियति से नहीं बचा सकता.

लेकिन तभी एक चमत्कार हुआ.

जब दानवी ने राजकुमार को देखा, तो वह डर के मारे कांप रहा था. दानवी ने पूछा, ''क्या बात है? तुम इतने डरे हुए क्यों हो?'' राजकुमार ने उत्तर दिया, ''मेरा एक शत्रु है, और मैं उससे डरता हूं.'' दानवी ने कहा, ''लेकिन, तुम तो राजकुमार हो. हो न?'' राजकुमार ने कहा, ''हां, मैं एक राजकुमार हूं.'' दानवी ने पूछा, ''तो फिर तुम अपने इस शत्रु को पैसा देकर शांत क्यों नहीं कर देते?'' राजकुमार ने कहा, ''उसे धन नहीं, मेरे प्राण चाहिए.''

दानवी ने कुछ सोचकर कहा, ''फिर तो तुम्हारे सामने एक ही विकल्प शेष रह जाता है. और, वह यह कि तुम अल्लाहताला से दुआ मांगो कि वह तुम्हारी प्राण-रक्षा करे, और तुम्हारे शत्रु के हाथों तुम्हारा कोई अहित न होने दे.'' राजकुमार ने दानवी के सुझाव का पालन किया, और सर झुकाकर अल्लाह से दुआ मांगने लगा कि वह उसके शत्रु का दमन करे. जैसे ही, दानवी ने राजकुमार की प्रार्थना सुनी, वह अंतर्धान हो गयी. अब राजकुमार आजाद था. वह वापस अपने महल में पहुंचा, और वहां अपने वालिद साहब को वजीर की काली करतूतों के बारे में बताया. राजा ने फौरन हुक्म दिया कि वजीर को फौरन जान से मार डाला जाये.

यह कहानी सुनाने के बाद, यूनान के राजा के वजीर ने इन शब्दों में अपनी बात जारी रखी : ''मुझे डर है, बंदापरवर कि अगर आपने इस हकीम पर अपना विश्वास जारी रखा, तो वह बड़ी बेरहमी के साथ आपकी जान ले लेगा. आप उसके साथ दोस्ताना तरीके से पेश आते हैं, और इतने तोहफे देते हैं, मगर वह अपनी कपट-योजना से आपके प्राण लेने पर तुला हुआ है. उसने आपके हाथ में एक चीज देकर आपको चंगा कर दिया. अब वह उसी तरीके से आपको बीमार कर, आपकी जान भी ले सकता है, और लेगा भी. मैंने, जो आपके हित में ठीक समझा, अर्ज कर दिया. आगे, जैसी आपकी मर्जी.''

राजा ने वजीर से कहा, ''आप जो कुछ कह रहे हैं, सही कह रहे हैं. मैं आगे आपकी सलाह के मुताबिक ही काम करूंगा. अब मुझे भी यह शक होता जा रहा है कि यह हकीम शायद मेरे दुश्मनों का जासूस है, और मुझे मारने के इरादे से यहां आया है. आपने मेरी आंखें खोल दी हैं. अब मैं क्या करूं, आप ही बताएं.''

वजीर ने कहा, ''मेरी सलाह है कि इससे पहले कि वह आपको खत्म करे, आप उसे खत्म कर दें. आप उसे फौरन यहां आने को कहिए, और जैसे ही, वह यहां आये, उसकी गर्दन कटवा दें. न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी.''

राजा यूनान ने अपनी वजीर की सलाह मानकर, फौरन हकीम को उनके और वजीर के सामने पेश करने के लिए हुक्म जारी कर दिये. दो संतरी फौरन उसके निवास पर पहुंचे, और हकीम को पकड़ कर ले आये. उस बेचारे को कुछ पता न था कि उसके साथ राजा क्या सलूक करने वाला है. वह काफी खुश दिखायी देता था. □

अगले अंक में

कहानी एक रहस्यमयी किताब की...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ दास्तोयेव्स्की

रुपहली रातें

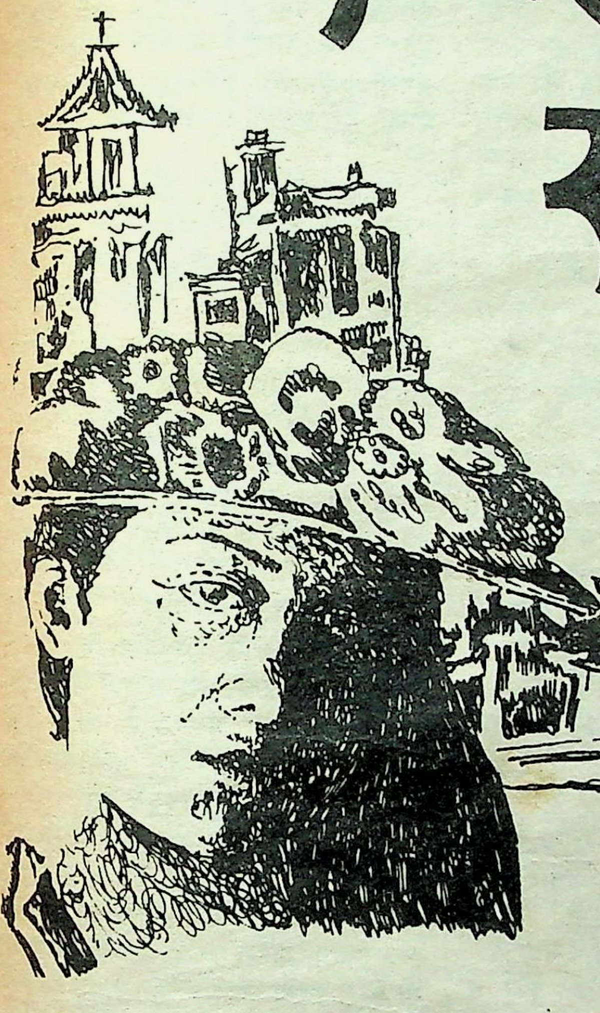

मैं अपनी पिछली भावुकताओं की वर्षगांठ मनाने जा रहा हूं उन संवेदनाओं की अनुभूति की वर्षगांठ जिनका कभी अस्तित्व ही नहीं था. और यह वर्षगांठ भी मैं उन्हीं बेवकूफी भरे अवास्तविक सपनों के माध्यम से मनाऊंगा.

ओह नहीं, नहीं!'' नास्तेंका रो पड़ी औ उसकी आंख की कोरों से आंसू टपकने लगे. ''नहीं, ऐसा नहीं होगा. हम इतनी आसानी से जुदा नहीं होंगे. दो संध्याओं की बात ही क्या है.''

''नास्तेंका, ओ नास्तेंका, क्या तुम जानती हो कि अब मैं लंबे अरसे तक अपने से घृणा नहीं करूंगा, तुमने मुझे अपने आपके प्रति संतुष्ट और आस्थावान बना दिया है? क्या तुम जानती हो कि अब मैं अपने को इतना अभिशप्त और अभागा नहीं मानूंगा जितना अभी तक समझता आया हूं. जानती हो, मैं अब अपने को अपराधी और पापी नहीं मानूंगा क्योंकि अभी तक मैंने जैसा जीवन जिया है उसे मैं एक पाप और अपराध ही समझता रहूंगा. तुम इसे अतिशयोक्ति न समझना. नास्तेंका, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं.

''भगवान के लिए ऐसा न सोचना नास्तेंका, क्योंकि कभी-कभी मुझ पर निराशा हावी हो जाती है, इतनी गहन निराशा कि– जब तक वह मुझ पर हावी रहती है, तो मैं सोचने लगता हूं कि अब मैं फिर से एक नयी जिंदगी, एक असली जिंदगी शुरू करने के लायक नहीं रहा, क्योंकि मैंने वास्तविकता को, यथार्थ को ग्रहण करने का माद्दा ही खो दिया है, क्योंकि मैंने अभी तक अपनी आत्मा को बेचा है. मेरी कल्पना में डूबी हुई रातों के बाद भयावह गंभीरता के क्षण भी आते हैं और उस समय भंवर की तरह चक्कर काटते द्रुतवेग से घूमते हुए कोलाहलमय जीवन का शोक मुझे अपने चारों ओर अधिक-स्पष्ट सुनाई देने लगता है. मैं देखता हूं, मुझे सुनाई देता है, मैं महसूस करता हूं कि लोग जी रहे हैं– वास्तविकता का जीवन जी रहे हैं. मैं साफ देखता हूं कि उनका जीवन किसी ऐसे तत्व का बना हुआ नहीं है जो कल्पना या स्वप्न की तरह छिन्न-भिन्न हो जाये. मैं देखता हूं कि उनके जीवन में यौवन का आवेग है. प्रत्येक पल नवीन उल्लसित और विगत पल से भिन्न है, और यहां मेरे पास केवल एक अशक्त कल्पना की विभ्रांति जो अंधियारी, उदास और ऊबाने वाली है, जिसमें सिर्फ एक बदहवासी है और जिसकी छायाकृतियों का मैं दास बना हुआ हूं. मैं बादल में उस प्रत्येक छोटे-से टुकड़े के आगे परास्त और हताश हो जाता हूं जो सूर्य के प्रकाश को रोक लेता है और इस नगर का हर आदमी जो सूर्य की ओर मेरी ही तरह जिजिविषा से देखता है, निराश हो जाता है, उदास और भारी दिल हो जाता है, उदास और भारी दिल हो जाता है, और दुख में वह इसके अलावा हो भी क्या सकता है? और फिर इन कल्पित भ्रांतियों की भी एक सीमा है.

''एक दिन यह तनाव घटने लगता है. अविनश्वर दिखायी देने वाली कल्पना जब लुप्त हो जाती है क्योंकि अब हम वयस्कता की देहरी पर आ चुके हैं और हमारे पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपनों और आदर्शों की चमक धुंधली पड़ गयी है. उनकी खंडित प्रतिमाएं धरती में गिरकर अब धूल चाट रही हैं. लेकिन, चूंकि हम और किसी तरह का जीवन जीने में असमर्थ हैं इसलिए उन्हीं टूटे-फूटे-प्रतिमा खण्डों को जोड़-जोड़ कर फिर वही प्रतिमाएं खड़ी करने लगते हैं. परन्तु इससे भी मन का असंतोष नहीं जाता, क्योंकि वह सब कुछ और ही मांग करने लगा है जो इस सबसे बिल्कुल अलग और अनोखा है. आह, बेचारी स्वपनदर्शी व्यर्थ मैं अपने मृत सपनों की अस्थियां संजोने का प्रयप्न करता है कि शायद किसी परमाणु में थोड़ा-सा भी स्पंदन दिखे तो उसे वह पुनर्जीवित कर सके और अपने दृश्य पर जमी हुई हिमशीतल निराशा को इस पुनर्जीवित लौ से पिघलाकर उन सारी भ्रांतियों को वापस ला सके जिनके वह पहले असीम प्यार करता था, जिनसे उसका रक्त एक अग्निधारा-सा उबलने लगता था, जिन्होंने उसके आंसुओं के मोती चुराकर इतना महान छल किया था.

''जानती हो नास्तेंका मैंने क्या निश्चय किया है? क्या तुम्हें मालूम है कि मैं अपनी पिछली भावुकताओं की वर्षगांठ मनाने जा रहा हूं. उन संवेदनाओं की अनुभूति की वर्षगांठ,जिनका कभी अस्तित्व ही नहीं था. और यह वर्षगांठ भी मैं उन्हीं बेवकूफी भरे अवास्तविक सपनों के माध्यम से मनाऊंगा. ऐसा इसलिए कि ये बेवकूफी भरे सपने अब नहीं हैं, और मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो उन्हें फिर से लौटाकर ला सके. तुम जानती हो कि सपनों का भी एक जीवन होता है जिसे जिया जा सकताहै. जानती हो तुम! मैं अब उन पुरानी जगहों पर बार-बार जाया करता हूं जहां कभी किसी दिन मैंने अपनी इस स्वप्नीली प्रसन्नता का क्षण जिया था. मैं अपने उस अतीत से फिर जुड़ना चाहता हूं और इसी कोशिश में अक्सर सेंट पीटर्सबर्ग की गलियों और सड़कों और कूचों में किसी प्रेतात्मा की तरह चक्कर लगाया करता हूं.

''आह! मेरी काल-जल में डूबी हुई यादगारें! इस समय मुझे याद आ रहा है कि ठीक एक साल पहले इसी समय मैं इसी रास्ते पर उसी उदासी और अकेलेपन का भार लिये घूम रहा था, जिसका मैं आज भी शिकार हूं. और मुझे याद आता है—मेरे सपने तब भी उतने ही उदास थे, और हालांकि उस समय मेरी मनोदशा आज से बेहतर न थी फिर भी लगता है कि जीवन तब कहीं सरल और शांत था. उस समय मुझे विकल करने वाली यह अंधकार की अनुभूति तो न थी. तब उदासी, दर्द और निराशा की ये चुभी हुई फासें तो न थीं जो आज बार-बार गड़कर मुझे दिन-रात चैन नहीं लेने देतीं. मैं अपने आप से प्रश्न करने लगता हूं—कहां गये तुम्हारे वे सपने? सिर हिलाकर मैं अपने आपको प्रत्युत्तर देता हूं—आह, ये वर्षों के साये कितने जल्दी-जल्दी ढलते जाते हैं? मैं फिर प्रश्न करता हूं—तुमने अपने जीवन का क्या किया? कहां दफना दिया उसके श्रेष्ठतम वर्षों को? क्या वास्तव में तुमने कोई जीवन जिया था? जरा अपनी तरफ देखकर जवाब दो कि तुम्हारे संसार पर हिमशीतल जड़ता की यह कैसी पर्त जमती जा रही है.

''और उत्तर में कोई मेरे अंदर से पुकार कर कहता है कि ये वर्ष इसी तरह गुजरते चले जायेंगे और साथ ही बढ़ती जायेगी उदास अकेलेपन की यह अनुभूति, और फिर लाठी टेकता हुआ श्लथ, जर्जर और कांपता हुआ बुढ़ापा आयेगा जिसके बाद केवल एक अंधकार है और बस बेचारी. तब तुम्हारे सपनों का प्रकाश क्षीण हो जायेगा और पतझर की पीली पत्तियों की तरह वे एक-एक टूट कर गिरने लगेंगे. ओह नास्तेंका इस तरह एकाकी, बिल्कुल अकेले बन रहना क्या दुख की बात नहीं है—जहां पश्चात्ताप करने के लिए भी कुछ न बाकी रहे—कुछ नहीं, कुछ भी नहीं—क्योंकि जो कुछ मैंने खोया है वह बेवकूफी भरी मात्र एक अवास्तविक कल्पना है, केवल कुछ सपने हैं.''

''बस करो, मुझे और दुखी न बनाओ,'' नास्तेंका ने अपनी आंख की कोर से ढुलकता हुआ एक आंसू पोंछकर कहा. ''अब यह सब समाप्त हो चुका. अब हम दोनों साथ-साथ रहेंगे. चाहे कुछ भी हो, हम कुछ भी हो, हम लोग अलग न होंगे. मैं एक सीधी-सादी मामूली लड़की हूं. हालांकि मेरी नानी ने मेरे लिए एक अध्यापक रख छोड़ा था फिर भी ज्यादा मैं पढ़-लिख न सकी, मैं तुम्हें पूरी तरह समझ गयी हूं. क्योंकि तुमने जो कुछ मुझे अभी बताया है वह मेरे साथ भी हुआ है जब मेरी नानी सेफ्टीपिन से बांधकर मुझे अपने पास बिठाये रहती थीं. हां, यह बात जरूर है कि मैं इतनी अच्छी तरह अपने को व्यक्त नहीं कर सकती क्योंकि मैं इतना पढ़ा-लिखा नहीं है'', उसने लजाते हुए कहा.

मेरे वर्णन की भावुकता और दर्दीली आवाज ने उसके मन में मेरे लिए समादर पैदा कर दिया था." लेकिन मैं बहुत खुश हूं कि तुमने अपना दृश्य मेरे सामने खोलकर रख दिया. मैं तुम्हें जान गयी हूं. मैं तुम्हें अच्छी तरह समझ गयी हूं. और जानते हो, मैं भी तुमसे अपनी व्यथा-कथा कहना चाहती हूं, बिना कुछ छिपाये, और इसके बदले में कथा समाप्त हो जाने पर तुम मुझे अपनी सलाह देना. तुम बहुत बुद्धिमान हो. बोला, मेरी कहानी सुनकर तुम सलाह दोगे न?''

''आह नास्तेंका !'' मैंने उत्तर दिया. ''मैंने कभी किसी को सलाह नहीं दी, और न मैं उतना बुद्धिमान ही हूं जितना तुम मुझे समझती हो. लेकिन अगर हम इसी तरह एक दूसरे को अपना राजदार बना लें तो यह सबसे अच्छी बात होगी. अच्छा मेरी सुन्दर नास्तेंका, तुम क्या जानना जाहतीं हो? मुझसे साफ-साफ कहो. मैं इस समय इतना हर्षित और आनन्दित हूं, इतना सशक्त और विवेकवान हूं कि उत्तर देने में मुझे जरा भी देर न लगेगी.''

''नहीं, नहीं.'' नास्तेंका ने हंसते हुए बाधा डालकर कहा, ''मैं किसी विद्वान की सलाह नहीं चाहती, मुझे तो एक भाई जैसी गंभीर सलाह की जरूरत है, ठीक उसी तरह की जैसे कि यदि तुम आजीवन मुझे प्यार करते होते, तो अवश्य देते.''

''बिल्कुल ठीक, बिल्कुल ठीक नास्तेंका.'' मैंने उत्तेजित होकर लगभग चीखते हुए कहा. ''अगर मैं पिछले बीस साल से भी तुम्हें इतना प्यार न करता आ रहा होता, तो भी तुम्हें इतना प्यार न कर पाता, जितना इस समय तुम्हें प्रति मैं स्नेह से भर उठा हूं.''

''तब फिर लाओ अपना हाथ!'' नास्तेंका ने कहा.

''ये रहा!'' मैं उसके हाथों में अपना हाथ दे दिया.

''अच्छा तो अब मेरी कहानी शुरू होती है.'' ▫

अगले अंक में

नास्तेंका की आपबीती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांधे पर सलीब और विरासत का सुख

अंग्रेजी की चिकनिया (ग्लौसी) मासिक पत्रिका 'सोसायटी' के अक्तूबर अंक में मुखपृष्ठ पर, 'उन्हें मुंशी प्रेमचंद का पुत्र कहलाने से नफरत क्यों है?' शीर्षक पढ़कर चौंक उठना स्वाभाविक था. अंदर के पृष्ठों पर अमृत राय से भेंटवार्ता पर आधारित एक दिलचस्प लेख पढ़ने को मिला. मानना पड़ा कि साक्षात्कार लेने और लिखने के मामले में अंग्रेजी पत्रकारिता हमसे कोसों आगे हैं. इस छोटे से लेख में कई नयी जानकारियां तो सामने आती ही हैं, अमृत राय की सोच का एक अचर्चित पहलू भी सामने आता है. पता लगता है कि अमृत राय लगभग तीन एकड़ भूमि पर बने खूबसूरत बंगले 'धूप छांव' में ठाठ से रहते हैं. उनकी पत्नी सुधाजी प्रख्यात लेखिका सुभद्रा कुमारी चौहान की पुत्री हैं. पुत्र आलोक ने अंग्रेजी साहित्य में पी-एच.डी. विदेशी विश्वविद्यालय से की है और उनकी रुचि आजकल कंप्यूटर में है. बंगले में 1951 मॉडल की हिंदुस्तान कार और नयी मारुति अगल बगल खड़ी हैं, वगैरह.

अमृत राय चूंकि स्वयं भी जाने-माने लेखक हैं इसलिए प्रेमचंद का पुत्र होना उनके लिए लिखित रूप से सुविधाजनक होने के साथ-साथ अपनी पहचान अलग से बनाने के मामले में दुविधाजनक भी रहा होगा. सोसायटी की संवाददाता से बातचीत करते हुए इस संदर्भ में उन्होंने लगभग कटु होकर कह डाला है, 'यह एक दुखती रग बन गया है. अपने (महान) पिता की बरगद छांव से बाहर आने में मुझे लगभग एक जीवनकाल लग गया. मेरा अपना कृतित्व (कम से कम) परिभाषा की दृष्टि से उनके कृतित्व से कम नहीं.' अमृत जी को शिकायत है कि पत्रकार अक्सर मुंशी प्रेमचंद के बारे में बात करने के लिए उनके पास आते हैं. महान पिता का पुत्र होने का यह खामियाजा भुगतना पड़ा है कि उनके अपने कृतित्व का मूल्यांकन समुचित रूप से नहीं हो सका.

'यह सलीब मुझे जिंदगी भर ढोना पड़ा है.' कहते हैं अमृतराय. उनके उच्चस्तरीय रहन-सहन और सुविधापूर्ण जीवन के बारे में प्रश्नकर्त्ता की सवालिया निगाह उठने पर उनकी प्रतिक्रिया है कि, 'प्रेमचंद का विश्वास था कि यदि सुख-सुविधाएं अपने आप बिना प्रयास किये जीवन में आयें तो हर्ज क्या है.' सचमुच प्रेमचंद की धरोहर अनमोल है. उन्होंने हमारे साहित्य को समृद्ध किया तो उनका परिवार समृद्धि में क्यों न जिये. सच्चाई तो यह है कि प्रेमचंद की परंपरा की दुहाई देने वाले ज्यादातर कथाकारों के मसीहा वैभवपूर्ण जीवन जीते-जीते जब मानसिक रूप से ऊब जाते हैं तो गरीब किसानों और मजदूरों को याद करने लगते हैं जिसे यकीन न आता हो खुद जाकर अपनी आंखों देख ले.

हिमाकत-कथकंडे-ब्लैकमेल उर्फ साहित्यिक पत्रकारिता

साहित्य और पत्रकारिता के अंतर्संबंधों के संदर्भ में आज की साहित्यिक पत्रकारिता की खबर लेना जरूरी है. समकालीन साहित्यिक पत्रकारिता की हालत पर विचार प्रगट करनेवालों में मैनेजर पांडेय, अशोक वाजपेई, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विष्णु नागर और शैलेश मटियानी जैसे नाम हैं. इनके विचारों में भिन्नता है परंतु सहमति इस बात पर कि आज की साहित्यिक पत्रकारिता पाठकोन्मुख नहीं है. अशोक बाजपेई का कहना है कि, "पहले के मुकाबले आज छोटी पत्रिकाओं की भरमार-सी है. उनमें से अनेक अपनी मित्र पत्रिकाओं की सूची भी छापती रहती हैं, हालांकि शत्रुओं का नामोल्लेख पता नहीं किस संकोच के कारण नहीं करती हैं. शायद इसी छोटे से लगभग अलक्षित जाने वाले तथ्य में आज की साहित्यिक पत्रकारिता का सबसे आपत्तिजनक पक्ष छिपा है. उसने साहित्य को, पत्रिकाओं और लेखकों को मित्रों और शत्रुओं में बांटने की हिमाकत की है और जब तब षड्यंत्र भी."

मैनेजर पांडेय कौन कम दुखी हैं, "कुछ लोग साहित्य की दुनिया में नेता बनने या रचनात्मक स्तर पर चुक जाने के बावजूद पत्रिकाओं के संपादन का काम संभालते हैं. ऐसे लोग प्रायः साहित्यिक पत्रकारिता में तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं. कभी विरोधी लेखकों के खिलाफ पत्रिका में छद्म नाम से पत्र छपवाते हैं तो कभी पत्रों को सेंसर भी करते हैं. दिल्ली के एकाध संपादकों के बारे में यह भी खबर है कि वे दूसरे लेखकों के समर्थन और विरोध में पत्र लिखवाकर ब्लैकमेल भी करते हैं.

(साभार : रविवार 16.10.88)

हम हशमत और समीक्षा

हिंदी कथा साहित्य की जड़ता से संत्रस्त पाठकों के लिए भीष्म साहनी के नये उपन्यास 'मैया दास की माड़ी' पर लिखी गयी कृष्णा सोबती की समीक्षा एक अच्छी खबर हो सकती है. उन्हें इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए आमंत्रित किया 'इंडिया टुडे' ने और कृष्णा जी ने भीष्म जी का जितना लिहाज किया जा सकता था, करते हुए जिस चतुराई और पैनेपन से उपन्यास की सीमाओं को उजागर किया है, वह हिंदी गद्य का एक बेहतरीन नमूना है—'खोयी हुई अस्मिता के लुटे-पुटे चिन्ह टट्टू और उन पर सवारी करते रखैलों के बेटे क्या सचमुच इतिहास की नियति के बाहर थे? पराजय की इतनी गहरी छटपटाहट में से सिर झुका देने के पहले स्वाभाविक साहसिकता की ओर क्यों न देख लिया गया? क्या तात्कालिक अनुभव के आतंक ने एक बुझती जीवन शैली के प्रामाणिक परिवेशों तक को नकार दिया.'

(इंडिया टुडे : 31.10.88) ▫

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी के बाद की हिंदी कहानी

राजकुमार सैनी

महेश दर्पण द्वारा संपादित 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-कोश' कुछेक सीमाओं के बावजूद, एक महत्वपूर्ण संकलन है क्योंकि इसमें आजादी के बाद की डेढ़ सौ से भी अधिक कहानियों को एक गुलदस्ते के रूप में पेश किया गया है. पाठक इस एक ग्रंथ को पढ़ कर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के परिदृश्य को आंख-भर देख सकता है और अपने लिए उसकी एक पहचान बना सकता है. हालांकि यह बात खटकती है कि कुछ पुराने और नये कहानीकारों की कहानियां इसमें शामिल होने से रह गयीं और यह भी कि इतने वृहदाकार (2000 पृष्ठों से भी अधिक) ग्रंथ में संपादक महेश दर्पण को सिर्फ 40 पृष्ठ ही मिले. फलस्वरूप संपादक ने जो संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत किया वह पूरे चार दशकों की मुसलसल झांकी नहीं हो पाया. पहले दो-तीन पृष्ठ हिंदी कहानी की पृष्ठभूमि को मिले और एक-एक दशक के हिस्से दस-दस सफे भी न आए. शायद अव्याप्ति दोष के कारण ही ऐसा हुआ कि संपादकीय टिप्पणियों में अंतर्विरोध और विसंगतियां भी उभर आयीं. तथापि इस संकलन में जो कुछ समाकलित हो सका, जिस रूप में यह हमारे सामने है, कम महत्वपूर्ण नहीं है.

हिंदी कहानी विचार-मूल्य की दृष्टि से तीन तरह की कहानी है. एक : **यथार्थवादी संकल्प की कहानी**, दो : **यथार्थवाद विरोधी विकल्प की कहानी** और तीन : **उक्त दोनों के बीच की कहानी**. इस संकलन की यह विशेषता रेखांकित की जा सकती है कि इसमें तीनों तरह की अधिकांश कहानियां संकलित हो गई हैं, और इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह संकलन किसी भी दृष्टि से एकांगिता का शिकार नहीं हो पाया. आजादी के बाद लिखी गयी लगभग सभी तरह की महत्वपूर्ण कहानियां इस संकलन में शामिल की गयी हैं. आजादी के बाद की कहानी अपनी अंतर्वस्तु में **मोहभंग की कहानी है**. इस दृष्टि से वयोवृद्ध कथाकार विष्णु प्रभाकर ने 1947 में ही (आजादी के चंद महीनों बाद) एक कहानी 'सुराज' लिखी थी जो मोहभंग की प्रक्रिया के लिए एक 'ट्रेंड सैटर' कहानी कही जा सकती है. झगड़ू मिश्र की उल्लास भरी आशा के दुःखांत हताशा में विलीन हो जाने के सामाजिक कारणों को भी इस कहानी में इंगित किया गया है. यद्यपि कहानी में कलात्मक तराश की वह तुर्शी नहीं है जो कालांतर में आयी तथापि आजादी के बाद तत्काल प्रगट होने वाली मोहभंग की प्रक्रिया को उद्घाटित करने वाली इस कहानी को ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में देखा जा सकता है. इस दृष्टि से संपादक ने श्री विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' जैसी बार-बार चर्चित कहानी को न लेकर, इस कहानी को लिया. लीक से हट कर चयन की यह मिसाल काबिले-तारीफ ही कही जाएगी. इसी प्रकार हंस राज 'रहबर' की 'गडोलना' कहानी (जो बराबर चर्चा का विषय बनी) को न लेकर महेश दर्पण ने 'रहबर' की 'वर्षगांठ' कहानी का चुनाव किया. रहबर जी की 'वर्षगांठ' कहानी फैंटेसी की शैली में सन् सैंतालिस के बाद की भारतीय जनता को (यानी आजादी के बाद की पीढ़ी को) यह ऐतिहासिक चेतावनी देती है कि भविष्य का निर्माण अपने इतिहास को भुला कर नहीं किया जा सकता.

यशपाल की कहानी 'उत्तराधिकारी' में कुशली नामक एक निम्न मध्यवर्गीय नारी संतान की आकांक्षा से उद्वेलित होती हुई अपने अपंग पति को छोड़ कर एक स्वस्थ युवक प्रेमी के साथ चली जाती है लेकिन जब न्याय-व्यवस्था इस प्रेम-प्रसंग की उपज 'संतान' को उसके पति के हवाले कर देती है तो कुशली भी गाय की तरह अपने बच्चे से बंधी चली आती है और पति उसे पुनः स्वीकार कर लेता है. यशपाल की कहानी यथार्थवादी कला के साथ यह संवेदनात्मक उद्देश्य संप्रेषित करती है कि नारीत्व और मातृत्व के द्वंद्व में अंततः मातृत्व निर्णायक सिद्ध होता है. अमृतराय की कहानी 'हजार मन राख और चिंगारी' में सरस, सहज और रोचक शैली में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि निम्नवर्गीय परिवारों के बच्चों के कोमल मन को गरचे यह व्यवस्था हजार मन राख से ढक रही है तथापि उन बच्चों के मन में सुलगती चिंगारी उस राख को चीर कर ऊपर आ रही है.

इसी संदर्भ में द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की '**बच्चे**' शीर्षक लंबी कहानी भी एक महत्वपूर्ण रचना है. विधा की दृष्टि से निर्गुण जी की यह कहानी लघु उपन्यास और लंबी कहानी के बीच की संरचना है.

श्री अमृत लाल नागर की कहानी 'बंदिनी' में आदर्शवादी पिता की छत्रछाया में पली कुंती को अपने पति के हाथों, घर में बंदिनी हो कर उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है. दूसरी ओर एक आधुनिका किंतु मूल्यहंता नारी कामिनी अपने यौवन और प्रभुत्व के मद में कुंती के पति को अपने इशारों पर नचाती है. कामिनी अपनी बच्ची को भी प्यार नहीं देती और उसकी बच्ची कुंती के व्यवहार में मातृत्व की गंध पाकर उसे प्यार करने लगती है. कामिनी को कुंती का यह मातृत्व भरा प्यार भी आपत्तिजनक लगता है जबकि कुंती के पति के प्रति अपने कदाचार को वह आपत्तिजनक नहीं मानती. कहानी का अंत परंपरापरायण कुंती के मोहभंग से होता है. कुंती आदर्शवादी चोला उतार फेंकती है और अपने पति तथा कामिनी के कदाचारों और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हो जाती है. कामिनी की बेटी को मां का प्यार देने के अपने नैतिक और मानवीय अधिकार की रक्षा के लिये भी वह अपने पति और कामिनी को चुनौती देती है.

जैनेंद्र कुमार और अज्ञेय की चर्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों (क्रमशः 'पाजेब' और 'रोज') के स्थान पर क्रमशः 'इनाम' और 'शरणदाता' को संकलन में शामिल किया गया है. कारण यह है कि ये दोनों कहानियां आजादी के बाद लिखी गयी हैं.

अज्ञेय की 'शरणदाता', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है' और महीप सिंह की 'पानी और पुल' ये तीनों कहानियां आजादी के समय देश के सीने पर हो गए उस सांप्रदायिक जख्म (जो अब नासूर होता जा रहा है) के बारे में सार्थक टिप्पणियां करने वाली उल्लेखनीय कहानियां हैं.

संकलन में कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' कहानी ली गई. बहुचर्चित कहानी 'मांस का दरिया' को संपादक ने तरजीह नहीं दी और इस प्रकार महेश दर्पण ने इस बात का सबूत दिया कि वे कहानियों को, हिंदी कहानी की परंपरा और विकास की कड़ियों के रूप में ही देखना पसंद करते हैं. प्रेमचंद की 'कफन' कहानी की ही अगली कड़ी के रूप में कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' को देखा जा सकता है, जो मानव के संवेदनशून्य और अमानवीकृत होते जाने की ट्रेजेडी को और स्पष्ट कर देती है. इस क्रम में नए कहानीकार की एक कहानी 'कफन-84' (अरुण प्रकाश) का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा जो इस संकलन में संकलित होने से रह गयी.

राम नारायण शुक्ल की 'फिर' कहानी में बिना किसी बड़बोलेपन के मौजूदा समाज-कल्याण के उस भयावह शिकंजे की ओर उंगली उठाकर इशारा किया गया है जिसकी गिरफ्त में एक बार फंसने पर मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी जरायम पेशा हो जाने के लिए अभिशप्त हो जाता है. जीविकोपार्जन के तकाजे, बेरोजगारी, भुखमरी और बीमार कर देने वाली गरीबी से त्रस्त होकर, न चाहते हुए भी, पिता अपने बेटे को उसी अभिशप्त राह पर चलाने के लिए विवश हो जाता है जिस पर कि वह चलते-चलते बर्बाद हो चुका है. कला संबंधी कंटेंट और फार्म दोनों ही दृष्टियों से यह एक महत्वपूर्ण कहानी है.

इब्राहीम शरीफ की कहानी 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' भी वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर एक उल्लेखनीय कहानी है. सन सैंतालीस के बाद भारतीय किसान के कंगाल होते-जाने फिर मजदूरी के लिए दर-दर भटकने और पूरे परिवार के, ज़मीन के आखिरी टुकड़े से भी हाथ धो बैठने की दर्दनाक गाथा को गहरी शिद्दत और पूरी संजीदगी के साथ कलात्मक ढंग से चित्रित कर देने वाली यह एक अद्भुत कहानी है.

शेखर जोशी की कहानी 'बदबू' इस संकलन में शामिल है. यह कहानी निम्न मध्यवर्गीय मानसिकता के मोहभंग की कहानी है. जब निम्न मध्यवर्ग का बेकार नौजवान मजदूर होने के लिए विवश हो जाता है तो शुरू-शुरू में उसे अपने हाथों से बदबू आती है. लेकिन धीरे-धीरे यह बदबू कम होती जाती है. बाद में हाथों से बदबू का गायब हो जाना एक दहशत भरा अनुभव है लेकिन मध्यवर्गीय मानसिकता के प्रति यह मोहभंग भी है.

अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक', मन्नू भंडारी की 'त्रिशंकु', राजेंद्र यादव की 'जहां लक्ष्मी कैद है' बेहद चर्चित कहानियां हैं और अपने अपने ढंग से सामाजिक तथा पारिवारिक संबंधों और स्थितियों से मोहभंग कर देने वाली रचनाएं हैं और शायद इसीलिए इस संकलन में शामिल की गई हैं. भैरव प्रसाद गुप्त की 'हनुमान' कहानी व्यवस्था के प्रति सर्वहारा के मोहभंग को बड़ी शिद्दत के साथ चित्रित कर देती है और यह भी सुझाव देती है कि 'हनुमान' अब राम भक्त नहीं रहे, अपने हित-अहित को पहचानने लगे हैं. यह पहचान निष्क्रिय अहसास नहीं है, वह सक्रिय और क्रुद्ध कार्य में भी परिणत होने लगी है. इसी परंपरा में **इसराइल की 'दर्द का रिश्ता'** एक अन्य महत्वपूर्ण कहानी है जो इस तथ्य को रेखांकित कर देती है कि दर्द के रिश्ते खून पर आधारित रिश्तों का अतिक्रमण कर जाते हैं. इस क्रम में मुद्राराक्षस की कहानी 'फरार मल्लावां माई राजा से बदला लेगी' बरबस ध्यान आकर्षित करती है. सर्वहारा का चरित्र कितना गहन, गंभीर और समर्पित हो सकता है, इसका एक उदाहरण कहानी का प्रमुख पात्र रामेश्वर है. कर्मचारियों की एक यूनियन का प्रतिनिधि रामेश्वर अपने साथियों के साथ मौनभाव से कार्य करते हुए, प्रबंधकों के इशारे पर किए जाने वाले यातना-चक्र का शिकार होकर खत्म हो जाता है, लेकिन पाठकों के हृदय में एक सक्रिय सहानुभूति और बेचैनी का संचार करता है, कहानी की यही सार्थकता है.

इसी संदर्भ में चित्रा मुद्गल की कहानी 'मामला अभी आगे बढ़ेगा' कलात्मक किंतु सहज और सर्जनात्मक अंदाज में एक चेतावनी देती है कि मोट्या जैसे घरेलू नौकर-चाकर अब दब्बू नहीं बने रहेंगे, अपने लिए मानवोचित व्यवहार के लिए, अब वे भी, उतावले हो रहे हैं. यह ठीक है कि निर्णायक समय अभी नहीं आया है लेकिन उनका रोष-आक्रोश भी उफनने लगा है. मामला अब इसी स्थिति तक रुका नहीं रहेगा, मामला अब आगे बढ़ेगा. कहानी का अंत मार्मिक, सांकेतिक और गहरे अर्थ का व्यंजक है.

गरीबी की रेखा से निचले स्तर का जीवन जीने वाली जनता के बारे में लिखी प्रेमचंद की 'ईदगाह', 'पूस की रात' और 'सद्गति' जैसी कई कहानियों के अनुक्रम में अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक' कहानी का उल्लेख किया जा चुका है. इसी श्रृंखला में जगदंबा प्रसाद दीक्षित की कहानी 'मुहब्बत' ध्यान खींचती है. एक फुटपाथ पर भटकने वाली अधेड़ औरत और एक बेरोजगार युवक के बीच उमड़ उठे इंसानी लगाव को महानगर की फुटपाथी जबान में बयान करने वाली यह कहानी किस्सागोई की एक नई पेशकश है.

अवध नारायण मुद्गल की 'कबंध' आधुनिक ढंग के एक दब्बू चरित्र की दिनचर्या को खुलासा करती है. कहानी का शीर्षक 'कबंध' एक मौजूदा यथार्थ को मिथक के बहाने गहरी व्यंजना के साथ उद्घाटित कर देता है. समकालीन समाज में विद्रोही चरित्र हैं तो दब्बू चरित्र भी हैं. यह दब्बूपन मानव से उसकी पहचान ही छीन लेता है.

मध्यवित्त पारिवारिक परिदृश्यों को उभारने वाली कहानियों में ममता कालिया की कहानी 'आपकी छोटी लड़की' एक उल्लेखनीय कहानी है. बड़ी बेटी को 'लायक' समझकर सिर चढ़ाया जा रहा है और छोटी बेटी से कमर-तोड़ काम लिया जा रहा है. सुबह से शाम तक बेचारी टुनिया किसी न किसी काम में फंसी रहती है. तिसपर भी बेवकूफ और बुद्धू कहलाती है. बड़ी लड़की चालाक है, बुद्धू बनाना जानती है, सारे घर को अपने इशारे पर नचाती है. शोषण और प्रतियोगिता से ग्रस्त समाज में, आप परिवार को बचा कर नहीं रख सकते. जो जहर घर के बाहर की हवा में घुला है, घर के भीतर की हवा उससे अछूती रहे, यह कैसे हो सकता है? इसी संदर्भ में लक्ष्मीधर मालवीय की 'पिता मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा कर देना!' कहानी भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करेगी. चले-आते पारिवारिक संबंधों से मोहभंग, पूंजी पर आधारित समाज की परिवार-व्यवस्था में, एक अनिवार्य नियति का रूप ले लेता है

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सर्वत्र पारिवारिक संबंध निस्सार हो चुके हैं. इसके अपवाद भी हो सकते हैं. शैलेश मटियानी की कहानी 'अर्द्धांगिनी' ऐसे ही एक अपवाद का परिदृश्य उपस्थित करती है. सूबेदार नैना सिंह एक महीने की छुट्टी पर अमृतसर से उत्तर प्रदेश के पहाड़ की ओर लौटा है. महीना भर घर में गुजार कर वह फिर अमृतसर के लिए प्रस्थान करता है. देखने में कहानी बस इतनी-सी है. लेकिन शैलेश मटियानी ने अपनी अद्भुत वर्णन क्षमता, देशज संवेदना (नेटिव सेंसिबिलिटी) के सर्जनात्मक इस्तेमाल द्वारा इसे, जीवन-रस से सराबोर कर दिया है. 'अर्द्धांगिनी' कहानी एक प्रेमपूरित गार्हस्थ्य का परिदृश्य उभारती है लेकिन पूरी कठिनाइयों, परेशानियों और अभावों के अहसास के साथ. कोई रूमानी चित्रण यहां नहीं है. यथार्थपरक प्रेम और प्रेमपरक यथार्थ का जीता जागता हाड़-मांस वाला परिवेश यहां प्रतिबिंबित है. कहानी की भाषा कुछ अटपटी लग सकती है तथापि वह किताबी नहीं है और बोलचाल की प्रवाहपूर्ण शैली का मजा देती है

पारिवारिक परिदृश्यों को उभारते हुए मानवीय संबंधों पर टिप्पणी करने वाली कहानियों में रमाकांत की **'जिंदगी भर का झूठ'** कहानी मनुष्य के दोहरे मानदंडों पर आधारित जीवन, चिंतन और कर्म की विसंगतियों की ओर इशारा करती है रमाकांत पात्रों को व्यंग्य का विषय बनाते समय अपनी मूक किंतु अर्थ व्यंजक शैली में उनके समाजार्थिक अभावों को भी ध्वनित करते हैं और इस सारी प्रक्रिया में मनुष्य के प्रति अपनी करुणा का परिचय दे जाते हैं. धर्मेंद्र गुप्त की 'स्थिति' कहानी में एक सत्रह वर्षीय लड़की अपने गैर-जिम्मेदार शराबी पिता और लगातार झगड़ने के लिए तत्पर माता के संवेदन शून्य व्यवहार को झेलती है. ये दोनों कहानियां निम्न-मध्य-वित्त के परिवारों में व्याप्त विभीषिकाओं की झलक दे जाती हैं. इन पारिवारिक विभीषिकाओं का कारण आर्थिक अभाव, चरित्रगत विसंगतियां और जीवन के बढ़ते हुए तकाजे होते हैं और इस यातना-चक्र का शिकार या तो मासूम बच्चे होते हैं या फिर जवान होती हुई लड़कियां और 'घरेलू' पत्नियां होती हैं.

यादवेंद्र शर्मा चंद्र की कहानी 'चकवे-चकवी की बात' में कहानीकार पुरानी, परंपरागत किंतु रोचक शैली अपनाता है और इस सामाजिक निष्कर्ष को रेखांकित करता है कि मौजूदा पुरुष-प्रधान समाज में पुरुष अपने द्वारा नारी के प्रति किए गए स्वेच्छाचारी आचरण पर विश्वासघात को तो अपनी स्वतंत्रता के मूल्य के रूप में महिमामंडित करता है लेकिन जब प्रतिकार के रूप में नारी उसके विश्वास को ठेस पहुंचाती है तो वह 'त्राहि! त्राहि!!' कर उठता है.

ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन', काशीनाथ सिंह की 'अपना रास्ता लो बाबा' और रमेश उपाध्याय की 'पानी की लकीर' जैसी कहानियां भी विशिष्ट कलात्मक कथा-प्रयोगों के रूप में पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगी. ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन' एक बहुचर्चित कहानी है जो अपनी जमीन से नाता तोड़ कर 'महानगर' और 'विदेश-नगर' की ओर ललचाई दृष्टि से दौड़ने और सुख-सुविधा बटोरने वाली मानसिकता और यश-लोलुप बुद्धिजीविता को सर्जनात्मक भाषा और कलात्मक उन्मेष के साथ दिगंबर कर देती है.

मणिका मोहिनी की 'ढाई आखर प्रेम का' कहानी में दो पति-विहीन महिलाओं के साहचर्य की अंतरंगता को एक निहित उद्देश्य के साथ चित्रित किया गया है. एक नारी है जो पूरी स्वाधीनता के साथ फ्लर्टिंग करने को ही 'जीने का आनंद' मानती है और दूसरी नारी वह है जो पति, बच्चों और भरे पूरे घर के लिए तरसती हुई अपना एकांत और अध्ययन व लेखन के हवाले कर देती है.

समकालीन चर्चित कहानीकारों में पंकज बिष्ट, संजीव, उदय प्रकाश और ब्रजेश्वर मदान की कहानियों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है. पंकज बिष्ट की कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' एक प्रयोगधर्मी और फैंटेसीपरक कहानी है जो उपभोक्ता संस्कृति की चपेट में आ फंसे एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार के 'गम की कहानी' को 'मजे ले ले कर' कहती है. उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन' यद्यपि प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' और भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' की ही परंपरा की याद दिलाती है तथापि यह कहानी अपने निर्वाह और व्यवहार (ट्रीटमेंट) में इतनी अति-कारुणिक (ओवर-पैथेटिक) हो गई है कि अति नाटकीय प्रयोग बन कर रह गई है. संजीव की कहानी 'ट्रैफिक जाम' मौजूदा व्यवस्था में आ गए गतिरोध पर व्यंग्य तो करती है लेकिन ऐसा करते-करते कहानी ही एक तरह के कथापरक गतिरोध का शिकार हो गयी है.

सुरेंद्र अरोड़ा की कहानी 'सर सुरेंद्र बहादुर सिंह आज जरूर जीतेगा' में एक निम्न मध्यवर्गीय युवक की जुआ खेलने की लत का मनोवैज्ञानिक किंतु सहानुभूति-परक चित्रण है.

कहानीकोश में नए कहानीकार हरि सुमन बिष्ट की 'मजदूरी' कहानी हरिजन-दाह जैसी भयावह और अमानुषिक घटनाओं की ओर उंगली उठाती है. उच्च वर्ण के सामंतों द्वारा हरिजनों के घर जलाने के बाद शासन-व्यवस्था द्वारा मुआवजा देने संबंधी घोषणाओं के अमली रूपों की विडंबनाओं पर भी यह कहानी अपना फोकस डालती है.

इस प्रकार, कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि महेश दर्पण ने इस कहानी कोश के संपादन में तथा कहानियों के चयन में एक उदार, व्यापक और विविधात्मक सामाजिक दृष्टि का परिचय दिया है. अधिकांश महत्वपूर्ण और चर्चित कहानियां इस संकलन में समाकलित हो गई हैं. फिर भी मोहन राकेश, हरि शंकर परसाई, धर्मवीर भारती, शिव नारायण श्रीवास्तव, मार्कंडेय, कामता नाथ, राजी सेठ, मधुकर सिंह, हरिवंश कश्यप, सच्चिदानंद धूमकेतु, अरुण प्रकाश, रामेश्वर उपाध्याय, मिथिलेश्वर, विजयकांत, शेखर, हरिहर प्रसाद और स्वयं महेश दर्पण की कहानियां भी शामिल हो पातीं तो यह परियोजना और अधिक विस्तृत हो व्यापक हो जाती. तथापि कितना भी समेटो, कुछ न कुछ फिर भी बच रहता है! □

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-कोश
संपादक : महेश दर्पण
प्रकाशक : सचिन प्रकाशन, 7/34 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
मूल्य : दोनों खंड (2400 पृष्ठ) : छः सौ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

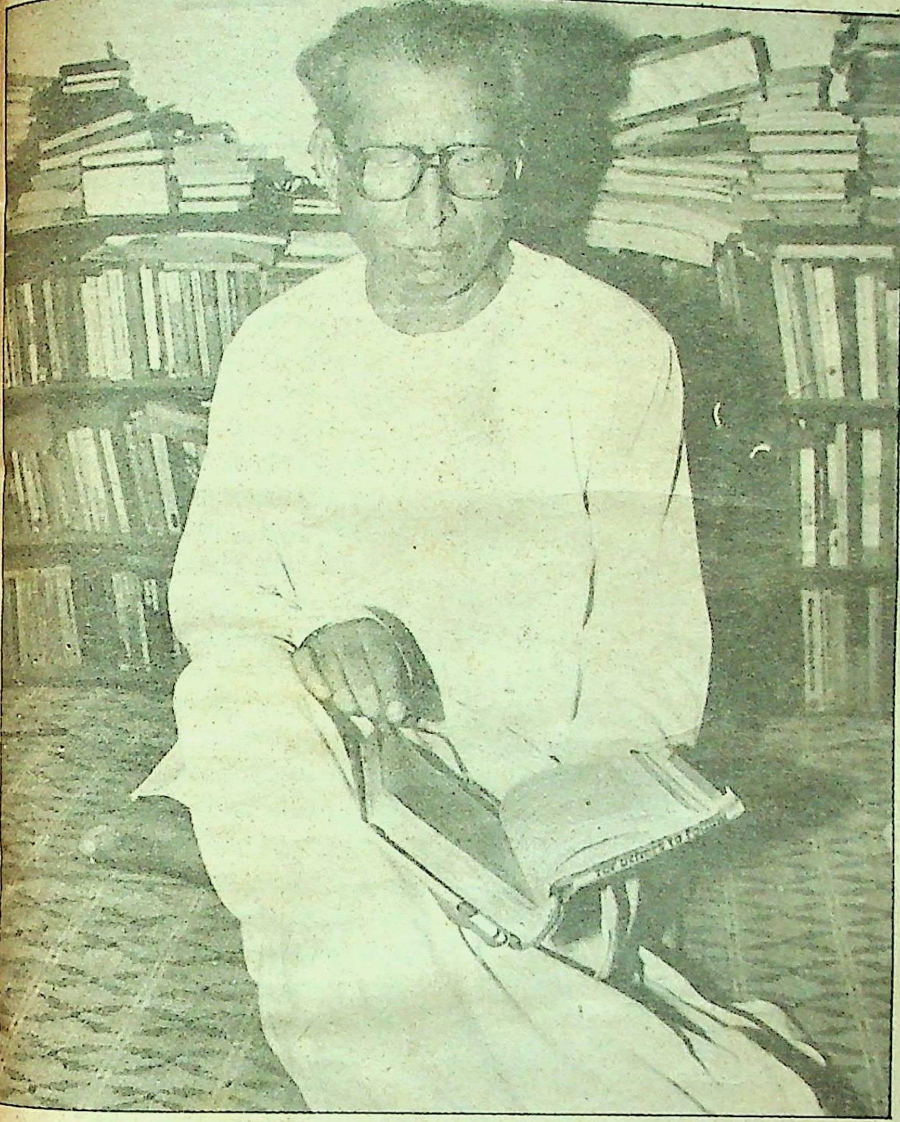

पार्टनर, तुम्हारी पालिटिक्स क्या है?

बातचीत का यह अंश डा. नामवर सिंह द्वारा स्वयं संपादित, परिवर्तित और पुनर्लिखित है. बातचीत के मूल रूप में उन्होंने कई महत्वपूर्ण और बुनियादी परिवर्तन किये हैं. संभवतः इसके पीछे उनके विचारों में पिछले दिनों आने वाले परिवर्तनों की भूमिका हो. बहरहाल, हमारे पास बातचीत का मूल रूप कैसेट्स में सुरक्षित है. पाठकों से आग्रह है कि बातचीत की इस किस्त को डा. नामवर सिंह के स्वतंत्र आलेख के रूप में पढ़ा जाये. और हमें इस अंश के आयोजन से मुक्त रखा जाये.

सुधीश पचौरी
उदय प्रकाश

☐ भारत भवन के साथ आपके पुराने संबंध रहे हैं. अचानक संबंध तोड़ने का फैसला आपने क्यों किया?

जनवरी ८७ में 'आलोचना समवाय' के अवसर पर विशेषतः 'आलोचना और राजनीति' शीर्षक गोष्ठी के बाद, जिसमें अशोक बाजपेयी की 'राजनीति' का असली चेहरा प्रकट हुआ. निश्चय ही मुखौटा लगाकर मुझे मुक्तिबोध का प्रसिद्ध वाक्य दुहराना पड़ा था : 'पार्टनर तुम्हारी पालिटिक्स क्या है?' जवाब तो खैर क्या आता! और संवाद खत्म हो गया.

☐ लेकिन भारत भवन के समारोहों में पहले आप लगातार जाते रहे हैं. 'पूर्वग्रह' के आयोजनों में आपने भाषण भी दिये हैं. तब आपने इसका विरोध क्यों नहीं किया? इतनी देर से विरोध का कारण?

बहिष्कार बेशक अब किया है, लेकिन 'पूर्वग्रह' से असहमति और विरोध का रिश्ता पहले से ही रहा है. तभी से जब भारत भवन का अस्तित्व भी न था. जब 'पूर्वग्रह' मध्यप्रदेश कला परिषद की पत्रिका थी. 'आलोचना और पूर्वग्रह' की नोंकझोंक तो एक अर्से से चली आ रही है. अभी 'पूर्वग्रह' की दसवीं वर्षगांठ पर सितंबर ८४ में 'जनतंत्र और आलोचना' पर जो संगोष्ठी हुई थी उसमें भी मैंने 'पूर्वग्रह' के सांस्थानिक आधार की स्पष्ट घोषणा की मांग करते हुए उसकी लोकतांत्रिक चिंता की असलियत को उद्घाटित करने का प्रयास किया था. इसके बाद 'आलोचना समवाय' में भी मैंने जो कुछ कहा, वह सबका सब 'पूर्वग्रह' में यद्यपि प्रकाशित नहीं हुआ है, फिर भी प्रकाशित गोष्ठी विवरण से मेरे पक्ष का बहुत कुछ आभास मिल जाता है. इसलिए विलंब विरोध में नहीं, बहिष्कार में हुआ और इस विलंब का एक निश्चित कारण है.

भारत भवन की स्थापना से पहले मध्यप्रदेश कला परिषद के तत्वावधान में जो सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहे थे उनकी प्रकृति काफी भिन्न थी. संप्रदायवादी शक्तियां सस्ते गीतकारों के साथ मिलकर 'कला परिषद', 'पूर्वग्रह' और अशोक बाजपेयी पर उन दिनों जिस तरह हमले कर रही थीं उससे 'पूर्वग्रह' की साहित्यिक-सांस्कृतिक दृष्टि का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है. उदयप्रकाश तो वहां काम भी कर चुके हैं. ये स्वयं गवाही दे सकते हैं. मंगलेश डबराल भी कुछ दिन वहां रह चुके हैं. आप चाहें तो उनसे भी पूछ सकते हैं. वह समय था जब 'पूर्वग्रह' मुक्तिबोध का झंडा उठाये फिरता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धर्मवीर भारती के 'धर्मयुग' का कोपभाजन था. अज्ञेय की ओर न उसने रुख किया, न अज्ञेय ने उसकी ओर. हरिशंकर परसाई, ज्ञानरंजन तथा मध्यप्रदेश के अन्य प्रगतिशील लेखक इस दौर में कुछ मुद्दों पर मतभेद के बावजूद सामान्य रूप से अशोक बाजपेयी के उस सांस्कृतिक अभियान में सहयोग कर रहे थे. स्वभावतः इस दौर के अन्य प्रगतिशील और जनवादी लेखकों की तरह हमने भी अपना सहयोग दिया और इसके लिए हमें आज कोई पछतावा भी नहीं है.

आगे चलकर जब पूर्वग्रह की दृष्टि बदली तो हमें भी स्वभावतः अपना रुख बदलना पडा. स्पष्ट हो गया कि अब संवाद संभव नहीं. संवाद तब संभव था क्योंकि असहमति के साथ सहमति का भी एक आधार था.

☐ भारत भवन और 'पूर्वग्रह' में जो यह बदलाव आया है, क्या आप यह ठीक-ठीक कह सकते हैं कि वह कब से आया है ? वैसे मुझे ध्यान आता है कि 'पूर्वग्रह' का एक अंक १९८३-८४ में 'काल और सृजन' पर केंद्रित था. उसमें ऐसे ही विचारकों और चिंतकों को बुलाया गया था, जिन्होंने पुनरुत्थानवादी किस्म की भारतीयता की बात की थी. इस मामले में वह अंक एक विभाजक अंक है. काल की भारतीय अवधारणा का रोग भी 'पूर्वग्रह' को तभी से लगा था. इतिहास और यथार्थ का विरोध और निषेध भी इसी अंक से स्पष्ट रूप से शुरू हुआ.

हो सकता है. मैंने इस पर कोई रिसर्च नहीं की है. 'पूर्वग्रह' के 'काल और सृजन' विषयक अंक की याद जरूर है. वह १९८३ के शुरू के महीनों का ही अंक होगा. जहां तक मुझे याद है उन दिनों 'पूर्वग्रह' कला परिषद से ही निकलता था. भारत भवन अस्तित्व में आ चुका था, लेकिन यह पत्रिका उसके दायरे में नहीं थी. 'पूर्वग्रह' भारत भवन के अधीन संभवतः १९८५ के मध्य में किसी समय आया. जो हो, यह तो औपचारिकता की बात हुई. संपादक तो वही थे. रही 'काल और सृजन' विषय पर गोष्ठी की बात. तो आपके ध्यान में यह भी होगा कि उस गोष्ठी के सूत्रधार निर्मल वर्मा थे जो उन दिनों भोपाल में 'निराला सृजनपीठ' पर आसीन थे. सृजन के संदर्भ में 'काल' पर चर्चा करने में कोई हर्ज नहीं है. देखना यह है कि वह चर्चा सृजन कर्म को किस दिशा की ओर ले जाती है. आपका यह कथन सच मालूम होता है कि वह काल चर्चा इतिहास और यथार्थ के निषेध की ओर उन्मुख थी. इस संदर्भ में इस तथ्य की याद दिलाना जरूरी है कि अज्ञेय भी कुछ समय पहले से काल चिंता में लगे हुए थे जिसका फल 'संवत्सर' के रूप में कुछ ही समय पहले आ चुका था. कालातीत लोगों की यह काल-चिंता हिंदी के औसत पाठकों के लिए काफी आतंककारी है.

जो हो, मेरी दृष्टि से 'पूर्वग्रह' के उस विशेष अंक की अपेक्षा १९८४ का वर्ष विशेष महत्वपूर्ण है जब भोपाल की संस्कृति में परिवर्तन या अवसरण हुआ. इस परिवर्तन का संबंध मेरी दृष्टि में भारत भवन की स्थापना से जुड़ता है. भारत भवन के कारण भोपाल भारत की सांस्कृतिक राजधानी कहा गया. इस तरह संस्कृति एक 'सत्ता' बनी. सत्ता ने मद को जन्म दिया. और मद विनाश का मार्ग है.

☐ क्या यह कहना ज्यादा ठीक न होगा कि जबसे भारत भवन को फोर्ड फाउंडेशन की आर्थिक सहायता मिली, तबसे अशोक बाजपेयी के संस्कृति संबंधी नीतियों और कार्यकलापों में परिवर्तन आया?

मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम कि भारत भवन को फोर्ड फाउंडेशन की मदद कब मिली और मैं निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कह सकता कि यहां प्रत्यक्ष कारण-कार्य संबंध है. किंतु 'फोर्ड फाउंडेशन' की ओर से भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अब तक जिस तरह के हस्तक्षेप होते रहे हैं उससे भारत भवन की सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में संदेह तो पैदा होता ही है. कुछ दिन पहले मैंने जार्ज रोजेन की पुस्तक 'वेस्टर्न एकानमिस्ट्स एंड ईस्टर्न सोसायटीज' 'पश्चिमी अर्थशास्त्री और पूर्वी समाज' नामक पुस्तक पढ़ी थी. यह पुस्तक अमरीका से ही प्रकाशित हुई है. इसमें 'फोर्ड फाउंडेशन' की गतिविधियों का कच्चा चिट्ठा दिया गया है. 'फोर्ड फाउंडेशन' ने भारत के आर्थिक विकास को विशेष दिशा में मोड़ने के लिए कितना ज़ोड़-तोड़ किया, यह बात इस पुस्तक से खुलकर सामने आ जाती है. इसी तरह अभी हाल में मैंने अमरीका से ही प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिका 'डेडलस' के एक अंक में 'फोर्ड फाउंडेशन' की सांस्कृतिक गतिविधियों का विवरण पढ़ा. यह फाउंडेशन स्वाधीनता के बाद से ही भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करता आ रहा है. आरंभ के दो दशकों में अमरीकी 'शीत युद्ध' की नीति के तहत वह भारत की उन साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को आर्थिक मदद देता रहा जो मार्क्सवाद और साम्यवाद के खिलाफ थी. वियतनाम युद्ध के बाद शीत युद्ध की विचारधारा के निस्सार साबित हो जाने के बाद अब 'फोर्ड फाउंडेशन' अन्य पूर्वी देशों के साथ-साथ भारत में 'सांस्कृतिक सापेक्षतावाद' की नीति को बढ़ावा देने में दिलचस्पी ले रहा है. इस नीति के तहत वह भाषाई अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता, अल्पसंख्यकों की धार्मिक अस्मिता आदि बातों पर बल देने वाली संस्थाओं को मदद देना अपना कर्तव्य समझता है. इस दौर में फोर्ड फाउंडेशन का बल आधुनिकता और आधुनिकीकरण से अधिक 'प्राचीन परंपरा' की रक्षा पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. इसके लिए वह ऐसे संग्रहालयों को विशेष रूप से अनुदान दे रहा है जो अपनी प्राचीन सांस्कृतिक निधि तथा विविध जनजातियों की कलाकृतियों को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहे हैं.

भारत भवन इस परंपरावाद की रक्षा में फोर्ड फाउंडेशन की नीति का अनुपालन कितनी दूर तक कर रहा है, इसका निर्णय विचक्षण जन ही कर सकते हैं. किंतु भारत भवन जो एक अतिरिक्त कार्य कर रहा है, वह भूलता है कि साहित्य में कम्युनिस्टों को मिटाने की कोशिश में इलाहाबाद का 'परिमल' स्वयं मिट गया. वैसे, भारत भवन के सारे कारनामों के लिए सिर्फ फोर्ड फाउंडेशन को दोष देना ठीक नहीं. भारत भवन फोर्ड फाउंडेशन का मोहताज नहीं. इस मदद के बिना भी वह वही करता जो कर रहा है.

□ जब आपको 'फोर्ड फाउंडेशन' की बात मालूम थी तो भी आप भारत भवन के आयोजनों में भाग लेने क्यों जाते थे?

हो सकता है कि मेरा यह भ्रम हो, लेकिन मेरी यह धारणा है कि 'फोर्ड फाउंडेशन' या ऐसी ही किसी अन्य अमरीकी एजेंसी की आर्थिक सहायता मात्र किसी संस्था के बहिष्कार के लिए पर्याप्त कारण नहीं है. हमारे देश में न जाने कितने सरकारी, गैरसरकारी क्षेत्रों में अमरीकी सहायता मिल रही है—क्या हमें उन सबका पूरा पता है? किसका-किसका बहिष्कार करेंगे? बहिष्कार से एक नैतिक अहंकार की तुष्टि अवश्य होती है, लेकिन कर्तव्य की इतिश्री नहीं होती. असली काम तो संघर्ष का है. अवसर मिले और जब तक मिले तो अंदर से भी संघर्ष करें और यह संघर्ष कोई अनैतिक कार्य नहीं है. विचारों की दुनिया में तर्क का जवाब तर्क है, आरोप-प्रत्यारोप नहीं. 'फोर्ड फाउंडेशन' की मदद का आरोप लगाकर किसी संस्था को लांछित तो किया जा सकता है किंतु उसके विचारों का खंडन अपने आप नहीं हो जाता. विचार तो बेहतर विचार से कटते हैं. एक जमाने में इलाहाबाद की साहित्यिक संस्था 'परिमल' को 'कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम' जैसी सी. आई. ए. द्वारा स्थापित बदनाम संस्था का मंच कहा गया, किंतु इस आरोप के बावजूद हिंदी में लगभग एक दशक तक परिमलियों के साहित्यिक मत का असर रहा.

□ पर आप 'पूर्वग्रह' के उस अंक की याद कीजिए जिसमें उन्होंने अपने आयोजन 'आलोचना समवाय' में भाग लेने के इच्छुक मूर्धन्य वामपंथी आलोचकों द्वारा अशोक बाजपेयी को लिखी चिट्ठियां छापी हैं. ये सारे आलोचक न सिर्फ वामपंथी, प्रगतिशील या मार्क्सवादी आलोचक हैं वरन् कई वामपंथी लेखक संगठनों से जुड़े हुए हैं. उसी अंक में छपे अपने पत्र में डा. रामविलास शर्मा ने बिल्कुल स्पष्ट रूप से 'फोर्ड फाउंडेशन' और भारत भवन के संबंधों का सवाल उठाते हुए वहां आने से इंकार किया है. अब कैसे हो सकता है कि डा. रामविलास शर्मा को तो 'फोर्ड फाउंडेशन' के साथ भारत भवन के रिश्तों की बात मालूम रही हो और बाकी आलोचकों को न मालूम रही हो?

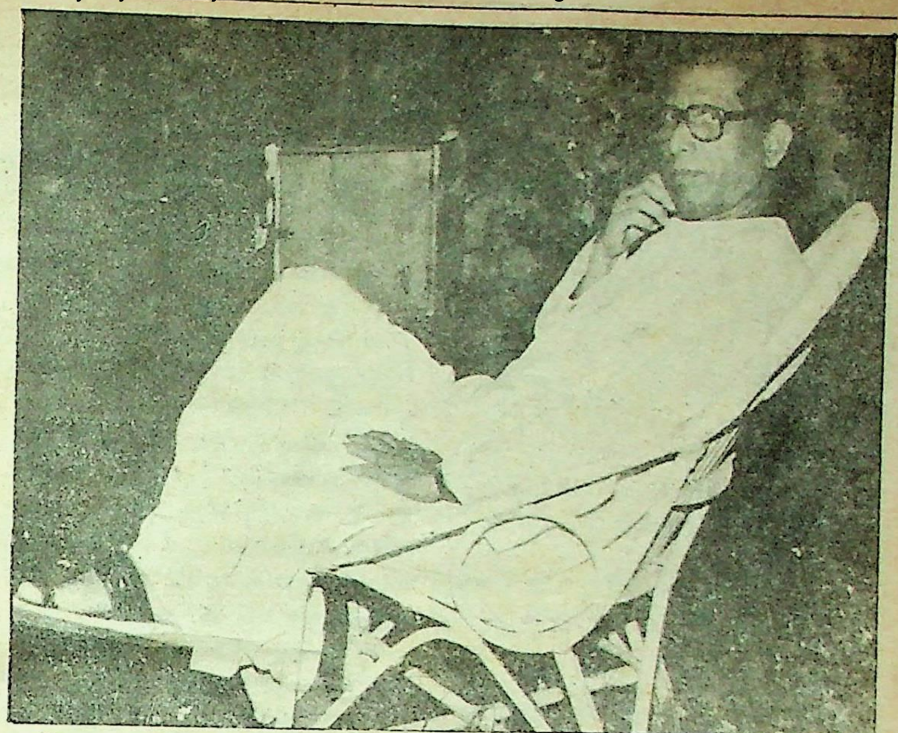

सवाल मालूम होने और न मालूम होने का नहीं, बल्कि फोर्ड फाउंडेशन की मदद को अ[illegible]यत देने का है. फिर भी, बेहतर है आप यह सवाल, उन वामपंथी आलोचकों से ही पूछें. रहे रामविलास जी, तो वे अपने नैतिक बोध में शुद्ध ब्रह्म हैं—किसी गोष्ठी में जाते ही नहीं, उसमें भी नहीं जिसे 'फोर्ड फाउंडेशन' की मदद नहीं मिलती. ऐसी हालत में 'फोर्ड फाउंडेशन' के विशेष कारण का जिक्र कर देने से गांठ का क्या जाता है? उल्टे लाभ यह हुआ कि तुरंत 'पूर्वग्रह' ने रामविलास जी पर केंद्रित एक विशेषांक निकालने की घोषणा कर दी.

□ वैसे 'पूर्वग्रह' ने आप पर भी केंद्रित एक अंक प्रकाशित किया था, लगभग पांच वर्ष पूर्व, आपके बहाने समूची प्रगतिशील चिंतनधारा के प्रति न सिर्फ विनम्रता, बल्कि अपनी सहमति भी प्रकट की थी. आपके सागर प्रवास का जिक्र करते हुए लगभग आपके शिष्यत्व की बात भी उन्होंने मानी थी. अब अचानक उसी 'पूर्वग्रह' और उन्हीं अशोक बाजपेयी द्वारा आपका विरोध कुछ आकस्मिक सा लगता है—आकस्मिक ही नहीं, नाटकीय भी.

'पूर्वग्रह' का नामवर सिंह पर केंद्रित अंक जरूर निकला है, लेकिन जहां तक मुझे याद है संपादकीय में वे बातें नहीं हैं जिनका जिक्र आपने किया है. यानी समूची प्रगतिशील चिंतनधारा के प्रति विनम्रता और सहमति आदि. सागर प्रवास और शिष्यत्व आदि की भी चर्चा संभवतः नहीं है. विनम्रता और सहमति से अशोक बाजपेयी वैसे भी परे हैं.

अच्छा हुआ जो आपने उस अंक का जिक्र कर दिया. उदयप्रकाश जी तो उस अंक के सहायक संपादक थे. साक्षात्कारों का संयोजन तथा अन्य सामग्रियों को जुटाने में उन्होंने काफी मेहनत की थी. बहुत-सी बातें मुझसे बेहतर वही जानते होंगे. फिर भी जाने कैसे उन्हें भ्रम हो गया कि मैंने अशोक बाजपेयी को रेमंड विलियम्स की परंपरा का आलोचक कहा था. यह बात उन्होंने इतने विश्वास से कही कि मुझे भी थोड़ी देर के लिएं संदेह हो गया. बहरहाल, मैंने उस अंक में प्रकाशित बातचीत को दुबारा देखा तो पाया कि अशोक बाजपेयी को प्रारंभिक दिनों के रेमंड विलियम्स जैसा आलोचक स्वयं उदयप्रकाश जी ने ही कहा था. मैंने तो अपनी दृढ़ असहमति व्यक्त करते हुए कहा था कि 'यदि तुलनीय नाम देना ही हो तो तत्काल एक नाम मेरी जुबान पर आ रहा है—ए. अल्वारेज. यह बात रेकार्ड दुरुस्त रखने के लिए.'

जहां तक 'पूर्वग्रह' के बदले हुए रुख का ताल्लुक है, वह न आकस्मिक है और न नाटकीय ही. जानने वाले जानते हैं कि हमले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार-पांच साल से हो रहे हैं, ज्यादातर परदे के पीछे से. फर्क है तो यह कि अशोक बाजपेयी स्वयं अब सामने आये हैं. ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने मुख्य आधार अज्ञेय को बनाया. वही अज्ञेय जिनके बारे में अशोक बाजपेयी ने कभी लिखा था : 'बूढ़ा गिद्ध क्यों पंख फैलाये?' उन्हीं की शिकायत है कि मैंने उन्हें 'चिपैंजी' क्यों कहा, वह भी मृत्यु के ठीक बाद. अब तो वह रिकार्ड भी ठीक कर दिया गया है और इस आरोप की दोनों बातें निराधार हैं. बहरहाल, इस पूरे प्रसंग में यदि नाटकीयता है तो अज्ञेय का अवतरण. जिस 'आलोचना समवाय' में मैंने भारत भवन के बहिष्कार की घोषणा की थी उसी में अज्ञेय पहली बार भारत भवन आये थे, संयोग से. अब इसका आप जो भी अर्थ लगायें

प्रसंगवश अज्ञेय की 'वत्सलनिधि' को भी इसी बीच 'फोर्ड फाउंडेशन' की मदद मिली. 'पोएट्री एशिया' की योजना 'आलोचना समवाय' के ही समय बनी. जिसके पुरोधा अज्ञेय होने वाले थे. दुर्भाग्य से यह सुयोग घटित न हो पाया, लेकिन 'घृत-मधु' के दुर्लभ संयोग से कोई आंखें कैसे मूंद ले? मेरा अपराध इतना ही है कि मैंने बंबई के अंग्रेजी साप्ताहिक 'आब्जर्वर' के दिल्ली प्रतिनिधि से बातचीत करते हुए इस सच्चाई का जिक्र कर दिया.

मेरे लिए यह घटना इसलिए महत्वपूर्ण है कि सन पचास के दशक में इलाहाबाद के युवा कवियों के 'परिमल' के साथ अज्ञेय के संयोग ने प्रगतिशील चेतना वाली नयी कविता को जनविमुख किया था और दो दशकों के अंतराल के बाद एक बार फिर उसी इतिहास की आवृत्ति होती दिखायी पड़ रही थी— अशोक बाजपेयी के 'भारत भवन' के साथ अज्ञेय का पुनः संयोग और एक बार फिर राजनीतिक चेतना संपन्न आज की जीवंत कविता को जीवन की चुनौतियों से दूर ठेलने का खतरा! आज का मोर्चा यह है. दांव पर भविष्य है, अतीत नहीं.

☐ 'एशिया कविता' की चर्चा से याद आया कि अब तो 'भारत भवन' आगामी वर्ष विश्व कविता का आयोजन करने जा रहा है, जिसमें पश्चिमी देशों के विश्वविख्यात कवियों के अलावा समाजवादी देशों के भी बड़े-बड़े कवि आ रहे हैं और अफ्रीका-लैटिन अमरीका के भी क्रांतिकारी कवियों के भाग लेने की संभावना है. इस ऐतिहासिक पहल के लिए क्या भारत भवन प्रशंसा का अधिकारी नहीं?

आपको श्रीकांत वर्मा की कविता की वह पंक्ति याद होगी— 'कोसल में विचारों की कमी है. कोसल अधिक दिन टिक नहीं सकता.' जहां विचारों की कमी होती है वहां जोर उत्सवों पर होता है. जब कोई संस्था एक के बाद एक महोत्सव करने लगे तो समझ लीजिए कि विचारों की पूंजी चुक गयी है और इस कमी को उत्सवों से ढंकने की कोशिश हो रही है. उत्सव की भी राजनीति होती है. इससे एक फायदा यह भी है कि लोग राग-रंग में भूलें रहेंगे. हमारी सरकार भी कुछ दिनों से विदेशों में एक के बाद एक उत्सव किये जा रही है. पहले अमरीका में, फिर फ्रांस में, इसके बाद रूस में और साथ-साथ जापान में, भारत भवन एक अर्से से उत्सवों पर जी रहा है, जब स्थानीय उत्सवों से काम न चला तो क्षेत्र विस्तार किया गया जिसकी परिणति है विश्व कविता! लेकिन विश्व कविता तो क्या ब्रह्मांड कविता का आयोजन भी भारत भवन को नहीं बचा सकता. कोई संस्थान अमरबेल की तरह बहुत दिनों तक नहीं जी सकता.

आपको याद होगा, कुछ महीने पहले एम. एन. बुच ने 'टाइम्स आफ इंडिया' में भारत भवन की सबसे बड़ी कमजोरी यह बतायी थी कि उसकी जड़ें स्वयं उस शहर भोपाल में नहीं हैं जहां वह स्थित है और आम लोग उससे एकदम उदासीन हैं. श्री बुच बड़े अनुभव संपन्न और प्रबुद्ध सिविल सर्वेंट हैं, साथ ही अशोक बाजपेयी के प्रशंसक तथा समर्थक भी. श्री बुच के अनुसार अशोक बाजपेयी भारत भवन की इस कमी को स्वयं भी स्वीकार करते हैं : लेकिन कौन जाने यह सोचकर गर्व भी करते हों कि 'हम नदी के द्वीप हैं' और 'यह अपनी नियति है'

सच्चाई तो यह है कि स्वयं हिंदी साहित्य से भारत भवन की जड़ें उखड़ती जा रही हैं. उसकी जड़ें हिंदी में हैं ही नहीं. इस अभाव की पूर्ति अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों और विचारकों को बुलाकर की जा रही है. लेकिन कवियों-लेखकों की सूची देखिए तो अखिल भारतीय के नाम पर वही आधे दर्जन लोग हैं जो हर तीन महीने बाद भोपाल में दिखायी पड़ते हैं. विश्व कविता का महोत्सव इसी अभाव की पूर्ति का एक और प्रयास है. इस प्रयास के बावजूद यह नया 'आनंदमठ' जल्द ही बिखरेगा. शुरुआत हो चुकी है.

लेकिन एक अन्य कोण से देखें तो यह उत्सव-आयोजन एक नयी तरह का सांस्कृतिक 'आतंकवाद' है. ये विराट आयोजन हिंदी कवियों को आतंकित करने के लिए हैं. अशोक बाजपेयी गोया यह बताना चाहते हैं कि जब एव्तुशेंको, गिंसबर्ग, होलुब आदि कवि भारत भवन आ रहे हैं तो ऐ हिंदी के टुच्चे कवियो, तुम आओ न आओ क्या फर्क पड़ता है. लेकिन हर तानाशाही का यही चरित्र होता है. स्थानीय आधार नहीं होता, किंतु बाहरी तामझाम से वह अपनी जनता पर रौब डालकर वश में करना चाहता है. तानाशाह सारे विश्व का हो सकता है, लेकिन अपने घर का नहीं होता. मूलतः हर तानाशाह एक 'लघुमानव' होता है.

भारत भवन के संकुचित आधार पर एक प्रमाण तो यही है कि साहित्य में वह कविता तक ही सीमित है. बीसवीं सदी में यदि कोई सांस्कृतिक संस्था गद्य से एकदम मुंह मोड़ ले और फिर भी बात करे पूरी संस्कृति की तो उसकी 'संस्कृति' में शक होना स्वाभाविक है. यह गद्य की उपेक्षा नहीं, गद्य से भय है. 'कौन है जो गद्य से डरता है?' लोग यह पूछने के लिए विवश हो रहे हैं.

☐ अच्छा डाक्टर साहब, भारत भवन के बहिष्कार के प्रति आपके इस 'स्टैंड' के पीछे कहीं अशोक बाजपेयी के साथ आपके व्यक्तिगत संबंधों में बिगाड़ की तो कोई भूमिका नहीं है?

क्या मेरे स्वर से आपको ऐसा लगता है? अशोक से मेरे कम से कम पचीस साल के संबंध हैं. काफी निकट के. घरेलू भी. कम ही लोगों से ऐसे संबंध हैं. ऐसे संबंध जीवन की निधि होते हैं. मैं हर सूरत में उन्हें बचाकर रखने में विश्वास करता हूं. अशोक के लिए आज भी मेरे मन में वही स्नेह है और स्पष्ट कर दूं कि व्यक्तिगत रूप में उन्होंने मुझे कोई चोट नहीं पहुंचायी है—कम से कम मैं ऐसा ही महसूस करता हूं. ☐

गीदड़ की अकड़

"ए हाथी, मेरे रास्ते से हट... वरना मैं तुझे छोडूंगा नहीं!" गीदड़ ने हाथी से अकड़ते हुए कहा. हाथी ने सोचा—'इसके मुंह क्या लगूं!' वह कच्चे रास्ते से आगे बढ़ गया. इस पर गीदड़ को लगा कि हाथी सचमुच डर गया है... 'क्यों न इसे दूर तक खदेड़ ही आऊं?' वह हाथी के पीछे-पीछे उसे धड़कता हुआ चल दिया. हाथी देखता रहा. जब गीदड़ अपनी अकड़ में चूर हाथी के ठीक पीछे आ पहुंचा तो हाथी ने पूरा जोर लगाकर लीद कर दी. देखते-देखते, उसी के नीचे दबकर गीदड़ की जान निकल गयी. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह दिखाना ही प्रगतिशील समझ नहीं

प्रगतिशील लेखक संघ, दुर्ग इकाई द्वारा आयोजित 'कहानी शिविर' का उद्घाटन कहानीकार काशीनाथ सिंह ने किया और रमाकांत श्रीवास्तव ने शिविर का संचालन किया. शिविर में कहानी के कथ्य, कहानी का रचना-विधान, विषयवस्तु के चुनाव पर विस्तृत चर्चा हुई. उभरते हुए पांच कहानीकारों की ताजा कहानियों पर विस्तृत चर्चा हुई. काशीनाथ सिंह ने अपनी रचना प्रक्रिया के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए. कार्यक्रम का संचालन मुकुंद कौशल ने किया.

सचिव शरद कोकास ने शिविर का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए बताया— जिस प्रकार रोजमर्रा जीवन में वास्तुकार, डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापारी अपने पेशे में पारंगत होने के लिए प्रशिक्षण लेते हैं, उसी प्रकार कहानी लेखन के लिए विधिवत् प्रशिक्षण देना शिविर का उद्देश्य है.

रमाकांत श्रीवास्तव ने कहानी और जिंदगी का बड़ा आत्मीय व अटूट संबंध बताते हुए कहा, लंबे समय तक यह विचार प्रचलित रहा कि, रचना स्वतः स्फूर्त होती है. यह प्रतिभा जन्मजात होती है न कि अर्जित की जाती है. हम ऐसा मानते हैं कि विचार और भाषा का जन्म अकस्मात नहीं होता. विचार वास्तव में सामाजिक मनुष्य होने की पहचान है. हमारी प्रतिभा क्या है? हमारे साथ पुराने आचार्यों की तलदर्शी चिंतनधारा और परंपरा है साथ ही नया ज्ञान भी है. बाल्मीकि की रचना सामाजिक चिंतन द्वारा प्रस्फुटित हुई. हमें यह जानना चाहिए, निजी अनुभव कभी भी पूर्ण नहीं होता. सामाजिक व सामूहिक अनुभव के साथ हम सत्य के पास पहुंचते हैं. अनुभव का भरपूर सिंचना रचना में हो तभी वह समर्थ व सार्थक होगी. दूसरे सत्र में कहानी का रचना विधान और विषयवस्तु के चुनाव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए काशीनाथ सिंह ने कहा, कहानियों में ठोस विचार और सामाजिक संघर्ष का होना अच्छी बात है परंतु विषयों का सरलीकरण नहीं होना चाहिए. कथ्य के लिहाज से कहानी में मारक शक्ति के रूप में व्यंग्य का प्रयोग किया जाता है. स्थूल आदर्श या अमूर्त आदर्श से कहानी को मुक्त होना चाहिए.

तीसरे सत्र में पांच कहानियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई. प्रारंभ में विवेक गुप्ता (नया कोट), लोक बाबू (खुशी), कैलाश बनवासी (उमस), सहदेव (बिगड़ी बनी) और डॉ. सुरेंद्र दुबे (एक थी सुजाता) ने अपनी-अपनी कहानियों का पाठ किया. अधिकांश उपस्थित रचनाकारों ने इन कहानियों पर अपने विचार व्यक्त किए. काशीनाथ सिंह ने कहा सभी कहानीकार आलोचनात्मक टिप्पणी को अन्यथा न लें. □

महावीर अग्रवाल

'हलाहल' बीच बहस में

'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक राजेंद्र माथुर के मुख्य आतिथ्य और प्रख्यात कथाकार कमलेश्वर की अध्यक्षता में 25 अक्तूबर को राजधानी के कांस्टीट्यूशन क्लब में 'सचिन प्रकाशन' की तरफ से चर्चित युवा कथाकार धीरेंद्र अस्थाना के नये उपन्यास 'हलाहल' पर एक गोष्ठी आयोजित हुई.

गोष्ठी का आरंभ डा. माहेश्वर के आलेख से हुआ. उन्होंने इस उपन्यास को संवेदना की परतों में चाकू की तरह धंसती हुई 'इंटेंस' कथा-रचना माना. दूसरा आलेख चर्चित कथा-लेखिका चित्रा मुद्गल का था. उनका मानना था कि उपन्यास के नायक सिद्धार्थ की सोच सामंतवादी मनोवृत्ति की है. लेकिन स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित उपन्यास की संशलिस्ट कथा-भूमि इन प्रश्नों को रौंदती हुई अमृता और सिद्धार्थ के माध्यम से पूरी सामाजिक संरचना को टटोलती हुई विसंगतियों का पर्दाफाश करती है.

राजेंद्र माथुर ने उपन्यास पर कम, उपन्यास पर वहां हुई समीक्षा की समीक्षा अधिक की. उन्होंने समीक्षक की तुलना उन सामंती लोगों से की जो लड़की की भ्रूण हत्या कर देते हैं. उन्होंने कहा कि लेखक और पाठक के बीच से समीक्षक को एकदम हटा देना चाहिए. गोष्ठी के अध्यक्ष पद से कमलेश्वर ने कहा कि यह एक बेहतरीन उपन्यास है. एक पतनशील समाज और खंडित जीवन मूल्यों के बीच रहकर प्रेम करने वाले किसी व्यक्ति के ऊपर ऐसा ही उपन्यास लिखा जा सकता था. कमलेश्वर ने माना कि यह उपन्यास पारंपरिक नैतिकता और तथाकथित मर्यादा पर सीधा हमला करता है. जिन लोगों ने इस उपन्यास पर होने वाली विचारोत्तेजक बहस में हिस्सा लिया, उनमें पुरुषोत्तम अग्रवाल, डा. गंगा प्रसाद विमल, डा. नफीस आफरीदी, राजकुमार गौतम, हरिप्रकाश त्यागी और अमेरिका से इन दिनों भारत आये हुए हिंदी कथाकार उमेश अग्निहोत्री प्रमुख थे. □

प्रकाश

समीक्षा-गोष्ठी

पिछले दिनों युवा रचनाकार रवींद्र कुमार की पुस्तक 'खिड़की से कूदता जंगल' पर एक समीक्षा-गोष्ठी दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज में कवि-चित्रकार हरिप्रकाश त्यागी की अध्यक्षता में संपन्न हुई. रवींद्र कुमार के रचना पाठ के बाद महेश दर्पण, प्रेम जनमेजय, दिनेश खन्ना, रेखा सक्सेना, हरीश नवल, सुशील कुमार सहित उपस्थित साहित्यिकों ने भी पुस्तक पर अपने विचार प्रकट करते हुए रवींद्र की रचनाओं में नजर आने वाले विविध आयामों पर विस्तार से बातचीत की. □

बीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

सरस्वती श्रेष्ठ कहानी

द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' द्वारा लिखी कहानी 'सरस्वती' को आधुनिक कथा साहित्य में श्रेष्ठ कहानी कहा जा सकता है. मैंने अपने विगत जीवन में आज तक ऐसी कहानी नहीं पढ़ी. इस कथा में मिश्र जी ने सरस्वती के रूप में एक ऐसे अनूठे चरित्र को अभिचित्रित किया है जिससे प्रत्येक पाठक जुड़ना चाहेगा और इस कथा के साथ हुआ भी यही. हम सभी कर्मचारीगण जो कि आपकी सारिका के नियमित पाठक हैं, इस चरित्र से प्रभावित हुए बगैर नहीं रहे हैं.

□ **पं. बृजमोहन संझया, राजघाट**

यह भी सरस्वती, वह भी सरस्वती

पूरे अंक में यदि कोई कहानी ऐसी है जिसमें सिवाए कथोपकथन के कहानी का कोई तत्व नहीं है तो वह है 'सरस्वती' और पूरे विशेषांक में सबसे अधिक कोई कहानी दिल को छू जाती है तो वह भी है 'सरस्वती'. सारे कहानी तत्वों को ताक पर रखकर भी अद्वितीय को जिसने अपने कंधों पर लिया है, वह निसंदेह 'सवस्वती' कहानी है. श्री निसंदेह 'सरस्वती' कहानी है. श्री 'सरस्वती' को पढ़ते समय कहीं ऐसा नहीं लगा कि एक कहानी पढ़ रहा हूं. हमेशा यही प्रतीत हुआ जैसे सरस्वती साक्षात सामने बैठी बतिया रही है और मैं मंत्र-मुग्ध बस सुनता चला जा रहा हूं शिवशंकर की तरह, क्योंकि जिंदगी के किसी-किसी क्षण में केवल सुनना एक सुखद अनुभूति होती है. 'सरस्वती' वर्षों मेरे कानों में यूं ही बतियाती रहेगी, इसका लेशमात्र भी संदेह नहीं है मुझे.

□ **राजेश श्रीवास्तव, दिल्ली**

वर्तमान परिवेश का अभेद्य कवच

'सरस्वती' से हुई अचानक मुलाकात (इस संदर्भ में अचानक ही अधिक उपयुक्त है) अंतर्मन को सुरभित कर गयी. वर्तमान परिवेश के अभेद्य कवच को अपनी सुकोमल बेबाक भावनाओं के स्पर्श से खील-खील करती चली गयी. कहीं किसी स्थान पर बड़ा संयम और कहीं वाचालता, बचपन मिश्रित यौवन में वैचारिक प्रौढ़ता का सुमधुर संगम उसे दुर्लभ व्यक्तित्व दे गया. लेखक अपने उद्देश्य में सफल रहे हैं. सहर टौंकी के इस शेर की तरह: "थक के लेता हूं तेरी जुल्फ के साये में पनाह ताजा दम होने को फिर गर्दिशे दौरां के लिए."

□ **राशित, बूंदी (राज.)**

बर्बस आंसू छलक आये

'सरस्वती' काफी पसंद आयी. वास्तव में मैंने इससे अच्छी कहानी कभी नहीं पढ़ी और शायद न पढ़ पाऊं. कहानी में इतनी गतिशीलता अथवा उतार-चढ़ाव एक मजे हुए लेखक द्वारा ही संभव है. कहानी में काफी कुछ व्यावहारिकता का पुट है. यदि कुंआरी नवयुवतियां इस कहानी से कुछ सीख सकें तो कथाकार व 'सारिका' के लिये सौभाग्य की बात होगी.

कथा का अंत बिल्कुल गले नहीं उतरता यदि सरस्वती वास्तव में गूंगी हो जाती. नहीं, विधाता इतना क्रूर हो ही नहीं सकता. मिश्र जी से निवेदन है कि कृपया कहानी को उस मोड़ पर जबकि पाठक नायिका से भावनाओं/मानसिक रूप से जुड़ गया हो स्तब्ध कर देने वाला वाकिया नहीं देना था. मेरे तो बर्बस आंसू ही निकल पड़े और एक ही सांस में शेष कहानी पढ़ गया. जब अंत सही निकला तब राहत मिली.

□ **लोकेश, विदिशा (म.प्र.)**

विश्व साहित्य बनाम हिंदी साहित्य

'सरस्वती' को पढ़ने के उपरांत अपनी दीर्घसूत्रता के बावजूद बिना प्रतिक्रिया व्यक्त किए रहा न गया. कहानीकार ने कहानी के अंत में अपनी टिप्पणी में लिखा है कि इसमें सरस्वती की बक-बक के सिवाय कुछ नहीं है. यह आत्मस्वीकृति 'निर्गुण' के महत गुण को द्विगुणित कर देती है. सरस्वती की बक-बक के भीतर एक भारतीय सुशिक्षिता एवं सुसंस्कृता लड़की की व्यथा अंतःसलिला की भांति विद्यमान है. भारतीय समाज परंपराग्रस्त एवं सड़े-गले मूल्यों को अपने सीने से लगाये, नवीन प्रगतिशील मूल्यों से आंखें चुराये प्राचीन मान्यताओं के कूपमंडूक में सिसक रहा है और वह ऐसी मान्यता को खारिज कर देता है कि एक लड़की भी आजीवन अविवाहिता रह सकती है.

इस अंक की अधिकांश कहानियां एवं लघुकथायें उत्कृष्ट लगीं, परंतु चंद्रकांता की 'यहां वितस्ता बहती है' प्रभावित नहीं कर पायी.

संपादक महोदय? विश्व साहित्य से हिंदी पाठकवर्ग को परिचित कराने का आपका सार्थक प्रयास स्तुत्य है, परंतु अपने हिंदी-संसार में भी अनेक अमूल्य रचनायें विद्यमान हैं, और आप हैं कि विश्व-साहित्य के उद्धार में ही लीन हैं.

□ **वीरेंद्र कुमार सिंह, मुजफ्फरपुर**

सारिका अनुवादिका हो गयी है

इतने ढेर सारे अनुवाद पढ़कर लगा, 'सारिका' अब सारिका नहीं रही— वह अनुवादिका हो गयी है.

मेरे विचार से हिंदी भाषी पाठक जो साहित्य में रुचि रखते हैं वे 'अनुभूति' और 'निर्णय' जैसी रचना पढ़ना अधिक पसंद करेंगे. सच कहूं तो इस अंक में यही दो कहानी पढ़ने योग्य लगीं.

'निर्गुण' की 'सरस्वती' ने लंबी बक-बक के पश्चात जब स्वयं मान लिया निःस्तत्व और अच्छी कहानी न होना. फिर भी मजेदारी का लुआब लगाकर अपने को स्वीकार करवाना अच्छा नहीं लगा. वैसे आप के सामने परेशानी रही होगी इतने पुराने लेखक की रचना... और 'मंटोरबाई' पढ़कर लगा वर्षों पूर्व देखी फिल्म 'मधुमती' का नवीन संस्करण पढ़ रहा हूं.

□ **जेम्स पीटर, आगरा**

हिंदी देश की राजभाषा है

सारिका में प्रकाशित मेरे लेख 'भाषा अस्मिता की पहचान' के संदर्भ में श्री शैलेश मटियानी के विचार 'न है न होगी' पढ़े. मैं उनकी तरह न तो शब्दों का जादूगर हूं और न उनकी शैली और शब्दावली ही अपना सकता हूं. इस विषय को लंबी-चौड़ी बहस का मुद्दा बनाने की इच्छा भी मेरी नहीं है. परंतु इतना निवेदन कर दूं कि हिंदी इस देश की राजभाषा है और यह बात दिन के उजाले की तरह साफ है. यदि अपनी आंखों पर किसी विशेष रंग और नंबर का चश्मा चढ़ाकर हम इस तथ्य को नकारना ही चाहें और स्वयं भ्रम पाल लें तो दोष हमारा ही होगा.

संविधान निर्माताओं ने हिंदी की लोकप्रियता, सहजता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापकता. तथा व्यवहार की स्थिति को देखते हुए पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक अंग्रेजी की जगह एक भारतीय भाषा को स्थापित करने के मंतव्य से हिंदी को संवैधानिक समर्थन दिया. इसके साथ ही देश की भाषायी और भावनात्मक एकता तथा सांस्कृतिक, वैचारिक एवं साहित्यिक आदान प्रदान एवं राजनीतिक परिपेक्ष्य के संदर्भ में संविधान की अष्टम अनुसूची में अन्य भारतीय भाषाओं को भी मान्यता दी.

संविधान निर्माता इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि हिंदी भारत के हृदय प्रदेश की भाषा है, जिसे किसी क्षेत्र या संप्रदाय की सीमा में नहीं बांधा जा सकता. यही वह भाषा है जो भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हो सकती है. यह तथ्य तो प्रतिक्रिया में भी स्वीकारा गया है. इस प्रकार हमारे संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करके उसकी उसी अखिल भारतीय क्षमता को विधिवत् मान्यता दी गयी जो संविधान बनने से भी पहले से इस देश को एकता की कड़ी में पिरोती आयी है. हिंदी इस देश में जन-जन की अभिव्यक्ति की संजीवनी तथा पारस्परिक संवाद की वाणी रही है. इसमें देश की आत्मा बोलती है, इतिहास बोलता है और हमारी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में इस देश की अधिसंख्य जनता की आशाओं और आकांक्षाओं को यह वाणी देती रही है. संविधान निर्माताओं ने सोच समझकर तथा समस्त भाषायी प्रश्नों की जटिलता और परिस्थितियों की गंभीरता को जांच-परखकर देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को भारत की राजभाषा स्वीकार किया जिसकी स्पष्ट व्यवस्था अनुच्छेद 343 में है. इतना ही नहीं अनुच्छेद 351 में यह स्पष्ट निर्देश है कि "हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक (कंपोजिट) संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक हो उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा."

संविधान निर्माताओं ने सभी भारतीय भाषाओं के सहयोग और आदान-प्रदान से भाषायी सौमनस्य के वातावरण में राजभाषा के विकास की नींव डाली जो ठीक उसी रूप में राष्ट्र की वाणी बनकर अपना स्वर्णिम इतिहास निर्मित करेगी जिस रूप में वह प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है.

हिंदी की इसी भूमिका और योगदान से प्रभावित संविधान निर्माताओं ने अंग्रेजीमय वातावरण और अंतर्राष्ट्रीय भूमिकावाली अंग्रेजियत के माहौल और सुविधा के बावजूद हिंदी को राजभाषा स्वीकार करके इस देश, इस धरती और इस मिट्टी के प्रति अपनी आस्था का सबूत दिया. संविधान सभा में देश की ऐसी तपी तपाई विभूतियां थीं जिन्होंने गुलामी की पीड़ा भोगी थी और स्वतंत्रता के लिए अपना सब कुछ निछावर किया. उनकी इसी निष्ठा ने उन्हें राष्ट्र की अस्मिता की पहचान तथा भाषायी स्वाभिमान की रक्षा करने और विदेशी भाषा अंग्रेजी की मानसिक गुलामी से छुटकारा पाने के लिए हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के सम्मान और गरिमा की रक्षा की प्रेरणा दी. उनकी इस निष्ठा और विवेकपूर्ण निर्णय को 'धोखाधड़ी', 'झांसा' या पाखंड की संज्ञा देना स्वयं हमारे विवेक पर प्रश्न चिन्ह लगाता है.

यदि हम अपनी नासमझी और पूर्वाग्रहों से पीड़ित मानसिकता के कारण संविधान की उक्त व्यवस्था को नकारते हैं तो सहज ही यह प्रश्न उठता है कि संविधान लागू होने पर राष्ट्रपति के राजभाषा संबंधी आदेश, राजभाषा आयोग के गठन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना, राजभाषा (विधायी) आयोग का गठन, राजभाषा अधिनियम 1963 और संशोधन 1967 की धाराओं के कार्यान्वयन, 1968 के संकल्प, विधेयकों और अधिनियमों के हिंदी रूपांतर को प्रामाणिक रूप देने, केंद्रीय हिंदी समिति के गठन, हिंदी सलाहकार समितियों के गठन, 1976 के राजभाषा कानून आदि बनाने के पीछे कौन-सा सांविधिक और संवैधानिक प्राधिकार था? इसी प्रकार सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए जितने भी कार्यालय स्थापित किये गये हैं, पद सृजित किये गये हैं या राजभाषा विभाग स्थापित किए गये हैं उनके पीछे कौन-सी कानूनी शक्ति या सांविधिक प्राधिकार है?

इस संबंध में भारत सरकार के राजभाषा विभाग, हिंदी सलाहकार, राजभाषा (विधायी) आयोग, विधि तथा संविधान के विशेषज्ञों तथा अधिकारी विशेषज्ञों द्वारा स्थिति स्पष्ट की जानी चाहिए कि क्या सचमुच हिंदी भारत की राजभाषा नहीं है? इस स्पष्टीकरण से निश्चय ही भ्रम दूर हो सकेगा. जहां तक एक सामान्य व्यक्ति की समझ का प्रश्न है मेरी समझ में संविधान की व्यवस्था के अनुसार संविधान लागू होने की तारीख से 15 वर्ष की निर्धारित तिथि अथवा अवधि अर्थात् 1965 से हिंदी भारत की राजभाषा है, विधिवत् हो चुकी है. अंग्रेजी को सह-भाषा के रूप में चलते रहने की मान्यता भी दी गयी है. सह-भाषा न कि राजभाषा, जैसा कि लोगों को भ्रम है. यह भ्रम अंग्रेजी के प्रयोग की सुविधा होने के कारण है. यह तथ्य स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं है सरकारी कामकाज में अंग्रेजी के व्यवहार की छूट होने के कारण हिंदी पूरी तरह से प्रतिष्ठित नहीं हो पायी है जो संविधान की व्यवस्था की कमी नहीं वरन हमारे कार्य व्यवहार की कमजोरी है जिससे राजभाषा होते हुए भी हिंदी को संविधान द्वारा प्रदत्त राजभाषा के गौरवपूर्ण पद की प्रतिष्ठा के अनुकूल प्रयोग में नहीं लाया गया है. इसके लिए हम सभी उत्तरदायी हैं और वे लोग भी जो वास्तविकता से दूर रहकर केवल मीन-मेख निकालने की पहल तो करते हैं परंतु 98% लोगों की आशाओं और

बधाई

वर्तमान साहित्य द्वारा आयोजित की गयी 'कृष्ण प्रताप कथा प्रतियोगिता'—1988 का प्रथम पुरस्कार युवा कथाकार सृंजय को उनकी कहानी 'तख्तोताब' पर प्राप्त हुआ है. (श्री सृंजय की पहली कहानी 'भगदत्त का हाथी' सारिका के जनवरी 88 अंक में प्रकाशित और प्रशंसित हुई थी.) यह पुरस्कार 2000 रुपये का है. पंद्रह सौ रुपये का द्वितीय पुरस्कार डा. ईश्वरदत्त वर्मा को उनकी कहानी 'कौतुक' पर तथा एक हजार रुपये का तृतीय पुरस्कार डा. शिवजी श्रीवास्तव को उनकी कहानी 'जाल' के लिए प्राप्त हुआ. इनके अतिरिक्त ग्यारह कहानियों को पांच-पांच सौ रुपये के प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किये गये. इस वर्ष निर्णायक मंडल में प्रख्यात कथाकार अमरकांत और शेखर जोशी तथा आलोचक सत्य प्रकाश मिश्र थे. सभी पुरस्कार विजेताओं को सारिका परिवार की ओर से बधाई.

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एव हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करे
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय मे अध्ययन करे
- आसान भाषा में विशेषज्ञो द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- महगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
- कोर्स फीस का आसान किश्तो में भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नही

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें –

AID **एकेडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन**
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकांक्षाओं के अनुकूल हिंदी को प्रतिष्ठित करने की दिशा में अपने स्तर पर कोई ठोस अथवा व्यावहारिक भूमिका अदा नहीं कर पाते हैं और 2% लोगों की मानसिकता को इतने वर्षों से ओढ़े हुए हैं.

जहां तक संविधान में 'होगी' शब्द के प्रयोग की बात कही गयी है निवेदन है कि संविधान, संविधि और कानून की भाषा और शब्दावली की विशेष शैली व स्वरूप होता है. उस 'होगी' शब्द का आशय है संविधान के प्रावधान लागू होने के दिन से होगी और वह 1965 से हो चुकी है. संविधान में भारत को राज्यों का संघ 'होगा' भी ठीक इसी तरह कहा गया है.

जहां तक हिंदी दिवस की बात है, यह हमारी अपनी भाषाओं की सेवा के संकल्प का दिन है. इससे हिंदी के अनुकूल वातावरण बनाने और भाषायी सौमनस्य की प्रेरणा मिलती है. यदि अंग्रेजी के अंधियारे वाली घोर अमावस्या की रात में हम हिंदी का एक दीप जलाकर थोड़ा भी अंधियारा दूर कर सकें तो इसमें क्या नुकसान है. क्या हम स्वतंत्रता दिवस मनाना इसलिए छोड़ दें कि अब हम गुलाम नहीं रहे?

□ डा. नारायण दत्त पालीवाल

हिंदी है और रहेगी

जैसे हाथी के पांव में सब का पांव होता है उसी प्रकार हिंदी शब्द व्यापकता में राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, व्यवहार भाषादि अभिव्यंजित होती हैं. यानी 'हिंदी दिवस' में इनके दिवस का द्योतन होता है. मुझे हिंदी नाम अच्छा लगा, मैंने हिंदी दिवस मनाना आरंभ कर दिया, आपको राजभाषा या राष्ट्रभाषा का नाम अच्छा लगता है आप उसे मनाइए. इसमें नाराजी या अप्रासंगिकता का क्या प्रश्न है? सरकार ने कहा "सभी कार्यालय राजभाषा विभाग द्वारा जारी की गयी मार्गदर्शी रूपरेखा के अनुसार हर वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस तथा उस दिन से शुरू करके हिंदी सप्ताह मनायें" (राजभाषा हिंदी के प्रयोगसंबंधी नियम पुस्तक अध्याय 14 पृ. 42) मंत्रालय / विभाग / कार्यालय/ कंपनी/निगम/उद्यमादि मनाने लगे. इसमें व्यक्ति का क्या दोष? इसमें न कोई भ्रम है न कोई अप्रासंगिकता.

'दुआएं दो कि हमने तुम्हें कातिल बना दिया' हम थे तुम थे प्रसंग बन गया! फरवरी 48 में संविधान के प्रारूप में राजभाषा विधेयक की कोई धारा/अनुच्छेद नहीं था. इसके न होते हुए भी मात्र इतना उल्लेख था कि संसद की भाषा अंग्रेजी या हिंदी होगी. बस हो गया प्रसंग अवतरित. पंडित नेहरू ने एक अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए स्पष्ट किया था कि स्वतंत्र देश की अपनी ही भाषा में राज काज चलना चाहिए. पुनः प्रसंग आ गया. (8.11.48 की संविधान सभा की बहस) मत मतांतरों की संकरी गली में भैंस स्वरूपा भारी-भरकम बहस फंस गयी. निकले तो कैसे निकले? 'ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौ चहति त्यों त्यों उरझ्चो जाति' निकास ही न हो. 'आये धन आये छन आये के निकर गये' की भांति संशोधनों के संशोधन रूपी घन उमड़े, कभी कभार टपक गये, उनकी स्निग्धता ने बहस को पिलपिला दिया मुंशी-आयंगर फार्मूला के रूप में. यह प्रसंग था. यह निर्णय था हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठापित करने का (प्रतिफलन पुष्टि स्वरूप भारत के संविधान के अनुच्छेद 343-351 तथा 28.11.49 का पटेल का वह पत्र है जो उन्होंने मगन भाई देसाई को लिखा था. दो रुपये के स्टांप वाले जुडीशरी कागज पर लिखा पत्थर की लकीर बन जाता है. और यदि अपेक्षित टिकटें लगाकर उसकी रजिस्ट्री करवा दी जाये तो वह भगवानोवाच हो जाता है तो क्या भारत के संविधान में लिखा प्राधिकृत नहीं? इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा हिंदी के राजभाषा बनने का, संविधान की हिंदी संघ की राजभाषा है, संविधान की हिंदी सरकारी भाषा है, संविधान की हिंदी सरकारी कर्मचारियों की (के लिए) भाषा है. संविधान की हिंदी उन अधिकारियों की भाषा है जिन्हें पूर्ण योग्य निष्ठावान् बुद्धिमान और उत्तरदायित्वपूर्ण माना जाता है.

राजभाषा खंड, विधायी विभाग, भारत सरकार का 1984 का भारत का संविधान संस्करण (हिंदी) देखें तो पता चलता है कि उद्देशिका को छोड़कर (क्योंकि संविधान उसी दिन 26.11.49 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं) जहां 'हैं' का प्रयोग है अन्य सभी स्थानों पर होगा/होगी/होंगे/होंगी ही प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि प्रावधान भविष्य काल संदर्भित है. तो क्या ये सब अर्थ/काल विपरीत हैं? फिर भी यदि राजभाषा के साथ 'है' देखना चाहते हैं लोग तो देखें राजभाषा हिंदी के प्रयोग संबंधी नियम पुस्तक का अध्याय 1 पृष्ठ1 "संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिंदी है."

जहां तक अहिंदी भाषी राज्य/ प्रांत की असहमति और भाषा का प्रश्न है, यह भी अन्य अनेक आश्वासनों की भांति राजनीतिक व्यवस्था प्रसूत आश्वासन है, जिसे उगले गति न निगले गति. जिनका यह आश्वासन है या तो वे पुनः धराधाम पर आयें या कोई उनसे भी वरिष्ठ अवतरित हो तभी इसका निस्तारण हो सकता है. ऐसी परिस्थिति में जो कुछ सरकार कर रही है उसके आदेशानुसार कर्मचारी कर रहे हैं वह कार्यान्वयन/क्रियान्वयन समीचीन है. वह झांसा या कर्मकांड नहीं. जो काम करता है वह गलती भी करता है. और जो केवल भाषा की दुरूहता का ढोल पीटकर केवल गाल बजाते हैं वे भंग के नशे में धुत्तशिव को प्रसन्न करने का ढोंग भले ही करते हों, अपनी मानसिकता का प्रदर्शन करते हैं मगर किसी का शिव नहीं करते. भाषा न कठिन होती है न सरल. भाषा की प्रयुक्तियां (रजिस्टर) इतनी विविध है कि एक दूसरे के समझने में कठिनाई होती है. दाँव वि[...] की प्रयुक्ति को कितना हृदय[...] कर सकता है? वैज्ञानिक कवि[...] भाषा/भाषा प्रतीकों को कि[...] गले उतार सकता है? स[...] किनारे बैठकर लोहा पीटने [...] डाक्टर की प्रयुक्ति को कहां [...] समझ सकता है या प्रयुक्त [...] सकता है आदि आदि. इसी प्र[...] राजभाषा सरकारी कार्यालयों [...] प्रयुक्त भाषा की प्रयुक्ति है. [...] उनके लिए है और उनसे संबं[...] जनता से है. स्वर साधन क[...] वाले संगीतज्ञ या ग[...] अध्ययनकर्त्ता के लिए नहीं. द[...] का उच्चतम पदासीन वि[...] अधिकारी दफ्तर में कहता [...] फाइल प्रस्तुत करो और जब [...] घर जाता है तो अपनी संस्कृत [...] पृष्ठभूमि होते हुए या अंग्रेजी [...] पृष्ठभूमि होते हुए भी यह व[...] नहीं कहता कि भोजन प्रस[...] करो, सबमिट फूड. वहां वह [...] कहता है कि कुछ खाने को [...] खाना दे दो.

पात्रता और पद की [...] भी आया जाये. हिंदी ने [...] क्षमता, शक्ति, सामर्थ्य के क[...] पद पाया है. एक हजार व[...] अधिक की परंपरा है इसके प[...] विस्तृति है, संस्कृति है, प्रस्तु[...] और है संस्तुति इसके प्रति. [...] पद पर उसे प्रतिष्ठापित [...] उत्तरदायित्व सौंपा गया है [...] उसके लिए वह मानक [...] अपनाये, ध्वनि भंडार को ब[...] अभिव्यक्तियों को रचाये प[...] आवश्यकता के अनुसार प[...] और परिवार को उदार बना[...] उसकी सरलता, सहजता [...] स्वभाव/पद्धति में क्या जु[...] होगा? परिवर्तन ही विकास [...] यह इसकी विराट अभिव्य[...] क्षमता को विश्व जनीन बनाने [...] प्रयास है.

संविधिक स्थिति द्विभाषिक[...] हिंदी के साथ अंग्रेजी इसी[...] अपरिहार्य है. नहीं तो कर्म[...] अधिकारी काम कैसे कर[...]

कोई माने या न माने हिं[...] स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव [...] पड़ता.

□ डा. मोती लाल चतुर्वेदी, जेड-33, हौजखास, नयी दिल[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar